गोस्वामी तुलसीदासकृत

कवितावली

[विस्तृत भूमिका और बालबोधिनी टीका सहित]

टीकाकार

लाला भगवानदीन 'दीन'
विश्वनाथप्रसाद मिश्र
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, मगध विश्वविद्यालय
गया (बिहार)

प्रकाशक

रामनारायणलाल बेनीप्रसाद
प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता
इलाहाबाद २

समर्पण

भर गये भारत को रघुबीर-गीत की गुंजार से।
कर गये हिंदी हरी नित सींच कविता-धार से।
भक्ति-युवती को सजाया सोलहो श्रृंगार से।
'दीन' की यह कृति समर्पित है उन्हीं को प्यार से।।
दीन का परिचय कराया दीन-बन्धु दुवार से।
भक्ति की भिक्षा दिलाई कौसलेंदु-कुमार से।
है भरोसा पार कर देंगे जगत की धार से।
'दीन' की यह कृति समर्पित है उन्हीं को प्यार से।।

'दीन'

वक्तव्य

१

स्वर्गीय 'दीन' जी के जीवन-काल में 'कवितावली' की सुबोधिनी टीका साहित्य-सेवक-कार्यालय, काशी से प्रकाशित हुई थी, पर आगे चलकर इस बात का अनुभव किया गया कि बिना कवि की विस्तृत आलोचना की टीका से सहायता लेने वालों का भरपूर काम नहीं चलता, अतः कवितावली का सटिप्पण संस्करण प्रकाशित किया गया, जिसमें लालाजी की आज्ञा से मैंने तुलसीदासजी का संक्षिप्त जीवनवृत्त और कवितावली की छात्रोपयोगी समीक्षा जोड़ दी। सटिप्पण संस्करण भी साहित्य-सेवक-कार्यालय, काशी से प्रकाशित किया गया। उस संस्करण के प्रकाशित होने के पूर्व ही लालाजी का काशीवास हो गया। इसके अनंतर साहित्य-भूषण-कार्यालय, काशी ने सुबोधिनी टीका स्वतः प्रकाशित कर ली। साहित्य-सेवक-कार्यालय, काशी के संचालक श्री बजरंगबली गुप्त ने कवितावली की विस्तृत टीका की अधिक मांग का अनुभव करके स्वच्छंद टीका प्रस्तुत की और उसमें सटिप्पण संस्करण में नियोजित मेरी लिखी समीक्षा भी संलग्न कर दी। पर कवितावली के ये अनेक संस्करण ठीक नहीं जान पड़े। इसलिए यह निश्चय किया गया कि अन्य संस्करणों का प्रकाशन रोककर स्वर्गीय 'दीन' जी की सुबोधिनी टीका के साथ मेरी लिखी आलोचना जोड़ कर प्रकाशित की जाय। इसी निश्चय के अनुसार यह संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें यथाशक्य एकरूपता का निर्वाह करने का प्रयास किया गया है और यत्र-तत्र असावधानता के कारण छूटी हुई अशुद्धियाँ या त्रुटियाँ दूर कर दी गई हैं। आशा है, यह संस्करण विशेष लाभकारी सिद्ध होगा।

ब्रह्मनाल काशी
रामनवमी सं० २००२

मिश्र

पंचम संस्करण मे नूतन अनुसंधानों को दृष्टि में रखकर भूमिका भाग का उपस्करण कर दिया गया है। 'गौतमचंद्रिका' में आए तुलसीदास के वृत्तान्त की कुछ ऐसी घटनाएँ इसमें जोड़ी गई हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। आशा है, यह उपस्करण अद्यतन और लाभप्रद सिद्ध होगा।

श्री पंचमी, २०१३ वैक्रम
वाणी-वितान भवन
ब्रह्मनाल, वाराणसी—१

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

भूमिका

ऐसा कदाचित् ही कोई हिन्दी-भाषी सज्जन होगा जो श्री गोस्वामी तुलसीदासजी के आदरणीय नाम से अपरिचित हो अथवा जिसने किसी न किसी रीति से उनके द्वारा वर्णित रामयश के श्रवण से अपने कर्ण-कुहरों को पवित्र न किया हो। रामचंद्रजी की सुयशचंद्रिका फैलाने के लिए, हिंदुओं में धार्मिक, नैतिक तथा सामाजिक बलवृद्धि के लिए और हिन्दी-भाषा की उन्नति एवं प्रचार के लिए तुलसीदासजी ने जो सराहनीय कार्य किया है उसके लिए हम समस्त भारतवासी उनके चिरऋणी रहेंगे। तुलसीदासजी एक साथ ही कई कवियों का काम कर गये हैं। उनके रामचरित-मानस की प्रशंसा करने के लिए मुझ 'दीन' के पास शब्दों की दरिद्रता है। संक्षेप में यह कि उनके रामायण से साहित्यज्ञों, हरिभक्तों और प्रत्येक श्रेणी के मनुष्य का उपकार हो रहा है। विनय-पत्रिका में हरिगुणगायकों के लिए सुन्दर-सुन्दर पदों का संग्रह है। तुलसीदासजी ने इन पदों के द्वारा रामचंद्रजी के पास विनय-पत्रिका (अर्जी) भेजी है। गीतावली भी गवैयों के लिए रची गई है। पर इसमें संकीर्तन के साथ-साथ रामकथा का भी आनन्द मिलता जाता है। अपनी दोहावली के द्वारा तुलसीदासजी ने जनता में नीति का प्रचार किया है। रामललानहछू तो एक ऐसा ग्रंथ है जो घर-घर में विवाह के समय स्त्रियों के द्वारा गाया जाता है। साहित्यिक दृष्टि से तो इनके सभी ग्रंथ उच्चकोटि के हैं। प्रत्येक ग्रंथ ऊँचे-ऊँचे विचार, अच्छे-अच्छे प्रयोग, सुन्दर शब्द-संगठन, भाषा-सौष्ठव, मधुरता, सरलता और प्रसाद-गुण से परिपूर्ण हैं। तात्पर्य यह कि इनका प्रत्येक ग्रंथ किसी न किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए लिखा गया है।

इसी प्रकार कवितावली रामायण की सृष्टि भाटों और बंदीजनों के लिए हुई है। इसके छंद मनोहर और ओजपूर्ण शब्दों में भाटों और बंदीजनों के पढ़ने के लिए बहुत ही उपयुक्त हैं। कवितावली कोई प्रबंध-काव्य नहीं है। अतः इसका आरंभ तुलसीदासजी की प्रकृति के विरुद्ध बिना के ही है।

यह स्फुट काव्य है । इसमें तुलसीदासजी की भिन्न-भिन्न समयों में रची हुई भिन्न-भिन्न विषयों की कविताएँ हैं । ऐसा जान पड़ता है कि तुलसीदासजी ने भक्ति के उद्गार से समय-समय पर राम-कथा, रामनाम-माहात्म्य आदि विषयों पर कविताएँ रची होंगी । उन्हीं छंदों को तुलसीदास जी के भक्तों ने कथा-प्रसंग और घटनाक्रम के अनुसार संग्रह कर दिया है । इसी से इसमें अहल्योद्धार, कैकेयी-दशरथ संवाद, भरतचरित्र आदि अनेक मुख्य-मुख्य प्रसंग छूट गये हैं और कई वर्णनों की तो अनेक बार पुनरुक्ति हुई है । संग्रह कहिए अथवा काव्य, यह है एक बड़ा अमूल्य ग्रंथ । इसकी गिनती तुलसीदासजी के उत्कृष्ट ग्रंथों में है ।

छंद

कवितावली में तुलसीदासजी ने थोड़े से चुने हुए छंदों का ही प्रयोग किया है । जैसा कि ऊपर कहा गया है, ये छंद भाटों, चारणों और बंदीजनों के पढ़ने के लिए बड़े ही उपयुक्त हैं । साथ ही साथ जिस भाषा में ये कविताएँ रची गई हैं उसमें ये छंद बड़े ही रोचक प्रतीत होते हैं । कुल मिलाकर इसमें ३२५ छंद हैं । सवैया, मनहरण, कवित्त, छप्पय और झूलना इन छंदों में ही इसकी कविताएँ रची गई हैं । सवैया भी मत्तगयंद, दुर्मिल आदि अनेक प्रकार के है । बहुधा तुलसीदासजी ने उपजाति सवैया का भी प्रयोग किया है ।

भाषा

कवितावली की भाषा 'ब्रजभाषा' है । तुलसीदासजी में एक विशेषता यह है कि छंदों के अनुसार ही भाषा भी ढूँढ़ते हैं । दोहे-चौपाइयों के लिए तुलसीदासजी ने 'अवधी' का प्रयोग किया है (पद्मावत में जायसी ने भी दोहे-चौपाइयों के लिए अवधी का प्रयोग किया है) । सवैया आदि छंद जैसे ब्रजभाषा में बन पड़ते हैं वैसे अन्य भाषाओं में नहीं बन सकते । रसों के अनुसार भाषा का बड़ा अच्छा निर्वाह किया है । इसमें प्रसाद गुण अधिक है । स्थान-स्थान पर ओज गुण की ओजस्विता प्रत्यक्ष लक्षित हो जाती है । शृंगार, वीर और करुण आदि रसों के अनुसार उपनागरिका, परुषा और कोमल वृत्तियों का प्रयोग किया है । ब्रजभाषा के साथ-साथ अनेक भाषाओं जैसे—बँगला, उर्दू, अरबी, तुरकी, फारसी, संस्कृत और बुंदेलखंडी—के शब्द भी इसमें बहुतायत से आये हैं । पर उनको ब्रजभाषा का रूप देकर ऐसा अपना लिया है कि वे बाहर के नहीं जान पड़ने

बुंदेलखंडी तथा २८ ग्राम्य भाषाओं के शब्दों का इतना अधिक प्रयोग किया है कि उन स्थानों की भाषाओं के ज्ञान के बिना उनका अर्थ लगाना कठिन हो जाता है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का भी प्रयोग किया है, पर उनको प्रांतिक भाषाओं का रूप देकर, जैसे 'शर' को 'सर', 'लक्ष्मण' को 'लषन' अथवा 'लखन' इत्यादि। आवश्यकतानुसार बाह्य भाषाओं के शब्दों में संस्कृत के प्रत्यय भी जोड़ दिए हैं, जैसे 'शरीक' से 'सरीकता', 'गम' से 'गमि है' इत्यादि। पर इससे व्रजभाषा की स्वाभाविकता तनिक भी नष्ट नहीं होने पायी है। भाषा मुहावरेदार भी खूब है। मुहावरे ऐसे हैं जिनका बोल-चाल में बहुत ही प्रयोग किया जाता है। 'पानी भरी खाल है', 'धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को', 'भेंट पितरन को न मूड़ हू मे बार है', इत्यादि अनेक फबती हुई कहावतों के आ जाने से और भी रोचकता आ गई है।

अलंकार

तुलसीदासजी के अलंकार स्वाभाविक हैं, अर्थात् उनमें आलंकारिक चमत्कार ढूँढ़ने के लिए शब्दों के अर्थ में खींचातानी नहीं करनी पड़ती। किसी विशेष अलंकार को पुष्ट करने के लिए उन्होंने (केशवदास की भाँति) मूँड़ नहीं मारा है। अनुप्रास, यमक आदि के लिए भावों को नष्ट करना वे अच्छा नहीं समझते थे। इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने अनुप्रासों का प्रयोग नहीं किया है। समस्त ग्रंथ अनुप्रासों से भरा पड़ा है, पर उनमें स्वाभाविकता है। उनके लिए उन्हें शब्द खोजने नहीं पड़े, किन्तु वे तुलसीदासजी की प्रतिभा से स्वभावतः निकल पड़े हैं। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षाएँ तो बड़े कमाल की हैं। कई स्थलों पर 'समस्त वस्तु-विषयक सांग रूपकों' के अद्वितीय उदाहरण हैं। उनका निर्वाह आद्यंत अच्छी तरह से किया गया है।

रस

तुलसीदासजी में एक विशेषता यह है कि जिस रस का वर्णन करते हैं उसी प्रकार के छंद का भी प्रयोग करते हैं, और साथ ही भाषा भी उसी ढंग की होती है। सुन्दरकांड में भयानक रस के और लंकाकांड में वीर रस के बड़े ही अद्भुत और ओजपूर्ण छंद हैं। उन वर्णनों के पढ़ने से पाठकों और श्रोताओं की भुजाएँ फड़के बिना नहीं रहतीं। लंकाकांड के छंद ४९ और ५० में बीभत्स रस के वर्णन के पढ़ने से तो स्वतः नाक भौं सिकुड़ने लगती है। लंका

काड के छंद ५१ में वीर रस और वीभत्स रस का संमिश्रण करके तुलसीदासजी ने रणवर्णन में अपनी सिद्धहस्तता प्रकट कर दी है। इस पर भी खूबी यह कि दोनों को पूर्णतः निभा दिया है। अयोध्याकाड के अंतिम छद में हास्य रस की बड़ी ही अद्भुत छटा है। और भी कई रसों का वर्णन बड़े अच्छे ढंग से किया है।

शैली

तुलसीदासजी की वर्णनशैली बडे मार्के की है। जैसा कि पहले कहा गया है, यह प्रबधकाव्य नहीं है, अतएव रामायण का कोई भी प्रसंग सांगोपांग नहीं लिखा। कई मुख्य प्रसंग तो बिल्कुल ही छूट गये हैं। बालकांड के आरंभ मे सात सवैयों में रामचंद्रजी के बालरूप का ही रोचक वर्णन किया है। तुलसीदासजी रामचन्द्रजी के बालरूप के उपासक थे इसी से यह वर्णन बहुत बढिया बना है। इसमें प्रसाद गुण की मात्रा अधिक है। बालरूप का वर्णन रामायण और गीतावली में भी अत्युत्तम किया है। इसके बाद सब प्रसंग छोड़कर संक्षेप मे ही सीय-स्वयंवर का वर्णन कर परशुरामजी को ला मिलाया है। यह संवाद रामायण की तरह न विस्तृत ही है, न उतना रोचक ही। लक्ष्मण का परशुराम पर 'रावरी पिनाक मे सरीकता कहाँ रही' यह व्यंग्य बड़ा अच्छा है। २१वें छद में विश्वामित्रजी ने यज्ञरक्षा, अहल्योद्धार, धनुष-भंग आदि का वर्णन करके बडी खूबी से परशुराम को राम का अवतारी होना दर्शाया है।

अयोध्याकांड में प्रथम दो सवैयों में रामचंद्रजी का त्याग दिखलाया है केवट के अटपटे वचनों से उसके राम-प्रेम पर मुग्ध हुए बिना रहा नहीं जाता। इसके अनंतर अंत तक १५-१६ छंदो मे रामचंद्रजी के स्वरूप का वर्णन है। अतिम छंद में हास्य रस को पढ़ने से हँसी आये बिना नही रहती।

अरण्यकांड में केवल एक छंद है। उसमें हेम-कुरग के प्रसंग मात्र से सीता-हरण की ओर इशारा कर दिया है, और सब प्रसंग छोड़ दिये गये हैं।

किष्किधाकांड में भी केवल एक ही छंद है जिससे राम की सुग्रीव से मैत्री और हनुमान का समुद्र पार कर लंका में पहुँचना सूचित होता है।

संपूर्ण ग्रंथ में सुन्दरकांड ही सबसे उत्कृष्ट है। इसमें तुलसीदासजी ने एक-से-एक अच्छे रूपकों की सहायता से लंकादहन का बड़ा ही अनोखा वर्णन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो तुलसीदासजी स्वयं लंकादहन के समय वहीं

होगा और उसी के आधार पर लंकादहन का वर्णन किया होगा। कुछ भी हो इससे तुलसीदासजी की प्रतिभा, प्रकृति-निरीक्षण और अनुभव का पता अच्छी तरह से चल जाता है। वह वर्णन इतना अच्छा बन पड़ा है कि जितना वे 'रामचरित-मानस' में भी नहीं कर पाये।

लंकाकांड में ग्रंथ के विस्तार के अनुसार अंगद-रावण-संवाद काफी बड़ा है। इसके बाद बहुत दूर तक भयभीत मंदोदरी रावण को समझाती है। इन दोनों संवादों में पुनरुक्ति से बहुत ही अधिक काम लिया गया है। बार-बार रामचंद्रजी के पूर्व कृत्यों का स्मरण कराकर रावण को उनका प्रताप दिखलाया है। तदनंतर तीन चार ही छंदों में रामचंद्रजी और लक्ष्मणजी का युद्ध समाप्त कर तुलसीदासजी ने छंद ३६ से छंद ४७ तक हनुमानजी की युद्धशैली का वर्णन बड़े ही विस्तार और समारोह के साथ किया है। यह भाग वीररस से लबालब भरा है और पढ़ने अथवा सुनने से चित्त में स्फूर्ति आ जाती है और रणभूमि में दो-दो हाथ दिखाने को मन चाहता है। छंद ४८, ४९ और ५० में रणभूमि का जीता-जागता चित्र खींच दिया है। इक्यानबे छंद में वीर और वीभत्स रस का संमिश्रण करके तुलसीदासजी ने कमाल किया है। चार-पाँच छंदों में लक्ष्मण को शक्ति लगना कहकर एक ही छंद में कुंभकर्ण और रावण का वध कहकर लंकाकांड समाप्त किया है।

उत्तरकांड ग्रंथ का आधे से भी अधिक भाग है। इसमें रामायण की किसी घटना का वर्णन नहीं है, वरन् भिन्न-भिन्न विषयों के छंद हैं। आधे से अधिक में तो रामचंद्रजी की प्रशंसा, उनकी महिमा और उनकी स्तुति ही भरी पड़ी है। अजामिल, प्रह्लाद, गणिका आदि के उदाहरण देकर अनेक छंदों में श्रीरामचन्द्रजी की शरणागत-प्रतिपालकता का वर्णन किया है। इसके बाद बहुत दूर तक केवल रामनाम का ही माहात्म्य वर्णन करते गये हैं। प्रसंग के अतिरिक्त और भी कई स्थलों में रामनाम की महिमा गाई है। इस कांड में तुलसीदासजी ने रामचन्द्रजी का वर्णन दोनों तरह से किया है, निर्गुण मानकर भी और सगुण मानकर भी। कई छंदों में उन्होंने अपनी बाल्यावस्था का और अपनी दरिद्रता का हृदयद्रावक दृश्य खींचा है। छंद १६६ और १६७ में उन्होंने अपनी बाहु पीड़ा का भी जिक्र किया है। छंद ९८ से १०५ तक कलिकाल को भी खूब खरी

मथा नाम का भक्त या उमन लोगो

कहने में आकर तुलसीदासजी पर अविश्वास करके उनकी परीक्षा लेने को अपनी स्त्री को तुलसीदासजी के पास भेजा था। उसने उनका मन डिगाने के लिए अनेक उपाय किये। पर तुलसीदासजी विचलित न हुए। उन्होंने उसको फटकार दिया। कलिकाल-विषयक ये छंद उसी समय के कहे हुए हैं और उसी पर लक्ष्य करके कहे गये हैं। तुलसीदासजी पर यह आक्षेप किया जाता है कि वह स्त्रियों की उपेक्षा किया करते हैं। पर बात कहाँ तक सत्य है मैं नहीं कह सकता। मेरी समझ में तो यह बिल्कुल मिथ्या जान पड़ता है। इस ग्रंथ में उन्होंने अपने मन की उमंगों को प्रकट करने में कुछ कसर नहीं रक्खी है। अगर वास्तव में यह बात ठीक होती तो वे मेघा भगत की स्त्री की निंदा न कर कलियुग को क्यों डाँटते? रामायण में तुलसीदासजी ने उन्हीं स्थलों पर स्त्रियों की निंदा की है जिस प्रसंग पर ऐसी स्त्रियों का जिक्र आया है। जैसे कैकेयी के प्रसंग पर अथवा अरण्यकांड के अंत में नारद को समझाते समय। तुलसीदासजी ने प्रायः बीस छंदों में (१४६ से १६८ तक) शिवजी की स्तुति और महिमा गाई है। वे शिव और राम में भेद नहीं समझते थे। इसी प्रकार छंद १४८ में भवानी अन्नपूर्णा और छंद १७३ से १७५ तक पार्वतीजी की स्तुति की है। पार्वतीजी की स्तुति उस समय की बनाई हुई है जब काशी में महामारी का भीषण प्रकोप हुआ था। इसमें तुलसीदासजी ने राम और रामनाम के माहात्म्य के अतिरिक्त रामधाम का भी माहात्म्य गाया है। छंद १४१ और १४२ में चित्रकूट का, छंद १३८ में सीतामढ़ी का और छंद १३६-१४० में सीतावट की महिमा कही है। इसी सिलसिले में छंद १४४ में प्रयाग और आगे के तीन छंदों में गंगाजी का माहात्म्य है। इससे तत्कालीन सामाजिक दशा का थोड़ा-बहुत पता चलता है। उस समय के लोगों में राम, शिव, अन्नपूर्णा, चित्रकूट, सीतामढ़ी, सीतावट, गंगा, प्रयाग, काशी आदि पर बड़ी श्रद्धा थी। छंद १४३ में तुलसीदासजी ने एक पहाड़ पर आग लगने का दृश्य खींचा है। इस विषय में यह अनुमान किया जाता है कि जब वह चित्रकूट में थे तब उन्होंने दूर से हनुमानधारा नामक पर्वत पर आग लगी देखी होगी, क्योंकि उस पर्वत में अब भी बहुधा दावाग्नि प्रकट होती है। इस कांड के अनेक छंद काशी के बारे में बने हुए हैं, जिनमें से कुछ में तो काशी की महिमा का वर्णन करते हुए कलि की शिकायत की है। कुछ में काशी की अनेक घटनाओं का वर्णन किया है जैसे छंद १७० में

रुद्रबीसी के अपार संहार का छंद १७० से १७६ तक महामारी का प्रकोप, छंद १७७ में 'मीन की सनीचरी' का दुकाल आदि का वर्णन किया है। अंतिम तीन छंदों में कलिकाल-कृत काशी की दुर्दशा का वर्णन किया है। छंद १८० में एक क्षेमकरी नाम की चील की बहुत प्रशंसा की है। यात्रा के समय उसका दर्शन शुभ माना है। छंद १३३ से १३५ तक तीन छंदों में उन्होंने 'भ्रमर-गीत' लिखा है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है तुलसीदासजी ने इसमें कई मुख्य प्रसंगों को छोड़ दिया है। भरतजी का तो इसमें नाम भी नहीं है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि फुटकर काव्य में किसी का चरित्रचित्रण नहीं हो सकता। इस ग्रंथ में शृंगार रस का वर्णन बहुत ही कम है और वीर रस का बहुत अधिक। इसका कारण मेरी समझ से यह है कि इसमें तुलसीदासजी ने छप्पय, कवित्त आदि का प्रयोग किया है जिनमें वीर रस का वर्णन बहुत उत्तम होता है। इसी से इसमें युद्ध का वर्णन बहुत बढ़िया हुआ है। लंकादहन का भयानक दृश्य भी इन्हीं छंदों में है। अतएव वह भी बहुत ही उत्तम हुआ है। इसमें जहाँ भी तुलसीदास जी ने शृंगार, शांत और हास्य रसों का वर्णन किया है वहाँ सर्वत्र सवैयों का ही प्रयोग किया है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि सुकविजन मानते हैं कि किसी विशेष रस के लिए कोई विशेष छंद ही उपयुक्त हो सकता है, प्रत्येक छंद नहीं।

इस टीका में और टीकाओं से अनेक विशेषताएँ हैं। मूल के पहले उस छंद का नाम और लक्षण भी दे दिया गया है। इसके बाद मुख्य-मुख्य शब्दों का शब्दार्थ दिया गया है। जहाँ तक हो सका है प्रत्येक कठिन शब्द का ठीक-ठीक अर्थ दिया गया है। जहाँ-जहाँ जिस-जिस भाषा के शब्द आ गये हैं कोष्ठ के अन्तर्गत उनका उल्लेख कर दिया गया है, जैसे अरबी के लिए (अ०), फारसी (फा०), तुर्की (तु०), बंगाली (बं०), बुंदेलखंडी (बुं०), मारवाड़ी, (मा०), अवधी (अवधी), संस्कृत (सं०), प्राकृत (प्रा०) इत्यादि। जो शब्द प्राकृत से बने हैं उनके संस्कृत और प्राकृत रूप भी दे दिये गये हैं। कठिन पदों का अन्वय भी दे दिया गया है। तदनन्तर प्रत्येक छंद का सरल भाषा में भावार्थ भी दे दिया है। मुहावरों और कहावतों का भी स्पष्टार्थ दे दिया है। अंत में अलंकार और अन्यान्य विशेष बातों का भी उल्लेख कर दिया गया

है। पुस्तक के अंत में परिशिष्ट जोड़ दिया है जिससे पुस्तक में आई हुई अंतर्गत कथाओं का संक्षिप्त सारांश दे दिया है। यथासाध्य कई प्रतियों को मिलाकर पाठ शुद्ध करने का प्रयत्न किया गया है।

अंत में मैं अपने प्रिय शिष्य मोहनवल्लभ पंत का भक्तिपूर्ण आभार प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार करता हूँ जिसने इस टीका के लिखने में मेरे लेखक का काम करके मुझे सहायता पहुँचाई है। मैं उसे पढ़ा देता था और कह देता था कि इसे मेरी शैली से टीका रूप में लिख लाओ। वह लिख लाता और मैं उसे देखकर शुद्ध कर देता था। वही कापी प्रेस में भेजी गई और उसी के अनुसार यह प्रति छपी है।

किसी का कोई भी काम निर्दोष नहीं हो सकता, विद्वानों को जो दोष इस टीका में देख पड़े, कृपया मुझे उनकी सूचना दें। मैं दूसरे संस्करण में उन्हें सुधार दूँगा।

वसंतपंचमी
सं० १९८२,
काशी

भगवानदीन

कांडसूची

अंतर्दर्शन

जिस समय महात्मा तुलसीदास का प्रादुर्भाव हुआ उस समय भारत मे धार्मिक विप्लव मचा हुआ था । प्रत्येक संप्रदाय का मुखिया जनता को अपनी ओर खींचना चाहता था । निर्गुण-संप्रदायवालों का जोर कम हो रहा था और जनता के हृदय में भगवान् के सगुण-रूप की प्रतिष्ठा हो रही थी । सगुण-रूप की ओर जनता के झुकने का कारण भी था । ईश्वर का निर्गुण-रूप योगियों और बैरागियों के चिंतन का विषय था, उसकी आराधना प्रकृति की एकांत गोद मे वन्य-जीवन में रहते हुए ही हो सकती थी । ससार के व्यावहारिक जीवन के मेल में उसका स्रोत सूखा था । इसलिए जनता उसके प्रवाह में किसी प्रकार बह नहीं सकती थी । रामानुजाचार्य, रामानंद आदि का जो सगुणोपासना का प्रवाह बहा उसमें सराबोर होने के लिए जनता तुरंत लपकी । महात्मा वल्लभाचार्य आदि ने भगवान् के सगुण रूप की जो कल्पना की थी उसमें तन्मयता थी, उन्माद था, रागात्मिका-वृत्ति के रमाने का उपयुक्त साधन था, पर उसमें जीवन की अनेकरूपता नहीं थी, भगवान् का लोकमंगलकारी स्वरूप नहीं था । श्रीकृष्ण और राधिका का वह स्वरूप सामने लाया गया था जो समाज के लिए नहीं, अपितु व्यक्तिगत साधना के लिए उपयुक्त था । इसलिए यह आवश्यकता थी कि जनता के समक्ष कोई ऐसा रूप आए जो लोकमंगलकारी हो, जिसमें अनेकरूपता हो और जो जनता के जीवन के मेल में हर समय दिखाई दे । यह कार्य उक्त महात्माओं द्वारा हो रहा था पर जनता आदेशोपदेश मे लीन होकर अपनी प्रगति यकायक नहीं पलट दिया करती, उसकी प्रगति मे परिवर्तन व्यावहारिक क्षेत्र से ही होता है ।

तत्कालीन परिस्थिति

तुलसीदास ने सबसे पहले जनता की प्रकृति का मनन किया । इसके पश्चात् उन्होंने अपना मार्ग निश्चित किया और फिर उसका अनुसरण करते हुए जनता के भ्रांत हृदय को बहुत कुछ शांत किया । कुछ लोग बुद्धिवाद का सहारा लेकर यह भी कह सकते हैं कि तुलसीदास ने इसका कुछ भी प्रयत्न नहीं किया, तत्कालीन परिस्थिति की हवा से उड़ते हुए सब कुछ आप से आप

हो गया । किंतु उनके ग्रंथों में डूबकर तह तक आनेवाला ऐसा कभी नहीं कह सकता, क्योंकि उन सबके अनुशीलन से साफ पता चलता है कि कवि की दृष्टि कहाँ अटकी है । सभी जानते हैं कि उस समय सांप्रदायिक मनोमालिन्य पराकाष्ठा को पहुँच गया था । उत्तर भारत में उसका कुपरिणाम नहीं दिखाई पड़ा, क्योंकि वह तुलसीदास की दूरदर्शिता से जहाँ का तहाँ बैठ गया, पर उन स्थानों में जहाँ इस महात्मा की आवाज नहीं पहुँच पाई, तहाँ इनकी मंगशाला-मयी राममूर्ति की प्रतिष्ठा नहीं हो पाई, वहाँ लोग आँख खोलकर देख सकते हैं कि क्या परिणाम हुआ । शैवों और वैष्णवों का झगड़ा दक्षिणापथ में भी वैसा ही था जैसा उत्तरापथ में। उसके फलस्वरूप प्रसिद्ध काँची नगर कटकर 'शिव-काँची' और 'विष्णु-काँची' हो गया, पर उत्तर में 'शिव-काशी' और 'विष्णु-काशी' की नौबत नहीं आई । इसका कारण है महामना तुलसीदास का 'रामचरितमानस' । उसमें भगवान् शंकर राम के परमोपासक भक्त बतलाए गए हैं और राम भी शंकर के आराधक प्रदर्शित किए गए है । सांप्रदायिक झगड़ों को इस प्रकार व्यावहारिक जीवन के भीतर घुसकर निकाल बाहर करने का रचनात्मक कार्यक्रम और किसने किया है ।

तुलसीदास समाज के सामने जो आदर्श उपस्थित करना चाहते थे उसके लिए मर्यादापुरुषोत्तम राम से बढ़कर दूसरा आलंबन और कोई नहीं हो सकता था । श्रीकृष्ण के सगुण-रूप में वैसी अनेकरूपता नहीं थी । उनका द्वारकावाला स्वरूप अवश्य व्यापक था, पर उसमे राजाओं के योग्य राजनीतिक जीवन की बहार अधिक थी । जनता के सांसारिक जीवन से मिलकर चलने योग्य अनेकरूपता उसमें भी नहीं थी । गोपों के बीच उनका जो जीवन व्यतीत हुआ था वह बहुत कुछ जनता के योग्य था, पर था वह एकांगी ही, और पिछले खेवे के कवियों ने उसमें केवल शृंगार की ही झलक देखी थी । राम के रूप में यह बात नहीं थी । वे लीलापुरुषोत्तम न होकर मर्यादापुरुषोत्तम थे । व्यक्तिगत साधना से हटकर उसमें समष्टिगत साधना का भाव था । धर्म और जातीयता का सुन्दर समन्वय, लोकनीति और मर्यादावाद की रक्षा, शील और सदाचार का आदर्श सामने रखने के लिए उन्हीं का स्वरूप सबसे सुन्दर था । तुलसीदास ने इन सब बातों पर विचार किया था, इस स्वरूप को पहचाना था । अन्यथा वे अथ से इति तक केवल रामचरित का ही वर्णन न करते रहते । जिस युग

मे शृंगार की धारा बह रही हो, समाज में मत-मतांतरसंबंधी विशृंखलता छाई हो, उस समय रामचरित का केवल आदर्श रूप जनता के समक्ष रखना क्या कम दूरदर्शिता का काम था ।

केवल सामाजिक दृष्टि से ही नहीं, साहित्यिक दृष्टि से भी तुलसीदास को परखिए; तब पता चलेगा कि वस्तुत: इनमें आंतरिक दिव्य दृष्टि थी अथवा नहीं । इनके पहले कविता रचने की कई विभिन्न पद्धतियाँ प्रचलित थीं । इन्होंने एक-एक करके सब को माँजा और सबमे रामचरित कहा । चारणों और भाटों की कवित्त एवम् छप्पयवाली शैली, सूरदास आदि भक्त कवियों की पदवाली शैली, निर्गुनिए संतों की दोहेवाली शैली, रहीम आदि की बरवैवाली शैली तथा जायसी आदि प्रेमगाथावाले कवियों की दोहे-चौपाईवाली शैली—ये पाँच शैलियाँ मुख्य रूप से उस समय तक देखी गई थीं । इनके साथ ही कवि लोग दो भाषाओं का व्यवहार करते थे । ब्रजी की परंपरा बहुत पहले से चली आती थी ; आगे चलकर अवधी भाषा को प्रेमगाथावालों ने अपनाया । इस प्रकार पाँच शैलियों और दो भाषाओं को लेकर तुलसीदास रामचरित वर्णन करने में लगे । पहली शैली में इन्होंने अपनी 'कवितावली' रची, दूसरी पर 'गीतावली' बनाई, तीसरी पर 'दोहावली' लिखी, चौथी पर 'बरवै रामायण' का निर्माण किया और पाँचवीं पर 'रामचरितमानस' का प्रणयन किया । 'रामचरितमानस' एवम् 'बरवै रामायण' में अवधी का व्यवहार हुआ और कवितावली, गीतावली आदि में ब्रजी का उपयोग किया गया । स्मरण रखना चाहिए कि इन सबमें भी तुलसीदास ने साहित्यिक परिवर्तन किए, अंधानुसरण नहीं किया । अवधी में प्रेमगाथावाले कवियों ने जो रचना की थी उसमें साहित्यिक भाषा का निखरा हुआ साफ-सुथरा रूप नहीं था । उसमें जो कुछ मिठास थी वह अवधी की बोलचाल की थी । तुलसीदास ने उसको ग्रहण तो किया, पर उसे माँजकर साहित्यिक बनाया । रामचरितमानस में सर्वत्र यही प्रयत्न देखा जाता है । उसका सीधा-सादा चलता रूप वहीं मिलेगा जहाँ पात्र गँवार हैं; जैसे—मंथरा और कोल-भीलों के प्रसंग में । ब्रजी के कवियों में भी संस्कृत की कोमल-कांत पदावली को ग्रहण करने की प्रवृत्ति नहीं थी । सूरदास की भाषा में तो कई मेल मिले हुए हैं । ब्रजी का सीधा-सादा वैसा रूप

काव्य-रचना की पद्धतियाँ

भी उसमें नहीं था जैसा जायसी आदि में अवधी का था। ब्रजी का बढ़िया, शुद्ध और साहित्यिक स्वरूप तो रसखान तथा घनआनंद ने दिखलाया, जिसमें पहले के कवियों से अधिक मिठास थी। तुलसीदास ने ब्रजी का जो रूप सामने रखा वह बहुत परिष्कृत और चलता है। उसमें साहित्यिकता है, भाषा का सुन्दर गठन है। सूर की तरह इनकी भाषा जगह-जगह से उखड़ी हुई नहीं है।

केवल साहित्य-क्षेत्र में प्रचलित काव्य प्रणालियों का ही नहीं, अपितु जनता की रुचि को रामचरितमय बनाने के लिए इन्होंने 'रामललानहछू' ऐसी पुस्तक की रचना की। जनता में नहछू आदि संस्कारों के समय जो गाने गाए जाते थे उनमें जनता की कुप्रवृत्ति घुलकर मिली हुई थी। उनमें गंदी गालियों के सिवा और था ही क्या। पर तुलसीदास ने इसे दूर करने के विचार से सरल भाषा में रामललानहछू रच दिया। गार्हस्थ्य-संस्कारों के समय गाये जाने-वाले गंदे गीतों की ओर कई कवियों की दृष्टि गई, पर जनता से उक्त प्रवृत्ति हटा देने के सुन्दर ढंग पर किसी की दृष्टि नहीं जमी। केशव ने रामचंद्रचंद्रिका में जो 'गारियाँ' गवाई हैं उनमें कोरी साहित्यिकता है। जनता के काम की वे एकदम नहीं हैं। पर तुलसीदास की यह पुस्तक सभी के उपयोग मे आ सकती है। इस पुस्तक के निर्देश से हमारा अभिप्राय यही है कि इन्होंने जनसाधारण के जीवन के प्रत्येक अंग को भली-भाँति परखा था, ये समाज के भीतर घुसकर उसकी सभी प्रकार की प्रवृत्तियों को झाँक आए थे। यही नहीं, साहित्य और समाज दोनों को सामने रखकर इन्होंने अपनी 'रामबाण' औषधि का प्रयोग आरम्भ किया था। राम के लोकमंगलकारी रूप को इन्होंने काव्य-माधुरी में लपेटकर जनता के सामने रखा।

जनता की रुचि का सुधार

ऊपर हम कह आए हैं कि तुलसीदास के पूर्व साहित्य-क्षेत्र में कई प्रकार की शैलियाँ प्रचलित थीं। उनमें से भाटों की कवित्त एवम् छप्पयवाली शैली पर इन्होंने कवितावली की रचना की। भाटोंवाली शैली में प्रबंध-काव्यों की रचना वीरगाथाकाल मे हुई थी। चंद आदि के रासो में कथा का जिस प्रकार का सिलसिला जुड़ा चलता है वैसा पीछे नहीं था। पीछे ही क्यों उसी समय भाटों के 'कीर्तिकाव्य' प्रचलित हो गए थे जैसे—

कवितावली मुक्तक रचना है

नरपति नाल्ह का 'बीसलदेवरासो'। इन गीतिकाव्यों में कथा की शृंखला एक प्रकार से नहीं के समान थी और रहती भी थी तो केवल मोटी-मोटी घटनाएँ जो यत्र-तत्र आ जाया करती थीं। चरित्र की विशद व्याख्या का इनमें पता भी नहीं था। आगे चलकर तो इस शैली ने एकदम मुक्तक रूप धारण कर लिया। रासो आदि के पश्चात् इस शैली पर जितनी रचनाएँ हुईं उनमें कदाचित् ही कहीं प्रबंध-काव्य का व्यवस्थित रूप मिले। यदि कवि लोग कुछ जमकर कहते थे तो किसी वस्तु अथवा घटना विशेष के वर्णन में ही। कथा की शृंखला जुड़ी है या नहीं इसकी ओर तो आँख उठाकर भी नहीं देखते थे। यही बात कविता-वली में भी पाई जाती है। 'रामचरितमानस' की भाँति यह प्रबंध काव्य नहीं है, 'मुक्तक' काव्य है। समय-समय पर तुलसीदास ने इस शैली पर जो कुछ कहा उसी का या तो इन्होंने पीछे से संग्रह कर दिया होगा अथवा किसी शिष्य ने इनके जीवन काल के अनंतर इन्हें एकत्र किया होगा। इसके मुक्तक होने के और भी कई प्रमाण इसी ग्रंथ से मिल जाते हैं। सबसे प्रथम इसमें नियमा-नुसार मंगलाचरण नहीं है। तुलसीदास ऐसे भक्त कवि, जिन्होंने 'रामचरित-मानस' के प्रत्येक कांड के आदि में मंगलश्लोक दिया है, कवितावली के आदि में एक भी मंगलाचरण का छंद न दें, यह तभी संभव हो सकता है जब कविता प्रकीर्ण रूप में रची गई हो। दूसरी बात इसके मुक्तकरूप को सिद्ध करने वाली है रामचरित की चलती वर्णना। केवल मोटी-मोटी बातें ही छंदों मे मिलती हैं। दो-एक स्थानों को छोड़ कर कोई छंद दूसरे से कथा के लिए संबद्ध नही है। भरत ऐसे पुण्यश्लोक और प्रेमप्रतिम के विषय में तुलसीदास का मौन रह जाना इसीलिए है। अहल्योद्धार, कैकेयी-दशरथ संवाद आदि की कमी स्पष्ट यही बात कह रही है। यही क्यों, कई बातें तो उसी प्रकार दुहराई गई हैं जिस प्रकार सूरदास के 'सूरसागर' में स्थान-स्थान पर कई पदों में कुछ ही उलट-फेर से एक ही बात का कथन है।

नामकरण

एक बात और है। उत्तरकांड में जिस प्रकार के छंद संगृहीत हैं उन्हें देख कर तो कोई भी इस ग्रंथ को प्रबंध-काव्य नहीं कह सकता। इस कांड में रामचरित का उत्तरार्ध ... चाहिए था, न कि अपनी दीनता। विभिन्न देवताओ की स्तुति के फेर में नहीं पड़ना चाहिए था। बात यह है कि प्राचीन काल मे

कवित्त, सवैया और छप्पय इन तीनों छंदों को 'कबित्त' ही कहा करते थे। चंद आदि ने छप्पय के लिए 'कबित्त' शब्द का व्यवहार किया है। सवैये के लिए भी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में 'कबित्त' शब्द पाया जाता है। जान पड़ता है कि तुलसीदास ने कवित्त, सवैया और छप्पय में जो रामयश गाया था अथवा जो रामचरित समय-समय पर कहा था केवल वही नहीं, अपितु इन छंदों में जितनी भी कविता लिखी गई थी, एक स्थान पर क्रमपूर्वक एकत्र कर दी गई। इसीलिए इसका नाम 'कवितावली' या 'कबित्तावली' पड़ा। कभी-कभी 'हनुमान-बाहुक', जो कवित्तों में लिखा गया है, कवितावली का ही एक अंश माना जाता है। इसका भी कारण यही जान पड़ता है।

कवितावली की समालोचना करते समय सबसे पहले भाषा पर विचार करना है। हम ऊपर कह चुके हैं कि तुलसीदास ने अपने काव्यों में दो भाषाओं का प्रयोग किया है—एक ब्रजी का और दूसरी अवधी का। इसकी भाषा को ब्रजभाषा ही कहना चाहिए। उस समय साहित्य क्षेत्र में एक सामान्य काव्यभाषा का प्रचार था, जिसका प्रयोग सभी हिंदी-कवि किया करते थे। राजस्थान में इस भाषा का नाम 'पिंगल-भाषा' था। वे लोग अपनी राजस्थानी साहित्यिक भाषा को 'डिंगल' कहते थे। उक्त सामान्य काव्यभाषा का प्रयोग सभी प्रांत के लोग करते थे। ब्रजी का शुद्ध रूप सभी कवियों की भाषाओं में देखने दौड़ना ठीक नहीं। सभी घनआनंद और रसखानि नहीं हो सकते, और न सभी के होने की आवश्यकता ही है। अन्य प्रांत के अथवा ब्रज-प्रदेश से कुछ हटकर रहनेवाले कवियों की भाषा में उनके देश की कुछ-न-कुछ छाप पाई ही जाती है। केशव की भाषा में बुन्देली का पुट है तो देव, भूषण आदि की भाषा में बैसवाड़ी की झलक। इसी प्रकार अवध प्रांत या उसके समीप रहनेवाले कवियों की सामान्य काव्यभाषा भी अवधी के मिश्रण से नहीं बची। यही कारण है कि कवितावली में अवधी का मिश्रण है। तुलसीदास की अवधी और ब्रजी पर दृष्टि डालने से स्पष्ट लक्षित होता है कि इन्होंने दोनों को साहित्यिक साँचे में ढालने का उद्योग किया है। अवधी इनके पहले साहित्यिक क्षेत्र से दूर पड़ी थी। उसमें केवल ठेठ रूप की ही मिठास थी। इसलिए उसमें सुधार करके उसे साहित्यिक रूप देने के लिए विशेष उद्योग की ——— थी। संस्कृत की

कोमल-कांत पदावली का अनुसरण तुलसीदास ने अपनी भाषा में निरंतर किया है। पर तुलसीदास के पश्चात् अवधी भाषा मे कोई ऐसा कवि नहीं हुआ जो इनकी जमाई परिपाटी को व्यवस्थित रूप से आगे ले चलता। इसीलिए अवधी भाषा सामान्य काव्य भाषा नहीं हो सकी। एक बार उसका उत्थान हुआ और वह थोड़ी-सी विकसित होकर ही [illegible] गई।

व्रजी के संबंध में ऐसा नहीं था। [illegible]ोपयुक्त बनाने के लिए उद्योग नहीं करना था, वह पहले से ही मँजी-मँजाई चली आ रही थी। केवल उसे कुछ स्थिरता देने की आवश्यकता थी और व्रज-प्रांत के शब्दों का सहारा न लेकर सभी स्थानों में प्रचलित शब्दों का प्रयोग बढ़ाने की आवश्यकता थी। इस प्रकार भाषा को सबके योग्य बना देने से ही व्रजी का महत्व भी बढ़ सकता था। केवल व्रज प्रांत के कटघरे में बंद रहने से भाषा प्रादेशिक हो जाती और उसमे काव्य का निर्माण सबके लिए दुरूह हो जाता। कवितावली और गीतावली में यही बात दिखाई देती है। तुलसीदास ने व्रजी का केवल ढाँचा भर लिया। उसमें बहुप्रचलित मुहावरे और शब्द अन्य देशों के भी रख दिए हैं। पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि भाषा मिश्रित करके चौपट कर दी गई है। भाषा की स्वाभाविक धारा ऐसी बढ़िया है कि तुलसीदास के इस प्रयत्न पर ध्यान ही नहीं जाता। विश्रृंखलता तो कहीं पाई ही नहीं जाती। हिंदी के प्रसार-क्षेत्र मे व्यवहृत होने वाली ही नहीं, इन्होंने अन्य देशी और विदेशी भाषाओं के शब्दों को भी ग्रहण किया है। अन्य भाषाओं के शब्दों का सामान्य काव्य-भाषा में प्रयोग पहले से ही होता चला आ रहा था, पर वे शब्द इतने घुल-मिल गये थे कि उनके मूल रूप का पता ही नहीं था। पर तुलसीदास ने उस समय के प्रचलित शब्दों को स्वयम् ग्रहण किया। पहले के किसी कवि ने इस शब्द का प्रयोग किया है या नहीं, इस पर वे विचार करने ही नहीं बैठे। इतना ही नहीं अपितु कहीं-कहीं तो विदेशी शब्दों में अपनी भाषा के प्रत्ययों तक का प्रयोग कर दिया है; जैसे—'शरीक' से 'शरीकता'। किंतु कहीं-कहीं विदेशी शब्दों से क्रिया बनाना खटक भी जाता है; जैसे—'गम' से 'गमि' है। भाषा को व्यवस्थित रखने और उसमें काव्योपयुक्त स्थिरता लाने के लिए ऐसे प्रयोग अनपेक्षित हैं।

तुलसीदास की कवितावली में सामान्य काव्यभाषा का जो स्वरूप रखा गया है उसमें विदेशी भाषाओं से लेकर हिंदी से इतर देशी भाषाओं और बोलियों

तक के शब्द रखे गये हैं । कुछ शब्द तो बहुप्रचलित ग्रहण किए गए हैं, पर कहीं-कहीं अप्रचलित शब्दों का भी व्यवहार कर दिया गया है, जो खटकता है । जैसे—अरबी के हलक, कहरी गुलाम, हराम आदि शब्द तो प्रचलित है, पर किसब (कारीगर), हबूब (हुबाब—पानी का बुलबुला–चर्चा) अप्रचलित एवम् अप्रयुक्त हैं । इसी प्रकार फारसी के कागर (कागज), दगाबाज दराज, नेवाज आदि प्रचलित शब्द हैं, पर गालिम (पराक्रमी), रवा (उचित) कम प्रचलित हैं । संस्कृत के भी कुछ अप्रचलित शब्द रखे गए हैं; जैसे—बालिश (मूर्ख), सरवाक (शराव, कसोर), बेर (शरीर)आदि । अन्य भाषाओं और बोलियों की कुछ शब्द यहाँ पर केवल जानकारी के लिए उद्धृत किए जाते हैं । तुर्की = बैरख (बैरक = झंडा) । बँगला-सकारे (सकाल = प्रातःकाल) । मारवाड़ी = म्हाको (मेरा) । ये सब प्रचलित शब्द हैं । इन्हें कवि ने बिना किसी संकोच के काव्य रचना में ग्रहण किया है ।

प्राचीन काव्यभाषा में कुछ शब्द ऐसे मिलते हैं जो सीधे अपभ्रंश काल से चले आ रहे हैं और जिनका प्रयोग व्रजी के कवि आज तक करते हैं । ऐसे शब्द यद्यपि बोलचाल से उठ चुके थे, पर काव्य क्षेत्र से उनका प्रभाव नहीं उठा था । तुलसीदास ने ऐसे शब्दों को भी कवितावली में स्थान दिया है, पर शब्द वे ही रखे गये हैं जो काव्यभाषा के उपयुक्त थे और जिन्हें पहचान लेना सरल था; यथा—मयन (मदन), पब्बै (पर्वत), सायर (सागर) आदि । स्थान-स्थान पर ऐसे शब्द भी दिखाई पड़ते हैं जो संस्कृत से प्राकृत के नियमानुसार विकृत होकर भाषाक्षेत्र में पहुँचे थे और जिनका प्रयोग तुलसीदास के पहले से ही चला आ रहा था । पर स्मरण रखना चाहिए कि ऐसे शब्दों का प्रयोग भी समझ कर किया गया है दुरूह शब्द कहीं भी नहीं रखा गया है; यथा—महन (मथन), रूख (वृक्ष), बयन (वचन) आदि ।

तुलसीदास की भाषा में अवधी के शब्दों का फिर भी बाहुल्य है । यह स्वाभाविक था । इनका अवधी पर विशेष अधिकार था । अवध प्रांत में ही इन्होंने अपने जीवन का अधिकांश बिताया था । व्रजी का ज्ञान इन्हें अध्ययन से ही विशेष हुआ था, पर अवध प्रांत की भाषा में इनका एक-एक परमाणु पला था । केवल शब्द ही नहीं, अवध-प्रांत के मुहावरे और कहावतें भी अधिक प्रयुक्त हैं । इतने पर भी दो चार अपवादों को छोड़कर इन सब का व्यवहार

काव्यक्षत्र की भाषा की को दृष्टि मे रख कर ही हुआ है उदाहरण घालि (घलुआ), सजोइल, थारि (समूह या सेना), बगमल, खपुआ (भगोड़) से (वे) अकनि (आकर्ण्य = सुनकर), संधानो, पँवारा (कीर्ति), कलोरे (बछड़े), अछत (रहते, जीते-जी) आदि ; मुहावरे—खीस जाना (नष्ट होना) लसम के खसम (असहाय के सहायक) आदि; कहावतें—खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप है, मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियतु है, चाम की चलाई है आदि। इनके अतिरिक्त तुलसीदास ने अवधी को एक और विशेषता ग्रहण की है। जिस प्रकार ब्रजी मे अकारांत संज्ञा-शब्द ओकारांत कर दिए जाते हैं ठीक उसी प्रकार अवधी में भी अकारांत शब्द उकारांत कर दिए जाते हैं। अवधी भाषा के ग्रंथों में तो तुलसीदास ने इस विशेषता को अत्यधिक ग्रहण किया है पर कवितावली में इसका प्रयोग यत्र-तत्र हो हुआ है। उकारवाली यह प्रवृत्ति उकारबहुला 'अपभ्रंश' भाषा की है, उदाहरण लीजिए—

जब अंगदादिन की मति-गति मंद भई,
पवन के पूत को कूदिबे न पलु गो।
साहसी ह्वै सैल पर सहसा सकेलि आइ,
चितवत चहुँ ओर औरन को कलु गो।
'तुलसी' रसातल को निकसि सलिल आयो,
कोल कलमल्यो, अहि कमठ को बल गो।
चारिहू चरन के चपेट चाँपे चिपटि गो,
उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो॥

पलु, कलु, बलु और अचलु के स्थान पर पल, कल, बल और अचल से भी काम चल सकता था। पर उकारांत हो जाने से शब्द मधुर हो गए हैं।

इस ग्रन्थ में कवि ने तत्सम, तद्भव और ठेठ तीनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। अर्धतत्सम शब्द भी पर्याप्त मात्रा में आये हैं; किंतु ठेठ शब्द बहुत कम हैं। वस्तुतः ठेठ शब्दों के प्रयोग से भाषा की व्यापकता को क्षति पहुचती हैं इसी से तुलसीदास ने ऐसे शब्द कम रखे हैं। साटक-फाटक के ऐसे दो-चार शब्द अवश्य यत्र-तत्र दिखाई पड़ जाते हैं। अर्बुद, सीद्यमान, खेचर, अहै आदि तत्सम शब्दों का प्रयोग तो हुआ ही है, कहीं-कहीं 'वदति' ऐसी क्रियाएँ भी तत्सम रूप में ही रख दी गई हैं। अधिकता तत्सम और अर्धतत्सम शब्दो की ही है तद्भव शब्द अपेक्षाकृत कम हैं। पैज (प्रतिज्ञा) काँठे (उपकंठ=

पास), पगार (प्राकार—चहारदीवारी) के ऐसे तद्भव शब्द कम प्रयुक्त हुए है।

मुहावरे और लोकोक्तियों का प्राचुर्य इस ग्रंथ की भाषा की विशेषता है। यों तो मुहावरे सार्वदेशिक ही है, पर कहीं-कहीं प्रांतिक मुहावरे भी आ गए है। ऊपर दो-चार अवधी मुहावरे दिए गए हैं, दो-एक स्थानों पर बुंदेलखंडी मुहावरे भी प्रयुक्त हुए हैं; यथा—गोद कै लै (गोद में लेकर), भाँड़ जाना (घूम-घूमकर देख जाना)—'सहित समाज गढ़ राँड कैसो भाँडि गो' तुलसीदास ने ऐसे प्रयोग कम किए हैं। कहावतें पुस्तक भर में प्रयुक्त हुई हैं। उत्तरकांड में इनका बाहुल्य है। पुस्तक को पढ़ने से जान पड़ता है कि इसके पद्य कहावतों को दृष्टि में रखकर रचे गए हैं। जिस प्रकार 'बरवै रमायण' में अलंकारों का प्रयोग सफाई के साथ किया गया है, ठीक उसी प्रकार ग्रंथ में भी लोकोक्तियों का प्रयोग साहित्यिक ढंग पर मिलता है। बरबस वे जोड़ी हुई नहीं है। यही कारण है कि दो-एक स्थानों को छोड़ कर जहाँ-जहाँ लोकोक्ति का प्रयोग हुआ है, वहाँ-वहाँ छेकोक्ति अलंकार हो गया है। कहावतें प्राय सार्वदेशिक और बहुप्रचलित हैं; यथा धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को, बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को, काटिए न नाथ विषहू को रूख लाइके आदि।

सूरदास ने तुकांत के लिए शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा है और बहुत से कवियों ने नये-नये मनमाने शब्द गढ़े हैं। पर तुलसी में ऐसी प्रवृत्ति नहीं है। कहीं-कहीं विवश होकर शब्द तोड़ने अवश्य पड़े है, पर उनका स्वरूप बहुत अधिक नहीं बिगड़ा है : जैसे—चारिखो (चारि को), चुवा (चौवा = चौपाया) आदि। नये शब्द तो तुलसीदास ने बहुत कम गढ़े हैं, जो गढ़े हैं उनमे भाव स्पष्ट हो जाता है, दुरूहता कहीं नहीं है—अग्नि के लिए इन्होंने 'खरखौकी' शब्द का प्रयोग किया है।

भाषा को रसानुकूल बनाने के लिए तीन गुणों का भी ध्यान रखना पड़ता है; माधुर्य, ओज और प्रसाद का। माधुर्य गुण के लिए क ख ग घ आदि मधुर अक्षरों का प्रयोग, रेफहीन और छोटे समासों से रहित रचना की जाती है। इसका प्रयोग, शृंगार, करुण और शांत रसों में विशेष रूप से और हास्य एवम् अद्भुत में सामान्यतः आवश्यक है। ओज के लिए द्वित्व वर्णों, संयुक्त वर्णों, संयुक्त वर्ण में परवर्ती रकारयुक्त-वर्ण और रेफयुक्त एवम् टवर्ग के आधिक्य से कर्कश रचना की जाती है और लम्बे-लम्बे

समास रख जाते हैं । यह गुण वीर एवम् रौद्र मे विशेष रूप से और बीभत्स एवम् भयानक में सामान्यतः आवश्यक है। प्रसाद गुण के लिए सरल, सीधे-सादे, सुबोध शब्दों द्वारा रचना की जाती है। इसका प्रयोग सभी रसों में होता है। कवि ने कवितावली में इन गुणों का अपनी अन्यकृतियों से कहीं अधिक ध्यान रखा है। राम के बालरूप-वर्णन में माधुर्य गुण कूट-कूटकर भरा है। लंकाकांड में ओज गुण का प्रयोग कवि की चातुरी का निदर्शक है। प्रसाद गुण पुस्तक भर में है। कतिपय स्थलों को छोड़कर कवितावली के सभी पद्य सुबोध हैं। कम से कम भाषा की क्लिष्टता के कारण भाव कहीं भी दुरूह नहीं होने पाया है, अपितु दुरूह भाव के लिए भाषा अत्यंत सरल कर दी गई है, जिससे भाव भली भाँति स्पष्ट हो जाता है।

ऊपर कह आए है कि भाषा में साहित्यिकता और माधुर्य लाने के लिए संस्कृत की कोमल-कांत पदावली अत्यंत उपयुक्त है। तुलसीदास ने इसका प्रयोग स्थान-स्थान पर किया है। 'विनयपत्रिका' में इसका प्रयोग विशेष रूप से हुआ है, पर अन्य ग्रन्थों में भी यथास्थान इसका व्यवहार देखा जाता है। कम से-कम 'विनय' के प्रसंग में तुलसीदास ने इसका बहुत अधिक ध्यान रखा है। पर केशव की भाँति कठिन और अप्रयुक्त संस्कृत शब्दों को ठूंसने का प्रयास कहीं भी नही है, कवि को हिंदी की प्रकृति का पूरा ध्यान था। देखिए—

गरल-असन दिग्बसन ब्यसन-भंजन, जन-रंजन।
कंद-इंदु-कर्पूर-गौर, सच्चिदानंद-घन।
बिकट-बेष, उर सेष, सीस सुरसरित सहज सुचि।
सिव अकाम, अभिराम-धाम नित रामनाम रुचि।
कंदर्प-दर्प-दुर्गम-दवन, उमा-रवन, गुन-भवन हर।
तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन-पर, त्रिपुर-मथन, जय त्रिदसबर।

ऊपर के विवेचन से पता चल गया होगा कि तुलसी ने भाषा को व्यवस्थित करने का कितना अधिक प्रयत्न किया है और उनकी भाषा में दूषित प्रयोगों का कितना अभाव है। हिन्दी में ऐसे कवि कम दिखाई पड़ते हैं जिन्होंने भाषा की सफाई पर भी ध्यान दिया हो। भाषा के विचार से जब हिंदी के बड़े-बड़े कवि सूर, केशव, भूषण आदि को देखते हैं तो इन सबकी भाषा मे दोष दिखाई देते हैं। सूर और भूषण की भाषा बहुत-कुछ उखड़ी हुई है। केशव की भाषा को संस्कृत पदावली और अलंकार ने चौपट किया है।

किसी कवि की कविता की समालोचना करने के लिए तीन बातों पर विचार करना आवश्यक होता है—भाषा, भाव और वस्तु-वर्णन। तुलसीदास की भाषा पर विचार किया जा चुका है। अब भाव और वस्तु-वर्णन पर विचार करना है। भाव से तात्पर्य रीति शास्त्र के रसपोषक भावों से है। इसी के अन्तर्गत स्वतंत्र रूप में उन भावों की भी गणना हो जायगी जो रसावस्था तक नहीं पहुँचते। कवि की रसव्यंजना और भावव्यंजना कवितावली में बहुत अच्छी है। यथास्थान सभी रसों और अधिकांश भावों का दिग्दर्शन इस पुस्तक मे मिलेगा। कहीं-कहीं तो ऐसे भाव दिखाए गए हैं जो रीतिकारों के निरूपित नामों की सीमा के बाहर के हैं। वत्सल-रस का वर्णन इनकी दो पुस्तकों—कवितावली और गीतावली—में बहुत बढ़िया है। सूरदास और तुलसीदास के बाल-वर्णन पढ़कर वत्सल को भाव-कोटि में रखनेवाले आचार्य भी विचलित हो सकते हैं। उन्हें मानना ही पड़ेगा कि वत्सल को भी 'रसत्व' प्राप्त है। हास्यरस का मर्यादापूर्ण वर्णन कवितावली के एक ही पद्य में है। पर उसके जोड़ का दूसरा पद्य कठिनता से कहीं मिलेगा। वीर और भयानक रस तो कवितावली की मुख्य विशेषता है। तुलसीदास ही एक ऐसे मर्यादावादी कवि हैं जिनकी कविता मे पवित्र शृंगार के दर्शन होते हैं। शांत रस इस पुस्तक के उत्तरकांड मे पर्याप्त परिमाण में पाया जाता है। साथ ही इस रस के अनुरूप भावों का निरूपण बहुत ही अच्छा बन पड़ा है। उदाहरणों द्वारा ही इस कथन की मीमांसा समीचीन होगी।

भाव

विवाह के समय सीता के कंगन में जड़े हुए नग में राम का प्रतिबिंब पड़ रहा है। सीता एकटक उसी रूप-लावण्य का पान कर रही हैं। कोहबर में वर-बधू जुआ खेल रहे हैं, उसमें अपनी बाजी के लिए सीता का हाथ ही नहीं बढ़ता। भय है कि राम का यह रूप-माधुर्य विचलित न हो जाय। इसी से रामजी हर बार बाजी मार ले जाते हैं। सीता की इस 'जड़ता' ने उन्हें अच्छा अवसर दिया। कवि कहता है—

रस

दूलह श्रीरघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि बेद जुआ जुरि बिप्र पढ़ाहीं।

राम को रूप निहारति जानकि कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं ।।

रसाभ्यासियों के लिए अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। रस के चारों अंग इसमें स्पष्ट लक्षित हैं। रति स्थायी; राम-सीता आलंबन; राम का प्रतिबिंब उद्दीपन; एकटक देखना, जुए में योग न देना, कर का स्थिर कर लेना आदि अनुभाव; जड़ता, मति, हर्ष आदि संचारी भाव हैं। शृंगार का इतना मर्यादित वर्णन हिन्दी में कम मिलेगा। जहाँ अनन्त काल तक घोर और कहीं-कहीं तो भद्दे शृंगार की अविच्छिन्न धारा बही हो उस साहित्य में इस कोटि का शृंगार-वर्णन करनेवाला यदि कोई महात्मा है तो तुलसीदास। रसवादियों की दृष्टि छोड़कर यदि कलावादियों की दृष्टि से भी इस पद्य पर विचार किया जाता है तो यह कलापूर्णता का, वस्तु-निरूपण का और भाव-व्यंजना का यह एक ही पद्य ठहरता है। भावुक कवि की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि मनुष्य के हृदय में घुसकर उसकी भावनाओं का उथल-पुथल लख ले और फिर उसका कलापूर्ण निरूपण करे।

रामचंद्र विंध्याचल के वन्य प्रदेश से होकर चले जा रहे हैं। तुलसीदास को एक बड़ी सुन्दर हास्य की उक्ति सूझी। वे लिखते हैं—

बिंध्य के बासी उदासी, तपोव्रतधारी महा, बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी, 'तुलसी' सो कथा सुनि भे मुनि-बृन्द सुखारे।
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद-मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे।।

बेचारे तपस्वी अपने वन्य जीवन में अवश्य ही स्त्रियों के बिना दुखी रहे होंगे। तपस्या करते-करते और नहीं तो कम से कम उनका एकांत जीवन तो अवश्य ही भार हो गया होगा। फिर अपनी बिरादरी के गौतम ऋषि को अहल्या का वरण करते सुनकर उनमें उत्सुकता का होना स्वाभाविक ही है। इसमें कितना सुन्दर और गूढ़ हास्य है! यदि गौतम की स्त्री अहल्या न तरी होती, किसी गृहस्थ की स्त्री शिला से सुन्दरी हो गई होती, तो इस हास्य-रस का रंग फीका होता। पर अहल्या के ऋषिपत्नीत्व ने इस हास्य में जान डाल दी। तुलसीदास ने इस उदाहरण द्वारा उन भोंड़ी भावनावाले कवियों को पूरी शिक्षा दी है जो गाली-गलौज में ही हास्य-रस देखा करते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि स छंद में केवल हास्य ही हास्य नहीं तथ्यपूर्ण बातें भी छिपी हैं। राम की

महत्ता का छिपा वर्णन कितना उत्तम है। विन्ध्य के वासी तपस्वी नारियों के लिए दुखी रहे हों या नहीं, पर यदि वे तुलसीदास की यह उक्ति सुन लेते तो हँस अवश्य ही देते। इस पद्य में भी काव्य और कला दोनों का रक्षण दर्शनीय है। रस-परिपाक के लिए चारों अंगों को ढूँढ़नेवाले काव्याभ्यासी चाहे इसमें उनकी स्थिति भरपूर न पा सकें, पर पद्य जिस उद्देश्य से लिखा गया है उसकी पूर्ति में कोई कसर नहीं रह जाती। प्रत्येक साहित्य-मर्मज्ञ इस भावुकता पर केवल हँसेगा ही नहीं, इसकी रस-धारा में मग्न भी होगा।

अब कवितावली के मुख्य रसों की बानगी देखिए। लंकाकांड में वीररस के एक से एक उत्कृष्ट उदाहरण हैं। पर अंगद की वीरता का ऊहात्मक वर्णन विशेष कलापूर्ण जान पड़ता है—

> रोप्यो पाँव पैज कै बिचारि रघुबीर-बल,
> लागे भट सिमिटि न नेकु टसकतु है।
> तज्यो धीर धरनि, धरनिधर धसकत,
> धराधर धीर भार सहि न सकतु है।
> महाबली, बालि को, दबत दलकति भूमि,
> 'तुलसी' उछरि सिंधु, मेरु मसकतु है।
> कमठ कठिन पीठि, घट्टा परो मंदर को,
> आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है॥

संभवत: कमठ की पीठ छिल गई होती, पर समुद्र-मथन के समय पड़े हुए घट्ठे ने उसकी रक्षा की। कल्पना की उड़ान ऊँची है। प्राचीन रीतिशास्त्र के ढंग से वीरता का निदर्शन बहुत अच्छा है। हनूमान की वीरता का भी उदाहरण लीजिए—

> मत्त-भट-मुकुट-दसकंध-साहस-सइल—
> सृंग-बिद्दरनि जनु बज्र टाँकी।
> दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ,
> सेष संकुचित, संकित पिनाकी।
> चलति महि मेरु, उच्छलित सायर सकल,
> बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी।
> रजनिचर-घरनि-घर गर्भ-अर्भक स्रवत,
> सुनत हनुमान की हाँक बाँकी॥

सुंदरकांड में लंकादाह का बड़ा लंबा वर्णन है। इस वर्णन में भयानक रस लबालब भरा है। अंतरंग और बहिरंग दोनों प्रकार के चित्रण वहाँ देखे

ाते हैं। दो-एक उदाहरण लीजिए—

'पानी पानी पानी' सब रानी अकुलानी कहैं,
जाति हैं परानी गति जानि गजचालि है।
बसन बिसारें, मनिभूषन, सँभारत न,
आनन सुखाने, कहैं 'क्योंहू कोऊ पालिहै ?'
'तुलसी' मँदोवै मीजि हाथ धुनि माथ कहै,
'काहू कान कियो न, मैं कह्यो केतो कालि है।
बापुरो विभीषन पुकारि बार-बार कह्यो,
बानर बड़ी बलाइ घने घर घालिहै ॥'
रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं,
सकैं ना बिलोकि बेष केसरी-कुमार को।
मींजि मींजि हाथ, धुनैं माथ दसमाथ-तिय,
'तुलसी' तिलौ न भयो बाहिर अगार को।
सब असबाब डाढ़ो मैं न काढ़ो, तैं न काढ़ो,
जिय की परी, सँभारै सहन-भंडार को।
खीझति मँदोवै सबिषाद देखि मेघनाद,
'बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को ॥'

इस प्रकार के सभी पद्यों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें चित्र और भाव-निरूपण के अतिरिक्त मुहावरों और लोकोक्तियों की भी बंदिश बड़ी बढ़िया है। साथ ही इनमें रानियों की 'खीझ' भय का संचारी भाव होक आई है, जो अमर्ष और क्रोध दोनों से भिन्न है।

लंकाकांड में बीभत्स-रस का भी निदर्शन है। एक स्थान पर कवि ने अपने प्रतिभा-फल से बीभत्स में भी माधुर्य देखा है। दोनों प्रकार उदाहरण यहाँ उद्धृत किए जाते हैं—

ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे,
मूँड़ के कमंडलु, खपर किये कोरि कै।
जोगिनी झुटुंग झुंड-झुंड बनी तापसी-सी,
तीर-तीर बैठीं सो समर-सरि खोरि कै।
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ-से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै।
'तुलसी' बैताल-भूत साथ लिए भूतनाथ,
हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि कै ॥

दूसरे प्रकार का उदाहरण भी लीजिए। देखिए कवि-गण किस प्रक

बीभत्स व्यापारों में भी सौंदर्य का प्रत्यक्षीकरण करते हैं—

राम-सरासन तें चले तीर, रहे न सरीर, हड़ावरि फूटी।
रावन धीर न पीर गनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटी।
सोनित छींट-छटानि-जटे, 'तुलसी' प्रभु सोहैं, महा छबि छूटी।
मानो मरक्कत-सैल-बिसाल में फैलि चलीं बर बीरबहूटी॥

रक्तबिंदुओं से लथपथ राम का शरीर देखनेवाले के हृदय से मुँह फेर लेने का अनुरोध करेगा। पर तुलसीदास को यह अभीष्ट नहीं था। इसीलिए उन्होंने अपने अप्रस्तुतविधान द्वारा इसकी भली भाँति रक्षा की है। इस अप्रस्तुतविधान में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें रसविरोध का नाम भी नहीं है। बीभत्सता को बड़े अच्छे ढंग से छिपाया गया है। सारूप्य और साधर्म्य दोनों का निर्वाह है। तुलसीदास ने रामचरितमानस में भी राम के इस रूप में दूसरे प्रकार के अप्रस्तुतविधान द्वारा यही माधुर्य देखा है—

भुज-दंड सर-कोदंड फेरत रुधिर-कन तन अति बने।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने॥

कालिदास ने भी ताड़कावध में कुछ सौंदर्य लाने के विचार से 'रूपक' का सहारा लिया है। पर रस-विरोध के कारण उनका वर्णन साहित्यिक दृष्टि से उतना अच्छा नहीं है—

राममन्मथशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी।
गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा॥

वीररस के उन्मेष में ताड़कावध करनेवाले राम को 'मन्मथ' बना डालना रसाभ्यासियों को अवश्य ही खटकता होगा। 'गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता' में केवल सारूप्य ही है, साधर्म्य का पता नहीं अपितु इसे वैधर्म्य कहना चाहिए। तुलसीदास के दोनों अप्रस्तुतों में ऐसी बेमेल बातें नहीं है। केवल खून से लथपथ शरीर में सौंदर्य की भावना की गई है।

पहले कह चुके हैं कि इस पुस्तक के उत्तरकांड में शांतरस की अनोखी धारा बहती है, शांतरस के इतने सुन्दर छंद और कहीं नहीं दिखाई देते। इसका कारण है। संतों की वाणी में भी शांतरस है, पर कहीं-कहीं सांप्रदायिक शब्दों की उलझन में वह ऐसी जकड़ी है कि रसमग्नता आने ही नहीं पाती। तुलसीदास के पद्यों को सुस्थिर चित्त से पढ़िए, इनमें सच्चे हृदय की सीधी-सादी पुकार सुनकर आप का हृदय फूट पड़ेगा—

रावरो कहावौं गुन गावौं राम रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानि हौं ।
जानत जहान, मन मेरेहू गुमान बड़ो,
मान्यौ मैं न दूसरो, न मानत, न मानिहौं ।
पाँच की प्रतीति न, भरोसो मोहि आपनोई,
तुम अपनायो हौं तबै ही परि जानिहौं ।
गढ़ि-गुढ़ि छोलि-छालि कुन्द की सी भाई बातें,
जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनिहौं ॥

अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं । उत्तरकांड के सैकड़ों छंदों में पूर्ण शांतरस लहराता है । जिसकी इच्छा हो उसमें मार्जन करे ।

वत्सलरस का भी एक उदाहरण दे देना चाहिए । जिस रस को लोग शृंगार रस के सरोवर की एक नाली बतलाते हैं, जिसे पुत्रविषयक रति-भाव कहकर पूर्णरसत्व का प्रमाण-पत्र नहीं दिया जाता, उसकी बानगी तुलसीदास की कवितावली से देखिए । इसने भाव की सीमा से निकलकर रस-सागर में प्रवेश किया है । कितने ही भावक इसमें डूबते-उतराते रहते हैं—

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं ।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत मातु सबै मन मोद भरैं ।
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं ।
अवधेस के बालक चारि-सदा 'तुलसी' मन-मन्दिर में बिहरैं ।

यहाँ पर वत्सल के रसत्व का विवेचन अभीष्ट नहीं । संस्कृत के प्रसिद्ध रसवादी साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने इस पर पर्याप्त विचार किया है ।

अब केवल करुण, रौद्र और अद्भुत रसों का दिग्दर्शन शेष है । इनके उदाहरण भी कवितावली में कई हैं । विस्तारभय से उन्हें उद्धृत करना अनावश्यक है । जिन्हें सभी रसों के उदाहरणों का विशेष आग्रह हो वे करुण के लिए अयोध्याकांड का तीसरा छंद, रौद्र के लिए बालकांड का उन्नीसवाँ छंद और अद्भुत के लिए उसी कांड का दसवाँ छंद देख लें ।

रसों के विवेचन के पश्चात् भावों का भी कुछ निदर्शन करा देना आवश्यक जान पड़ता है । अनुभावों और संचारी भावोंका भी विधान तुलसी ने बहुत ही उत्तम किया है । दो एक उदाहरण देखिए—

अनुभाव

पुर तें निकसीं रघुबीर-बधू, धरि धीर दए मग में डग द्वै ।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै ।

फिरि बूझति है 'चलनो अब केतिक पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै' ।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै ॥*

काव्याभ्यासी इसमें केवल 'श्रम' देखेंगे, पर भावुक तो सीता के भावप्रदर्शन के ढंग को देखकर तुलसीदास के चित्रण पर लोट-पोट हो जायँगे । एक ही छंद में कई अनुभाव देखिए—

'जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ पिय, छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े ।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाँव पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े' ।
'तुलसी' रघुबीर प्रिया श्रम जानि कै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े ।
जानकी नाह को नेह लख्यो, पुलक्यो तनु, बारि बिलोचन बाढ़े ॥

इस छंद में क्या नहीं है ! रसवादी श्रम, रोमांच, अश्रु आदि अनुभावों की बहार देख लें; अलंकारवादी 'पिहित' अलंकार का बाँका उदाहरण ले ले, कलावादी तुलसीदास की अंतःप्रकृति-पर्यवेक्षिणी शक्ति का नमूना पा ले । सीता अपनी ओर से राम को बाध्य करके ठहराना नहीं चाहतीं । थकावट के कारण उनसे चला भी नहीं जाता । उन्होंने लक्ष्मण की प्रतीक्षा करने का बहाना ढूँढ़ निकाला । राम ने भी थकावट की बात समझ ली, पर जब सीता ने उसका नाम नहीं लिया तो वे स्वयम् अपनी ओर से ऐसा क्यों करें ! लक्ष्मण की प्रतीक्षा व्यर्थ थी, क्योंकि वे तो आगे निकल जाने पर भी तेजी से आकर पहुँच जाते । इससे राम बैठकर पैर से काँटे निकालने लगे । सीता उनका भाव समझ गईं । भावों के विनिमय का यह सांकेतिक ढंग कितना सुन्दर है ! तुलसीदास कितनी दूर की कौड़ियाँ लाए हैं ?

राम के वन-गमन-प्रसंग में कवि ने अपने सभी ग्रंथों में ऐसी ही भावुकता भरी है । उस प्रसंग को पढ़कर कोई भी हृदयवाला भावोन्मेष में अपनत्व को भूले बिना न रहेगा । खूबी यह कि सभी ग्रंथों में भाव-

अस्थायी भाव

गुंफन के ढंग भिन्न-भिन्न और नवीन हैं । इस प्रसंग मे तुलसीदास की मनोवृत्ति खूब रमी है, और यह इतना मनोहर बन पड़ा है कि इसके कुछ उदाहरण उद्धृत किए बिना नहीं रहा जाता—

---

*संस्कृत के निम्नलिखित छंद के आधार पर इसकी रचना हुई है—
सद्यः पुरीपरिसरेऽपि शिरीष मृद्वी, सीता जवात्त्रिचतुराणि पदानि गत्वा ।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद्‌ब्रुवाणा रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम् ॥

रानी मैं जानी अजानी महा, पबि-पाहनहू तें कठोर हियो है।
राजहु काज-अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो है।
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है।
आँखिन में सखि! राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनबास दियो है।। २

राजा के कुमार सस्त्रीक बन जा रहे हैं, पैदल यात्रा करते है, तपस्वियों का वेश बनाए हुए हैं। ग्राम के बसनेवाले उनके उस सौंदर्य और स्वभाव पर मुग्ध हैं, राजा और रानी के कठोर हृदयों की निन्दा करते हैं। सहानुभूति, अनुकंपा और करुणा की क्षीण रेखा को, जो उन सहृदय ग्रामवासियों के हृदय को व्यथित कर रही है, सच्चा कवि-हृदय रखनेवाला ही लख सकता है। उसका चित्रण कर लेना भी सिद्धहस्तता का ही द्योतक माना जायगा। जिस समय सीता से ग्रामवधूटियों ने पूछा कि गोरे वर्णवाले तुम्हारे कौन है, साँवले शरीरवाले से तुम्हारा क्या नाता है, उस समय सीता बड़े असमंजस में पड़ गई, पर उन्होंने इस प्रश्न का उत्तर बड़े चातुर्य से दिया। इस कौशल का उल्लेख तुलसीदास ने रामचरितमानस में भी किया है। बन-प्रसंग का सब से उत्तम और भावपूर्ण वर्णन गीतावली में है। कवितावली में भी यह प्रसंग अच्छा वर्णित है—

सुनि सुन्दर बैन सुधा-रस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हैं, समझाइ कछू मुसुकाइ चली।
'तुलसी' तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन-लाहु अली।
अनुराग-तड़ाग में भानु-उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली।।

राम के अलौकिक रूप पर केवल मनुष्य ही नहीं, पशु भी मुग्ध है। कोई दूसरा पशु नहीं, वही पशु जिसका शिकार करने राम धनुष-बाण लेकर गए हैं। कवि के शब्दों में सुनिए—

सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि, पानि सरासन-सायक लै।
बन खेलत राम फिरैं मृगया, 'तुलसी' छबि सो बरनै किमि कै।
अवलोकि अलौकिक रूप मृगी-मृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै।
न डगैं न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक है।।

सीता और हनूमान का कथोपकथन इसमें थोड़ा ही है, पर सीता की यह उक्ति कितनी मार्मिक है—

कहा कहौं, तात देखे जात ज्यों बिहात दिन,
बड़ी अवलंब ही सों चले तुम तोरिकैं।

तुलसीदास अपनी कविता में रखते तो हैं सीधी-सादी रात-दिन व्यवहार में बरती जानेवाली बातें पर उनका संयोग ऐसे प्रसंग से करते हैं कि वे साधारण बातें महत्त्वशालिनी हो जाती हैं। करुण प्रसंगों में भावों का निरूपण करने में कवि को विशेष सिद्धहस्तता प्राप्त है। लंकादहन के बाद मंदोदरी की दीनता भरी उक्ति में कवि ने भावुकता की हद कर दी है। पहले तो भय के साथ-साथ उसे अपने कुटुम्बियों के कुत्सित कर्मों पर खीझ होती है, फिर एक बार उसका ध्यान रावण के लोकोत्तर ऐश्वर्य की ओर जाता है। वह रोकर दीनता के साथ कहती है—

> कंत बीसलोचन बिलोकिए कुमंत-फल,
> ख्याल लंका लाई कपि राँड़ की सी झोंपरी।

इस अंश के प्रत्येक शब्द से अद्भुत ध्वनि निकलती है। एक बंदर खेल में सोने की लंका राँड़ की झोपड़ी के समान जला डाले, इससे बढ़कर रावण के पराक्रम को ललकारने की और दूसरी बात क्या हो सकती है। दशानन अथवा बीसलोचन के लिए इससे बड़ी चुनौती और क्या होगी। बात सामान्य है, पर कलेजे को भी चीरकर पार हो जाती है।

रस के पोषक पुराने संचारियों के उदाहरणों की आवश्यकता नहीं। यहाँ तुलसीदास के दो एक नए संचारियों की बानगी दिखाना चाहते हैं। ऊपर

नए संचारी

भय के प्रसंग में हम 'खीझ' का नाम ले आए हैं। इसे रोष अथवा अमर्ष के अंतर्गत नहीं रख सकते। यह स्वतंत्र भाव है, जो ऐसे अवसरों पर रस की सहायता बराबर करता देखा जाता है। एक दूसरे भाव को लीजिए। जिस प्रकार करुणा पर लोग द्रवीभूत होकर विपन्न से समानुभूति करने लगते हैं, समर्थ व्यक्ति उसकी सहायता भी करते हैं, उसी प्रकार की प्रसन्नता भी होती है। कुछ लोग डाह भी करते हैं, पर जिनकी चित्तवृत्ति स्वच्छ होती है उनके हृदय में प्रसन्नता ही होती है। इस भाव को मनोविज्ञानवेत्ता अपने पारिभाषिक कोश में 'प्रसाद' कहते हैं। रसवादियों के हर्ष से यह भिन्न है। यह 'प्रसाद' स्वतंत्र भाव है। यदि 'रति' के स्थान में 'प्रेम' को स्थायी भाव मानें और शृंगार के क्षेत्र को बढ़ाकर उसे 'प्रेम-रस' के अंतर्गत लाएँ, तो 'प्रसाद' संचारी के रूप में आएगा। जिससे हमारा कोई भी संबंध नहीं है उसके उत्थान, उसके

सौन्दर्य अथवा [illegible] अनायास चित्त [illegible] पूर्णरूप [illegible] हुआ [illegible] उसी को 'प्रसाद' कहते हैं। इस भाव के लिए कोई भूत या भावी संबंध सदा अपेक्षित नहीं होता और यह पुरुष-स्त्री के बीच तक ही घिरा नहीं है, इसी से इसे शृंगार के संचारी के रूप में मानने को जी नहीं करता। देखिए—

लोचनाभिराम घनस्याम राम-रूप-सिसु,
सखी कहै सखी सों तू प्रेम-पय पालि री।
बालक नृपालजू के ख्याल ही पिनाक तोर्‌यो,
मंडलीक-मंडली प्रताप-दाप दालि री।
जनक को सिया को हमारो तेरो 'तुलसी' को,
सबको भावतो ह्वैहै मैं जो कह्यो कालि री।
कौसिला की कोखि पर तोषि तन वारिए री,
राय दसरत्थ की बलैया लीजै आलि री॥

राम, लक्ष्मण और सीता जिस समय वन-वन मारे-मारे फिरते थे उस समय ग्रामवासियों के हृदय में जो सहानुभूति उत्पन्न हुई थी उसमें यद्यपि करुणा का भी रंग चढ़ा था, पर उसकी तह में 'प्रसाद' भी था। उसे इन दोनों के मेल से बना हुआ एक नया ही मिश्रण समझना चाहिए।

बनिता बनी स्यामल गौर के बीच, बिलोकहु री सखि मोहिं सी ह्वै।
मग जोग न, कोमल क्यों चलिहैं सकुचाति मही पद-पंकज छ्वै।
'तुलसी' सुनि ग्रामबधू बिथकीं पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै।
सब भाँति मनोहर-मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै॥

यहाँ तो स्त्रियों के हृदय में ही 'प्रसाद' के चिह्न दिखलाए गए हैं, क्योंकि स्त्रियों का हृदय पुरुषों की अपेक्षा विशेष भावुक होता है; किन्तु पुरुषों में भी 'प्रसाद' का भाव देखा जाता है। 'कवितावली' में तो नहीं, पर 'रामचरितमानस' में कवि ने पुरुषाश्रय में पाए जानेवाले 'प्रसाद' की झलक दिखाई है। राम-लक्ष्मण जिस समय जनक-नगर में घूम रहे थे उस समय नगर के बालक नगर-शोभा दिखाने के बहाने उनके शरीर को छूकर प्रसन्न होते थे—

पुर-बालक कहि-कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहिं देखावहिं रचना॥
सब सिसु एहि मिस प्रेम-बस, परसि मनोहर गात।
तन पुलकहिं अति हरष हिय, देखि देखि दोउ भ्रात॥

यदि तुलसीदास के ग्रंथों का गंभीर अध्ययन किया जाय तो कितने ही नए संचारी मिल सकते हैं। जो लोग संचारियों की सीमा के अंतर्गत गिने-गिनाए केवल तैंतीस भाव ही मानते हैं वे भ्रम में हैं। इनकी संख्या अनेक है और मनोवृत्तियों का जितना ही सूक्ष्म मनन किया जायगा उतनी ही इनकी संख्या बढ़ती जायगी।

ध्वनिवादी काव्य में व्यंग को ही प्रधान मानते हैं और उनका कहना है कि ध्वनिप्रधान काव्य ही उत्तम कहा जा सकता है। इसमें संदेह नहीं कि काव्य की विशेषता बात के अनूठेपन में है। सीधी सादी बात तो बोलचाल मे भी सूनी जान पड़ती है। फिर काव्य मे यदि कोई भाव अपने नंगे रूप में ही रख दिया गया तो कविता करने की आवश्यकता ही क्या। तुलसीदास के काव्यों मे जहाँ कठिन प्रसंग आए हैं अथवा जहाँ दो या कई व्यक्तियों के अंतर्द्वन्द्वों का निरूपण करने का अवसर आया है वहाँ व्यंग्य से ही काम लिया गया है। 'रामचरित-मानस' के अयोध्याकांड में भरत-सभा एवम् जनक-सभा में व्यंग्य की विचित्र बहार देखी जाती है, जो अन्य प्रबंध-काव्यों में ऐसे कौशल के साथ कहीं भी नहीं पाई जाती। कवितावली में इस प्रकार के प्रसंग नहीं के बराबर हैं, केवल केवट का ही एक ऐसा प्रसंग है जहाँ उसके हृदय का भाव बड़े अनूठे ढंग से निरूपित किया गया है। यों तो सामान्य ध्वनि प्रायः सभी पद्यों में है, पर प्रबंध-काव्य की सी धारा मुक्तक पद्यों में नहीं हो सकती॥

व्यंग्य

पात-भरी सहरी सकल सुत बारे बारे,
केवट की जाति कछू बेद न पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याही लागि, राजाजू,
हौं दीन बित्त-हीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वै कै बात न बढ़ाइहौं।
'तुलसी' के ईस राम रावरो सों साँची कहौं,
बिना पग धोए नाथ, नाव न चढ़ाइहौं॥

कवि ने इसमें मर्यादा का व्यंग्य के द्वारा कैसा अच्छा निर्वाह किया है। भगवान् के चरणों को धोकर उनका चरणामृत लेने के लिए कैसा भोला-भाला और चातुर्यपूर्ण बहाना ढूंढ़ निकाला गया है। इसके आगे केवट स्पष्ट ही कह देता है—

जिनको पुनीत बारि, धारे सिर पै पुरारि,
त्रिपथगामिनि जसु बेद कहै गाइ कै।
जिनको जोगीन्द्र मुनिवृन्द देव देह धरि,
करत बिराग जप जोग मन लाइ कै।
'तुलसी' जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो-सो लेवाइ कै।
तेई पायँ कै चढ़ाइ नाव धोए बिनु,
ख्वैहौं न पठावनी कै ह्वैहौं न हँसाइ कै ।।

अंतिम चरणार्ध में कितना सुंदर व्यंग्य है ! राम का चरणोदक ही केवट की पठावनी है। यदि लोग सुनेंगे कि इसने राम को जानकर भी यों ही चला जाने दिया तो वे इस मूर्खता पर हँसेंगे। केवट की इस बात में कितनी भावुकता है। भगवान् को विवश करने की कैसी अच्छी दलील है ! अपने सौभाग्य और जानकारी का कैसा सुंदर व्यंग्य है !

इसी सिलसिले में दो-एक फुटकल स्थानों से भी व्यंग्य के उदाहरण उद्‌धृत कर दिए जाते हैं। रीति-शास्त्र के अभ्यासी रस-भाव को भी ध्वनि के ही अंतर्गत मानते हैं, रस के न रहने पर भी फुटकल वस्तु-रूप में भी थोड़ा बहुत व्यंग्य हुआ ही करता है, जिसे वे लोग 'संलक्ष्यक्रम वाच्य-ध्वनि' के पेटे में रखते हैं। उदाहरण लीजिए—

आगे परे पाहन कृपा, किरात, कोलनी,
कपीस निसिचर अपनाए नाए माथ जू।
साँची सेवकाई हनुमान की सुजानराय,
ऋनियाँ कहाए हौ बिकाने ताके हाथ जू।
'तुलसी' से खोटे खरे होत ओट नाम ही की,
तेजी माटी मग हू की मृगमद-साथ जू।
बात चले बात को न मानिबो बिलग, बलि,
काकी सेवा रीझिकै नेवाजो रघुनाथ जू।

इस पद्य में काक्वाक्षिप्त व्यंग्य है। राम अपने सहज स्वभाव से ही सब पर कृपा करते हैं। किसी की सेवा से प्रसन्न होने की बात कहना झूठ है। पद्य में मुहावरे की बंदिश कितनी जोरदार है ! कैसा मुंहजोर सेवक है ! और लीजिए—

लोग कहैं अरु हौं हूँ कहौं 'जन खोटो खरो रघुनायक ही को'।
रावरी राम, बड़ी लघुता, जस मेरो भयो सुखदायक ही को।
कै यह हानि सहौ बलि जाउँ कि मोहूँ करौ निज लायक ही को।
आनि हिये हित जानि करौं ज्यों हौं ध्यान धरौं धनु-सायक ही को।।

इस सवैया में 'रावरी राम, 'बड़ी लघुता' में कैसा सुंदर व्यंग्य है ! बड़े लोग किसी खोटे आदमी का नाम भी अपने प्रसंग में सुनना अपनी हेठी समझते हैं। पर 'तुलसीदास' तो इस प्रकार के बड़े बाबुओं की हेठी करने में ही अपना हित और उनकी भलाई मानते हैं। यदि कोई नाम का 'बड़ा बाबू' है तो उसे बदनामी चुपचाप सह लेनी चाहिए और यदि वह वस्तुतः 'बड़ा बाबू' है तो उस बुरे को भी भला बनाए।

लक्ष्मण और परशुराम-संवाद भी व्यंग्य की अवस्थिति के लिए बढ़िया प्रसंग है। परशुराम के बक लेने पर लक्ष्मण ने उन्हें मुंहतोड़ उत्तर दिया। कहते हैं—

'सुजस तिहारो भरो भुवननि भृगुनाथ,
प्रगट प्रताप, आपु कह्यो सो सबै सही।
टूट्यो सो न जुरैगो सरासन महेसजू को,
रावरी पिनाक में सरीकता कहाँ रही ?'

'यदि इस धनुष में शिव के साथ आप का साझा था तो अब तो टूटा हुआ धनुष जुड़ नहीं सकता, आप का साझा रहकर भी कुछ न कर सका।' इस व्यंग्यपूर्ण उत्तर में परशराम के प्रताप को भी धक्का लगने की जो बात छिपी है उससे वे व्यथित हो उठे। इन्हीं कतिपय उदाहरणों से तुलसीदास के व्यंग्यका कुछ नमूना मिल गया होगा।

अब वस्तु-वर्णन और वर्णन-शैली के संबंध में कुछ मीमांसा अपेक्षित है। ध्वनि, अलंकार आदि भी वर्णन की शैलियाँ हैं। यहाँ पहले इन

वर्णन शैली

शैलियों के मूल में छिपी हुई कुछ सिद्धांत की बातें कहकर तब तुलसीदास के वस्तु-वर्णन की आलोचना की जायगी।

व्यंजना और अलंकार दोनों ही भावाभिव्यंजना की विभिन्न शैलियाँ हैं। भावनिरूपण में व्यंजना से विशेष सहायता मिलती है और वस्तु-वर्णन में मुख्यतः अलंकार सहायक होता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि भावनिरूपण में अलंकार होता ही नहीं और वस्तु-वर्णन व्यंग्य-विहीन ही हो सकता है। मोटे हिसाब से व्यंग्य का संबंध भावों से है और अलंकार का संबंध वर्णन से। व्यंग्य काव्य की अंतरंग रमणीयता का स्वरूप खड़ा करता है और अलंकार उसकी बहिरंग रमणीयता चमकाता है। अलंकार भावों की व्यंजना

से सहायक अवश्य होता है, पर वह स्वयं भाव नहीं है। भावों का प्रकाश व्यंजना का काम है और अलंकार अव्यंग्य होना चाहिए। अलंकार में चमत्कार भरा रहता है। सीधी बात जो ऐसे ढंग से कही जाती है जो हृदय में गड़ सके, कानों को भली लगा सके। व्यंग्य में सब से बड़ी बात यह होनी चाहिए कि स्पष्टता न आने पाए। यदि व्यंग्य की लपेट में कोई भाव ऐसा छिपा है कि वह चोटी माथा मारने पर निकलता है तो ऐसा व्यंग्य अच्छा न होगा। व्यंग्य के दो प्रकार बताए जाते हैं। एक तो जहाँ शब्दावली से जो कुछ कहा जा रहा है व्यंग्य उससे बढ़कर हो, इसे 'ध्वनि' कहते हैं और जहाँ वाच्यार्थ के समान या उससे घटकर व्यंग्य हो उसे 'गुणीभूत व्यंग्य' कहते हैं। व्यंग्य से भाव, भावोदय, भाव-संधि, भाव-सबलता, भावाभास आदि का निरूपण किया जाता है। ऊपर भाव-निरूपण के कई उदाहरण दिए जा चुके हैं। यहाँ पर अलंकार द्वारा भावों की तीव्रता में जो सहायता मिलती है उसके कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

बूबरे को दूसरो न द्वार, राम दयाधाम,
रावरी ही गति बल-बिभव-बिहीन की।
लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहिं,
महाराज आजु जौं न देत दादि दीन की॥

समुच्चय और पर्यायोक्ति के मेल से राम के हृदय में करुणा उत्पन्न करने के लिए कितना सुन्दर व्यंग्य है!

बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी,
बूझिए न ऐसी गति संकर-सहर की।
कैसे कहै 'तुलसी' बृषासुर के बरदानि!
आनि जानि सुधा तजि पियनि जहर की॥

'शंकर' और 'वृषासुर के बरदानि' में परिकरांकुर और परिकर तथ विशेषोक्ति अलंकारों द्वारा भोलानाथ पर कैसी सुन्दर फबती कसी गई है!

लहाकौं कुचालि कलिकाल की कुरीति, कैधौं,
जानत न मूढ़ इहाँ भूतनाथ भूप है।
फूलै फलै फैलै खल सीदैं साधु पल-पल,
खाती दीपमालिका ठठाइत सूप है॥

छेकोक्ति और विषम की लपट में काशी की दशा का कैसा सुन्दर भावपूर्ण चित्रण है! करुणा की हद हो गई!

मंदोदरी की निम्नलिखित उक्ति में कवि ने अप्रस्तुत की कैसी सुन्दर योजना

की है ! भावाभिव्यंजना में और भाव की तीव्रता में नए-नए उपमानों के संयोग से कैसा रंग आ गया है !

> उदधि अपार उतरत नहिं लागी बार,
> केसरीकुमार सो अदंड कैसो डाँड़ि गो।
> बाटिका उजारि अच्छ रच्छकनि मारि, भट
> भारी भारी रावरे के चाउर-से काँड़ि गो।
> 'तुलसी' तिहारे बिद्यमान जुबराज आजु,
> कोपि पाँव रोपि, बस कै, छोहाइ छाँड़ि गो।
> कहे को न लाज, पिय, अजहूँ न आए बाज,
> सहित समाज गढ़ राँड़ कैसो भाँड़ि गो ॥

उपमा, विभावना और छेकोक्ति सभी अलंकार लक्षणा और व्यंजना में चिपककर करुणा की कैसी सुन्दर उत्कर्ष-व्यंजना कर रहे हैं।

भाव की सहायता के इतने ही उदाहरण पर्याप्त हैं। अब स्वरूप-निरूपण पर भी विचार करना चाहिये। स्वरूप-चित्रण करने में सब से मुख्य सहायता अप्रस्तुत अथवा उपमान की ली जाती है। केवल समतासूचक शब्दों के प्रयोग से ही कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तु के लिए उपमान नहीं हो जाती।

अप्रस्तुत-विधान

प्रस्तुत और अप्रस्तुत में सारूप्य और साधर्म्य दोनों होने चाहिये। कहीं-कहीं केवल एक के होने से भी काम चल जाता है, पर आर्यों के मत से वही अप्रस्तुत-विधान उत्तम समझा जायगा जहाँ उक्त दोनों बातों का संयोग हो। सारूप्य से वस्तु के बाह्य रूप का अनुभव होता है और साधर्म्य से गुण, क्रिया अथवा स्वभाव की अनुभूति होती है, जो वस्तु का आभ्यंतर रूप है। केवल 'वस्तुत्व' और 'प्रमेयत्व' से उपमा नहीं बनती, उसमें साधर्म्य भी होना चाहिये। 'बान बलवान जातुधानप सरीखे सूर' में उपमा नहीं है; क्योंकि यहाँ प्रमेयत्व भर है, साधर्म्य नहीं। साधर्म्य का तात्पर्य वस्तु-प्रतिवस्तु-धर्म से है। 'सूर' को उपमेय और 'जातुधानप' को उपमान मानने में 'कवि-प्रौढ़ोक्ति' नहीं है। जिस अप्रस्तुत से प्रस्तुत का साधर्म्य दिखाया जाता है उसमें 'कविसमय-सिद्ध' अप्रस्तुत की ही गणना होती है, सब की नहीं। इसी प्रकार अप्रस्तुत की योजना न होने से केवल संदेहवाचक शब्दों के कारण निम्नलिखित अवतरण में 'संदेह' अलंकार नहीं हो सकता।

लोगन के पाप, कैधौं सिद्ध-सुर-साप, कैधौं
काल के प्रताप कासी तिहूँ ताप तई है ।

इसी प्रकार सभी उपमामूलक अलंकारों में अप्रस्तुत-विधान की आवश्यकता हुआ करती है। विना उस रमणीयता के अलकारता नहीं आ सकती। उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, भ्रांतिमान् आदि प्रधान उपमामूलक अलंकारों में तो इनके बिना काम ही नहीं चल सकता। उत्प्रेक्षा में किसी प्रस्तुत वस्तु का यथोचित उपमान न मिल सकने के कारण अभूतपूर्व संभावना की जाती है। संभावना मात्र से उत्प्रेक्षा अलंकार की सिद्धि नहीं हो सकती। नीचे लिखे अवतरण में उत्प्रेक्षा नहीं होगी—

'तुलसी' सो राम के सरोज-पानि परसत ही,
टूट्यो मानो बारे तें पुरारि ही पढ़ायो है ।

सभी अलंकारों में अर्थालंकार ही मुख्य हैं। शब्दालंकार तो केवल शब्दों की बनावट से संबंध रखते हैं। वे बाहरी तड़क-भड़क के सूचक हैं। भाषा और भाषण की शैली के मूल रूप से उनकी घनिष्ठता नहीं है। भगवान् वेदव्यास ने इसीलिए लिखा था—'अर्थालंकाररहिता विधवेव सरस्वती'। इन अर्थालंकारों का मूल उपमा में है और उपमा में प्रस्तुत एवम् अप्रस्तुत की सम्यक् योजना ही प्रधान है। अप्रस्तुत की योजना कई बातों के लिए की जाती है, जिनमें रूप (आकार), रंग और गुण मुख्य हैं। गुण के अंतर्गत स्वभावसंबंधी विशेषताओं और क्रियाओं का भाव आ जाता है। अलंकार-शास्त्र मे इसे 'धर्म' कहते हैं। सारूप्य और साधर्म्य के लिए केवल 'धर्म' शब्द का प्रयोग करने से भी काम चल जाता है, क्योंकि वस्तु का रूप रंग भी 'धर्म' के अर्थ के भीतर ही है।

तुलसीदास का अप्रस्तुत-रूप-विधान बहुत ही बाँका है। उसमें केवल सारूप्य और साधर्म्य ही नहीं होता, अपितु भावोत्कर्ष की व्यंजना में सहायता भी मिलती है। जिन अलंकारों में अप्रस्तुत का विधान बहुत आवश्यक है, उनमें से मुख्य ये हैं—उपमा, प्रतीक, रूपक, भ्रांतिमान, संदेह, उत्प्रेक्षा और अपह्नुति। यहाँ पर कवितावली से कुछ उदाहरण उद्धृत करके तुलसीदास की अप्रस्तुत योजना की मीमांसा की जाती है। राम के बालरूप का वर्णन देखिए—

'तुलसी' मनरंजन रंजित-अंजन-नैन सुखंजन-जातक से
सजनी ससि में सम सील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे ।

राम के मुख एवम् चंद्रमा और अरुण-रंजित नेत्रों, भ्रमर नील-मणि [illegible] बालों में कुछ सादृश्य भी है और बिम्ब-प्रतिबिम्ब-धर्म भी। चंद्रमा में दो कमल के खिलने की कल्पना द्वारा 'वात्सल्य-भाव' की पुष्टि होती है। साहित्यशास्त्र ने अलंकार, गुण आदि को रसपोषक धर्म माना है। रस की पुष्टि के लिए आवश्यक है कि जिस रस का प्रसंग हो उसी के अनुकूल अप्रस्तुतों की भी योजना की जाय, जिससे उसमें वृत्ति रमे, भाव को उत्तेजना मिले। यदि उक्त संभावना वीररस के प्रसंग में हो तो रस-विरोधी होने से अलंकार का उचित उपयोग नहीं माना जायगा। इस प्रसंग में चंद्रमा में कमल खिलने की कल्पना से कदाचित् कुछ लोग शास्त्र-विरोधी दूषण समझ बैठें, पर उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि उत्प्रेक्षा में जो संभावना की जाती है उसके लिए केवल संभाव्य का ही कथन नहीं है, अपितु असंभाव्य अप्रस्तुतों की रमणीय योजना से ही उत्प्रेक्षा में अलंकारता अधिक आती है। यदि केवल वाचकों के बल पर अलंकार बनने लगेंगे तो उत्प्रेक्षा और उपमा में कोई भेद ही न रह जायगा। संभाव्य उत्प्रेक्षा का उदाहरण भी लीजिए—

'तुलसी मुदित-मन जनक-नगर-जन
झाँकतीं झरोखे लागीं सोभा रानी पावतीं ;
मनहुँ चकोरी चारु बैठी निज निज नीड़,
चंद की किरन पीवैं पलकैं न लावतीं ॥

यहाँ भी अप्रस्तुत के उपर्युक्त सभी गुण वर्तमान हैं। उत्प्रेक्षा का एक उदाहरण और लीजिए। राम के शरीर पर पसीने की बूँदें कैसी लगती हैं।

अंधकार की अपार राशि में टिमटिमाते हुए तारों और राम के साँवले शरीर पर प्रकाश से झिलमिलाते हुए श्रमकणों—दोनों को ध्यान में ले आइए। अप्रस्तुत की योजना से संभवतः राम के उक्त रूप का सौंदर्य कई गुना अधिक हो गया है।

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाला-जाल मानों,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधों ब्योम-बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि-सी उघारी है।
'तुलसी' सुरेस-चाप कैधों दामिनी-कलाप,
कैधों चली मेरु ते कृसानु-सरि भारी है।

यहाँ पर हनुमान की जलती हुई विशालकाय पूँछ प्रस्तुत है उसके लिए

चमत्कार के जंगल में फँस जाने के कारण यद्यपि रूपक दूषित भी हो गए हैं, पर अधिकांश स्थानों पर उनकी सुचारुता श्लाघ्य है। एक रूपक देखिए—

> रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट-उर,
> दिन-दिन बिकल सकल सुख-राँक सो।
> नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,
> होत न बिसोक, ओत पावै न मनाक सो।
> राम की रजाय तें रसायनी समीर-सुनु,
> उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो।
> जातुधान-बुट, पुटपाक-लंक-जातरूप,
> रतन-जतन जारि कियो है मृगांक सो॥

इस रूपक में अप्रस्तुत योजना-संबंधी सभी गुण वर्तमान हैं। रूप-सादृश्य, साधर्म्य और भाव की उत्कर्ष-व्यंजना तीनो बातों का सुंदर मेल मिलाया गया है। पर कहीं-कहीं रूपकों का ढाँचा खड़ा करने में केवल परंपरा की लीक भर पीटी गई है—

> हाट-बाट हाटक पिघिलि चलो घी सो घनो,
> कनक-कराही लंक तलफति ताय सों।
> नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
> पागि पागि ढेरि कीन्हीं भली भाँति भाय सों।
> पाहुने कृसानु पवमान सो परोसो,
> हनुमान सनमानि कै जेंवाए चित चाय सों।
> 'तुलसी' निहारि अरि-नारि दै दै गारि कहैं,
> बावरे सुरारि बैर कीन्हों रामराय सों॥

कुछ साहित्यिक 'अरि-नारि दै दै गारि कहैं' की श्लिष्ट योजना पर लोट-पोट हो जायंगे, पर जिस भोजन का इस कवित्त में अप्रस्तुत रूप से वर्णन है उसमें प्रेम अथवा श्रद्धा का भाव होता है, संहार के भाव का वहाँ नाम भी नहीं होता। किंतु यहाँ प्रस्तुत में संहार करना एक ऐसा धर्म वर्तमान है जिसके मेल में भोजन का उक्त प्रसंग बेमेल है। इसी प्रकार का निम्नलिखित रूपक भी है—

> 'तुलसी' समिध सौंज, लंक-जज्ञकुंड लखि,
> जातुधान पूंगीफल जव तिल धान हैं।
> स्रुवा सो लँगूल, बलमूल प्रतिकूल हवि,
> स्वाहा महा हाँकि-हाँकि हुनै हनुमान हैं॥

यज्ञ-कार्य मे भक्ति अथवा श्रद्धा का भाव रहता है। सावर्ण्य की आवश्यकता न मिलने से यह रूपक भी समीचीन नहीं जान पड़ता। एक रूपक और देखिए——

बालधी फिराय बार-बार झहरावै, झरैं
बूँदिया-सी लंक पिघलाइ पाग पागिहै।

पूँछ झटकारने से स्वर्णद्रव अग्निकणों के रूप में बूँदिया के समान अवश्य झरते हैं, पर वीर-रस के संयोग में इसका माधुर्य फीका है। केवल सारूप्य से अप्रस्तुत की योजना सभी जगह सोलहो आने ठीक नहीं उतर सकती। किसी विनाशकारी उपमान का विधान ही यहाँ पर समीचीन होता।

इसी लपेट में तुलसीदास के अन्य अलंकारों पर भी विचार कर लेना चाहिए। भाषा पर विचार करते हुए महावरेबंदिश और लोकोक्ति के प्रयोग की उत्तमता की बात कही गई है। यहाँ पर इनके आलंकारिक प्रयोगों की मीमांसा की जाती है।

अन्य अलंकार

नाम जाको कामतरु देत फल चारि ताहि,
'तुलसी' बिहाइ कै बबूर रेंड़ गोड़िए।

इस अवतरण में लक्षणा के संयोग से जो अर्थान्तर संक्रमित हो रहा है वह कितना सुन्दर है! शब्दों का चुनाव इतना बढ़िया है कि पढ़ते ही कवि के हृदय की खीझ स्पष्ट हो जाती है।

'तुलसी' अब राम को दास कहाइ हिये धरु चातक की धरनी।
करि हंस को बेष बड़ो सब सों, तजि दे बक-बायस की करनी॥

इसमें अर्थांतर-संक्रमति ध्वनि तो है ही, पर तीनों उपमानों के पक्षी होने में जो साहित्यिकता है उसका कहना ही क्या!

मति रामहिं सों, गति रामहिं सों, रति राम सों, रामहि को बलु है।
सबकी न कहै 'तुलसी' के मते इतनो जग-जीवन को फलु है॥

यहाँ 'सबकी न कहै' मुहावरे की लपेट में आत्मतुष्टि-प्रमाण कैसा फबता है!

कवि या लेखक के शब्दों अथवा मुहावरों आदि के प्रयोग में सबसे बड़ी विशेषता यह होनी चाहिए कि उन शब्दों से ही भाव छलक पड़े। अर्थ के भीतर घुसने पर उसका जो विशेष चमत्कार दिखाया जाता है वह पीछे की बात होती है, देर में समझी जाती है। देखिए——

सुन्दर गढ़े हुए हैं। कहीं से भी पद्य टूटा या उखड़ा हुआ नहीं है। केवल एक उदाहरण और दिया जाता है—

जोग-कथा पठई ब्रज को सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी।
ऊधोजू, क्यों न कहै कुबरी जो बरी नट-नागर हेरि हलाकी॥
जाहि लगै पर जानै सोई 'तुलसी' सो सुहागिनि नंदलला की।
जानी है जानपनी हरि की अब बाँधियैगी कछु मोटि कला की॥

लोकोक्ति और मुहावरों के सहारे श्रीकृष्ण की कैसे खिल्ली उड़ाई गई है। मुहावरों और लोकोक्तियों का ऐसा उत्तम प्रयोग हिंदी में केवल ठाकुर कवि ने किया है।

कवितावली में यों तो कुछ सामान्य अलंकारों को छोड़कर प्रायः सभी अलंकारों का प्रयोग हुआ है; पर शब्दालंकारों में अनुप्रास और यमक एवम् अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, पिहित, छेकोक्ति, परिवृत्ति आदि प्रमुख अलंकारों का बाहुल्य है। अन्य अलंकार भी हैं, पर या तो वे एकाध स्थान पर ही आए हैं अथवा उनका प्रयोग उतना उत्तम नहीं है, जैसा औरों का। सामान्यतया एक स्थान पर भी यदि कोई छोटा-मोटा अलंकार प्रयुक्त हुआ है तो विशेष खूबी के साथ। दो-एक उदाहरण लीजिए—

बेग बल साहस सराहत कृपानिधान,
भरत की कुसल अचल ल्यायो चलि कै।

यहाँ अचल 'ल्यायो चलि कै' में जो विरोध है वह कितना सुन्दर है। साथ ही एक क्रिया का अन्वय 'भरत की कुसल' और 'अचल' दो-दो पदार्थों के साथ होने से क्रिया की तीव्रता का विस्तार भी हो रहा है। और देखिए—

रावन की रानी जातुधानी बिलखानी कहै,
'हा हा! कोऊ कहै बीसबाहु दसमाथ सों'।

यहाँ 'बीसबाहु' और 'दसमाथ' दोनों शब्द साभिप्राय हैं, इनमें परिकर अलंकार है। 'बीसबाहु' से रावण के पराक्रम और 'दसमाथ' से उसकी विशाल बुद्धि की ओर संकेत किया गया है। परिकर और परिकरांकुर का प्रयोग तुलसीदास की कविता में बहुत अधिक है। विशेषण और विशेष्य का साभिप्राय प्रयोग कवि की बड़ी भारी विशेषता है। कहीं-कहीं तुलसीदास ने नए-नए प्रयोग भी किए हैं। विभावना (तीसरी) का एक उदाहरण लीजिए—

बसत गढ़ लंक लंकेस-नायक अछत,
लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो।

यहाँ भी 'लंक' और 'लंकेस' शब्दों में अभिप्रायांतर है। दोनों के वैभव-बल का व्यंग्य है। रावण के रहते राँधा हुआ भात न खाने में मुहावरा भी चुस्त है और विभावना अलंकार भी है। लक्षणा के बल पर जो ध्वनि निकल रही है उसकी बहार एक और ही खूबी लिए हुए है। अन्य उदाहरण लीजिए—

जाहिर जहान में जमानो एक भाँति भयो,
बेचिए बिबुध-धेनु रासभी बेसाहिए।
* * *
रंक के निवाज रघुराज राजा राजनि के,
उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए ॥

पहले चरण में ललित अलंकार है। इन थोड़े से शब्दों से ही जमाने की गति का कैसा खाका खींचा गया है! 'रंक के निवाज, राजा राजनि के' में एक प्रकार का विरोध कैसा मजा दे रहा है! साथ ही साथ भाटों की-सी उक्ति 'उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए' द्वारा कवि ने राम का राजापन तो 'बावन तोला पाव रत्ती' ठीक उतारा है।

तुलसीदास केशव की भाँति चमत्कारवादी नहीं थे। इसलिए वे चमत्कार विशिष्ट अलंकारों के मायाजाल में नहीं फँसे, पर चमत्कार या रमणीयता को कहीं भी हाथ से नहीं जाने दिया। अनुप्रास, यमक और श्लेष तीनों का यथा-स्थान समीचीन प्रयोग किया है। देखिए—

(१) भूतनाथ भय हरन, भीम भव-भदन भूमिधर।
भानुमंत भगवंत, भूति-भूषन भुजंग-बर।
भव्य, भाव-बल्लभ, भवेष भव-भार-बिभंजन।
भूरि-भोग, भैरव, कुजोग-गंजन, जन-रंजन।
भारती-बदन बिष-अदन सिव, ससि-पतंग-पावक-नयन।
कह 'तुलसिदास' किन भजसि मन, भद्र-सदन मर्दन-मयन ॥

(२) छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्हें छत्र-छाया,
छोनी छोनी छाए छिति आए निमिराज के ॥

अनुप्रास और यमक के इन उदाहरणों में वैसी अस्वाभाविकता नहीं है जैसी पद्माकर आदि की रचना में कहीं-कहीं पाई जाती है। इसके अतिरिक्त रमणीय और प्रवाह में लय उत्पन्न करनेवाले शब्दों की योजना यत्र-तत्र सभी स्थानों पर मिलेगी।

शैली का विवेचन यहीं पर छोड़कर अब दृश्य-चित्रण की ओर आइए। कवितावली में प्रकीर्ण होने के कारण बाह्य दृश्य-चित्रण के अवसर कम आए हैं। इस पुस्तक में भाव-निरूपण ही विशेष है। लगे

दृश्य-चित्रण

हाथों कहीं अवसर मिल जाने पर दृश्य-चित्रण भी कर डाला गया है। चित्रण में अश्लिष्ट योजना बहुत कम है। अधिकांश में संश्लिष्ट योजना का ही सहारा लिया गया है। कई चित्रणों के उदाहरण अप्रस्तुतविधान के विवेचन में ही आ चुके हैं। यहां पर केवल एक उदाहरण विषय को स्पष्ट करने के विचार से दिया जाता है—

देव कहैं अपनी-अपनी अवलोकन तीरथराज चलो रे।
देखि मिटैं अपराध अगाध, निमज्जत साधु-समाज भलो रे।
सोहै सितासित को मिलिबो, 'तुलसी' हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानों हरे तृन चारु चरैं, बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे॥

सफेद बछड़ों के फैलकर तृण चरने का गंगा-यमुना के संगम से एक प्रकार का अनोखा मेल मिलाया गया है। दूर से सफेद बछड़ों के चरने का दृश्य जैसा सुहावना होता है, संगम भी वैसा ही है। अर्थ के भीतर घुमिए तो बछड़े जैसे तृण चर जाते हैं वैसे ही यमुना भी गंगा में समा गई हैं।

वस्तु-वर्णन और प्रकृति-पर्यवेक्षण के भी कुछ नमूने लीजिए। रावण के उपवन का वर्णन देखिए—

बासव बरुन बिधि बन तें सोहावनो,
दसानन को कानन बसंत को सिंगारु सो।
समय पुराने पात परत, डरत बात,
पालत लालत रति मार को बिहारु सो।
देखे बर बापिका तड़ाग बाग को बनाव,
राग-बस भो बिरागी पवनकुमारु सो।
सीय की दसा बिलोकि बिटप-असोक-तर,
'तुलसी' बिलोक्यो सो तिलोक सोक-सारु सो॥

दो स्थानों पर विरोध की योजना कैसी सुन्दर है! इसके आगे रावण के वैभव और विक्रम का प्रमाण लीजिए—

माली मेघमाल, बनपाल बिकराल भट,
नीके सब काल सींचै सुधासार नीर को।

भीषण अग्नि का वर्णन कवि ने बड़े विस्तार से किया है। इसका व
था कि उन्होंने हनुमानधारा (चित्रकूट) मे भयंकर दावाग्नि का प्रल
देखा था। भयंकर अग्नि में पानी भी घी का काम करता है—

(१) 'तुलसी' सुन्यो न कान सलिल सर्पी-समान,
अति अचरज कियो केसरी-कुमार है।

(२) जीवन तें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी,
'तुलसी, भभरि मेघ भागे मुख मोरि कै।

अग्नि का स्वाहाकार कैसा है—

पान, पकवान बिधि नाना को सँधानो, सीधो,
बिबिध बिधान धान बरत बखारहीं।
कनक किरीट कोटि, पलँग, पेटारे, पीठ
काढ़त कहार, सब जरे भरे भारहीं।
प्रबल अनल बाढ़ै, जहाँ काढ़ै तहाँ डाढ़ै,
झपट लपट भरे भवन भँडारहीं।
'तुलसी' अगार न पगार न बजार बच्यो,
हाथी हथसार जरे घोरे घोरसारहीं॥
लागि लागि आगि, भागि भागि चले जहाँ तहाँ,
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार बसन उघारे धूम धुंध-अंध,
कहैं बारे बूढ़े 'बारि बारि' बार-बारहीं।
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं।
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति,
'तात तात! तौंसियत झौंसियत झारहीं॥

वर्गों की प्रकृति पर भी कवि ने भली भाँति दृष्टि रखी है—

चारिहू चरन के चपेट चाँपे चपटि गो,
उचके उचकि चारि अंगुल अचल गो।

इसमें बंदरों को झूमकर कूदने का भाव दिखाया गया है। दूसर
ण लीजिए—

अंगद, मयंद, नल-नील, बलसील महा,
बालधी फिरावैं मुख नाना गति लेत हैं।

बंदर जब प्रसन्न रहते हैं तो मस्ती के साथ दुम हिलाते हुए मुँ
चक्कर लगाया करते हैं।

विज्ञान से थोड़ा भी संपर्क रखने वाले जानते हैं कि कोई वस्तु आकाश में नियत ऊँचाई से ऊपर चली जाय तो अन्य ग्रहों के आकर्षण से वह उसी ओर खिंच जाती है। यही बात तुलसीदास भी कहते हैं—

लूम लपेटि अकास निहारि कै हाँकि हठी हनुमान चलाए।
सूखि गे गात चले नभ जात, परे भ्रम-बात न भूतल आए॥

४५ मील से ऊपर पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति काम नहीं करती। 'अकास निहारि कै' का तात्पर्य यह है कि देवताओं के विमान में कहीं जाकर टकरा न जायँ।

अधिक उदाहरणों की आवश्यकता नहीं। संसार की चित्तवृत्ति और प्रकृति का भी तुलसीदास ने वर्णन किया है। इसका उल्लेख आगे होगा। यहाँ यही कह देना पर्याप्त है कि कवि ने अनुभव द्वारा जो कुछ संग्रह किया था उसे कहीं छिपाया नहीं, मुक्तकंठ से उसका वर्णन किया है। 'दास' ने कवि की योग्यता में लिखा है—'देखी सुनी बहु लोक की बात'; 'मम्मट' भी 'शक्ति-र्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्' कहकर लोक के अनुभव को कवि के ज्ञान का आवश्यक अंग मानते हैं। तुलसीदास ने जो कुछ भी देखा-सुना अथवा अनुभव किया उसमें साहित्यज्ञ और समाज-सुधारक दोनों की दृष्टि थी। इसी से उनकी बातों में चमत्कार भी है और मार्मिकता भी।

उत्तरकांड-विनय

कवितावली में उत्तरकांड आधे से भी अधिक है। इस कांड में विभिन्न देवताओं की विनय, अपनी दीनता, सगुण-निरूपण, संसार की अंधपरंपरा आदि कितनी ही बातों का वर्णन बड़ी भावुकता और सहृदयता के साथ किया गया है। इस कांड का अपना अलग ही अस्तित्व है। इसलिए इसकी समालोचना भिन्न शीर्षक में करनी आवश्यक है। सबसे पहले यहाँ 'विनय' के ऊपर थोड़ा विचार किया जाता है, फिर अन्य बातों की समीक्षा की जायगी।

विश्व की विशाल परिस्थिति में अशांति अपनी अठखेलियाँ दिखा रही है। विपत्ति के बादलों से आत्मानंद-रूपी आकाश आच्छन्न है। इस अपार उदधि में भाव-द्वंद्वों के हृदय-विदारक हिल्लोल उठ रहे हैं। मानव हृदय मूक भाव से इस कौतुक की क्रीड़ा निहार रहा है। जब उसके अंतःकरण में कोई गहरी चोट लगती है तब वह व्यथित होकर कभी-कभी चीत्कार कर भी उठता है। उसके समक्ष नाना प्रकार के दृश्य आते हैं। नयन-सुखद दृश्यों का अवलोकन

वह अनिमेष करता है, किंतु हृदय में हाहाकार उपस्थित करनेवाले दृश्यों को वह नहीं देखना चाहता। सहसा वह नेत्र बंद करने का उद्योग करता है, पर विफल रहता है। आँखें उसकी इच्छा का अनुरोध अस्वीकार कर देती हैं। कोई अज्ञेय शक्ति आँखों की पलकें पकड़ लेती हैं, वे ऊपर से नीचे को आँख ढकने के लिए जीतोड़ प्रयत्न करने पर भी नहीं उतरतीं। मानव बड़ा हियाव करके —छाती पर पत्थर रखकर—इन दृश्यों को भी देखता है। जब तक उसके जीवन का यंत्र परिचालित होता रहता है वह एक के पश्चात् दूसरे और दूसरे के पश्चात् तीसरे, इसी प्रकार विभिन्न दृश्यों का अनोखा उलट-फेर हँसते-रोते देखा करता है। उसके जीवन का अभिनय समाप्त होने के साथ ही इन दृश्यों का भी उसके लिए अन्त हो जाता है। अपनी इच्छाओं की प्रतिकूलता उसे पसन्द तो नहीं है, पर अपनी अशक्तता का ध्यान कर मानव इसके समक्ष नत-मस्तक हो जाता है। पहले तो कुछ चीं-चपड़ भी करता है, पर जब उसे ज्ञात हो जाता है कि यह परिवर्तन अनंत है और अपने अधिकार के बाहर है, तब वह कलेजा कड़ा कर लेता है और अच्छे दृश्यों के पश्चात् आनेवाले बुरे दृश्यों को भी देखकर रोता नहीं, हँसता है। मानव जब इस प्रकार 'करुणा' को प्यार करने लगता है तब वही उसके लिए 'आनन्द' बनकर सामने आती है। पूर्ण शांति न होने पर भी इस परिवर्तन के कारण उसे कुछ-न-कुछ शांति मिलती है और अपनी विजय समझ वह खिल-खिलाकर हँस पड़ता है।

जब मनुष्य रोने को हँसना समझने लगता है, दुःख को सुख मान लेता है, करुणा को हर्ष-रूप में देखता है, तब अशांति भी शांति जान पड़ती है। ये सब संसार के चोचले हैं, माया का जादू है अथवा मानव की कोरी कल्पना है। किसी का कथन है कि संसार की कल्पना मनुष्य ने ही की है। संसार को दृश्य-रूप देने में मानव भले ही असमर्थ हो, पर उसने अपनी कल्पना से इस संसार को विस्तृत अवश्य कर दिया है। विस्तृत वस्तु के संकुचित रूप मे आने का और संकुचित वस्तु के बढ़ने का उद्योग कालक्रम से हुआ करता है। अवश्य ही जब मनुष्य ने संसार को बढ़ाया है तब इसे संकुचित करने का भी उपाय करना ही होगा। अन्यथा विस्तार संसार को अपने मे लीन कर लेगा और इसका अस्तित्व मिटने के साथ इसकी शांति का भी सत्यानास हो जायगा। जिस प्रकार मनुष्य ने सुख और दुःख की कल्पना कर ली है उसी प्रकार ममत्व की

कल्पना भी अब उसे करनी ही पड़ेगी। उसे अब यह मानने के लिए बाध्य होना पड़ेगा कि संसार में सुख-दुःख नहीं है, यह सब हमारी कल्पना थी। इस प्रकार का भाव आते ही उसे शांति प्राप्त हो सकती है। पर ऐसी कल्पना करने के लिए जितनी सरल है उतनी प्रयोग में लाने के लिए नहीं। या तो बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसी कल्पना करके शांति-लाभ कर सकते है या महामूर्ख। मध्यम श्रेणी के लोग तो डूबने-उतराते रहते हैं। श्रीमद्भागवत में कहा गया है—

यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परंगतः।
तावभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः॥

महामूर्ख तो इसलिए आनन्दानुभव करते हैं कि वे झूठे आनन्द को सच्चा आनंद समझे बैठे हैं और इसी को देख-देखकर गद्गद होते रहते हैं। बुद्धिमान् लोग इसलिए आनन्दानुभव करते हैं कि वे इस जंजाल की असत्यता जानते हैं। शेष लोग अपने ऊपर झंखते हैं, क्योंकि वे न तो इसे सत्य ही मानते हैं न झूठ। इसलिए यह आवश्यक है कि सब के आनन्दानुभव अथवा शांति-प्राप्ति के निमित्त कोई सीधी पगडंडी खोज निकाली जाय और छोटे-बड़े सब उसी द्वारा ध्येय तक पहुँच जायँ। यह तो निश्चित है कि मानव का अंतिम ध्येय शांति है।

जब मनुष्य संसार में आ पड़ा है और उसे यहाँ रहना है तब यह आवश्यक है कि वह कोई ऐसा उपाय निकाले जिससे यहाँ रहते हुए भी इस जंजाल में जकड़ा न जा सके। प्राचीन ऋषि-महर्षियों ने इसी को लक्ष्य करके कहा है—'सुख-दुःख को भूल जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा। अपने को संसार से निर्लिप्त रखो, तुम माया से बचे रहोगे। सब कामों को निष्काम करो, तुम्हारे सामने सफलता हाथ जोड़े खड़ी रहेगी' आदि। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा ही है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥

इससे भी यही ध्वनि निकलती है कि बिना सुख-दुःख भूले, बिना निर्लिप्त हुए और निष्काम कर्म किए संसार का कल्याण नहीं हो सकता। किंतु यह आदेशोपदेश कहने-सुनने में जितना सरल है उतना कार्यरूप में परिणत करने में नहीं, अपितु यह कार्यान्वित करने में उतना ही दुरूह है जितना सरल यह भासता है। यदि इसको ऐसा न मानें तो यह मानना ही पड़ेगा कि रमते साधुओं के लिए

यह आदेश लाभप्रद भले ही हो, किंतु गृहस्थी के जगज्जाल में फँसे हुए मनुष्यों के लिए तो अवश्य ही कठिन है। ऐसी दशा में उनके लिए भी कोई ऐसा मार्ग ढूंढ़ निकालना होगा जो सुगम और कल्याणप्रद हो। कल्याण के अन्वेषकों ने ऐसा मार्ग भी खोज लिया है।

मानव को जो निर्लिप्त होने और निष्काम रहने का आदेश किया गया है उससे स्पष्ट होता है कि उसकी प्रकृति या प्रवृत्ति कुछ ऐसी है कि वह संसार में लिप्त होना चाहती है और कृत कर्मों का फल चखने की इच्छा रखती है। इसी प्रवृत्ति को रोकने के लिए निर्लिप्त होने, निष्काम रहने का 'शासन' किया जा रहा है। इस प्रवृत्ति को दार्शनिक 'रागात्मिका वृत्ति' कहते है, क्योंकि यह रोचक विषयों से 'राग' (प्रेम) करने की बड़ी अभिलाषिणी है तुरंत किसी चमक-दमकवाले या प्रभापूर्ण विषय में फँस जाती है। यह नहीं देखती कि यह चमक चिरस्थायी है या चलायमान। संसार ऊपर से देखने में बहुत ही चमकता हुआ देख पड़ता है। यह भोली वृत्ति भी उसे लिपटाने के लिए दौड पडती है, पर उसमें पड़कर आत्मा को शोक का अनुभव होने लगता है, मनुष्य को अनिच्छा हो जाती है। जब इस वृत्ति का स्वभाव ही है कि यह प्रभापूर्ण पदार्थों से प्रेम करने के लिए दौड़ जाती है तब इसे किसी असत्प्रभापूर्ण पदार्थ से हटाकर सत्प्रभापूर्ण पदार्थ में लगाना कहीं अधिक श्रेयस्कर प्रतीत होता है। मना करने से, रोकने से तो यह मानने वाली है ही नहीं, तो इसे किसी ढग से वश में करना चाहिए। छोटे-छोटे बच्चों में भी ऐसी ही बात होती है। यदि उन्हें समझाएँ कि तुम्हें यह 'कड़वी भेषज' गुन करेगी, पी लो तो वे नही मानते। तब चतुर लोग ऐसी 'कड़वी भेषज' मिश्री या मधु में मिलाकर पिलाते हैं। ठीक इसी प्रकार संसार का भूलना 'कड़वी भेषज' है, इसके पिए बिना तन की ताप नहीं मिट सकती'। यदि तन-ताप को मिटाना है और साथ ही साथ कड़वाहट से भी बचने का उपाय करना है तो इसमें मीठी वस्तु मिला लेनी चाहिए।

उक्त मधु का नाम सगुण ईश्वरोपासना है। मानव की 'रागात्मिका वृत्ति' इसमें लगकर दोनों हाथों लड्डू ले सकती है। संसार के झमेले से भी बच जायगी और कल्याण भी पा जायगी। ईश्वरोपासना के मंदिर में पहुँचने के लिए आचार्यों ने अलग-अलग मार्ग बतलाए हैं। उनमें से श्रवण कीर्तन स्मरण

सेवा, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन ये नौ बड़े प्रसिद्ध राजमार्ग हैं। यद्यपि इन्हें देखने से इनको ढूँढ़ निकालना कठिन नहीं ज्ञात होता, तथापि 'सेतुआ-पिसान' बाँधकर ढूँढ़ने निकलनेवाले भी इन्हें कठिनाई से पाते हैं। भटकते-भटकते कभी-कभी कहीं के कहीं चले जाते हैं। इन नवों भक्तिमार्गों को खोज निकालने के लिए सबसे पहला चिह्न है 'विनय'। विनय द्वारा इनका संकेत ही नहीं मिल जाता, अपितु इनमें से कई रागमार्गों में प्रवेश भी हो जाता है।

विनय द्वारा मनुष्य के हृदय में अलौकिक भावना का उदय होता है और वह स्वयम् भी दिव्य प्राणी बन जाता है। विनय द्वारा आनंद तो प्राप्त होता ही है, साथ ही साथ समस्त क्लेशों का नाश भी हो जाता है। संसार की विषाक्त परिस्थिति से जब मानव का हृदय व्याकुल हो जाता है, जब उसका दम घुटने लगता है तब तड़पते हुए हृदय से चीत्कार-रूप में विनय ही निकलती है। मानव जब संसार की समस्त शक्तियों के बल का अनुमान कर लेता है और किसी में उसे सांसारिक विह्वलता से बचने की शक्ति नहीं दिखती तब वह अपने ही हृदय-मंदिर में करुणापूर्ण वाणी से उस अनंत और अपरिमेय शक्ति का आह्वान करने लगता है। उसे विश्वास होता है कि मेरी यह विनय सुननेवाली कोई शक्ति है और वहाँ विनय के अतिरिक्त किसी प्रकार की दूसरी बात पहुँच ही नहीं सकती। ईश्वर को किसी प्रकार का धन, भेंट आदि—जो मूर्त रूप में दिखाई पड़ते हैं—नहीं दे सकते। उसकी भेंट के लिए हृदय है, उसका आह्वान करने के लिए विनय है, उसकी पूजा करने के लिए उसके गुणानुवाद हैं। संसार में शांति पाने का सबसे पहला साधन भी विनय ही है। रागात्मिकता वृत्ति को फँसा लेने के लिए उससे बढ़कर दूसरा 'चारा' और नहीं मिल सकता।

जीवन विनयमय है। जीवन का आदि विनय और जीवन का अंत विनय। जीवन का मध्य तो विनय से भरा है ही। अब बतलाइए इस विनय के त्याग से जीवन के जंजालों से कैसे निस्तार हो सकता है। जिस सच्चिदानंद का एक अंश होकर भी यह जीवात्मा संसार में नाना प्रकार के झंझटों को झेल रहा है, यदि उसकी विनय करके उससे मिलने की, उसमें विलीन होने की युक्ति वह नहीं करता तो उसे आनंद पाने का पूर्ण शांति प्राप्त करने का क्या कोई

दूसरा उपाय मिल सकता है, नहीं। विनय करते समय विनीत केवल इस विश्वास से सब विपत्तियों और दुःखों से बचने का अनुभव करने लगता है कि जिसकी मैं विनय कर रहा हूँ वह सर्वशक्ति-संपन्न है और मेरे कष्टों को तुरत दूर कर सकता है। संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि सभी जातियों के आदि-ग्रंथ विनय में ही लिखे गए हैं। भाव यह है कि संसार में आकर सबसे पहले मानव विनय की ही रचना करता है। संसार की सबसे प्राचीन और पवित्र वाणी जो प्राप्य है, वेद है। वेद में ईश्वर की विनय का प्राधान्य है। इससे सिद्ध है कि मानव-जाति का अपनी शान्ति के लिए सबसे प्रथम प्रयास विनय ही है। यह स्वाभाविक भी था। इसी के द्वारा पहले भी शान्ति मिली थी और मानव को अब भी शान्ति मिलती है, भविष्य में भी मिलेगी।

यह बात सभी जानते है कि विनीत सबसे प्रथम 'दीन' बनता है। जो दीन नहीं बनना चाहता वह दीन होते हुए भी किसी की विनय करके अपना संताप कैसे निवारण कर सकता है। वह विनीत कैसे हो सकता है। उसे दुर्विनीति कहना चाहिए। इसलिए विनय करनेवाला सबसे पहले अपने को दीन समझता है। अपने को दीन समझनेवाला अपने में किसी प्रकार का अभिमान नहीं रख सकता। यदि उसके हृदय में किसी प्रकार का किंचिन्मात्र अभिमान भी हुआ तो वह दीनता के पद से गिर जायगा। इसी प्रकार विनीत अपने मन-मतंग को अंकुश द्वारा सेव्य की ओर लाने का प्रयत्न करेगा। उसे दूसरी ओर जाने से रोकेगा, क्योंकि उसका मन यदि दूसरे की ओर बराबर लपक जाता है तो यह उस मन के लिए बड़ी बुरी बात होगी। वह स्तुत्य की स्थिरचित्त से विनय ही कैसे कर सकेगा? इसके साथ ही विनीत के मन में एक प्रकार की ग्लानि रहती है। वह सोचता है कि न जाने किस कर्म के कारण मुझे ये क्लेश सहने पड़ रहे हैं। इस विचार के साथ ही उसे अपने मन पर कुछ रोष-सा आ जाता है और वह खीझकर उसको फटकारने भी लगता है। इसी प्रकार वह जिसकी विनय करता है उस पर विश्वास भी करता है। क्योंकि यदि उसके हृदय में यह विश्वास न हो कि विनय करने से सेव्य मेरा क्लेशमोचन करेगा तो एक तो वह उसकी विनय नहीं कर सकता, दूसरे विनय करना भी व्यर्थ है। जिसमें विश्वास ही नहीं वह सफलता क्या प्राप्त करेगा। विनय करने के समय नाना प्रकार की बातें भी स्तुत्य से वरदान रूप में माँगी जाती हैं और नाना प्रकार

की कल्पनाएँ करके उसी की विनय करने का दृढ़ निश्चय भी हृदय में किया जाता है। प्रत्येक 'विनयी' में ये बातें अवश्य होती हैं। वैष्णव संप्रदाय में विनय की छान-बीन करके इसी प्रकार की कुछ बातें स्थिर की गई हैं, जिनका विनय में संनिवेश होना ही चाहिए।

ये सब बातें सात हैं। इनके बिना विनय परिपूर्ण नहीं समझी जाती। इन्हें 'भूमिका' कहते हैं। इन सातों भूमिकाओं से युक्त होने पर ही किसी की विनय भगवान् की राजसभा में स्वीकृत हो सकती है, अन्यथा वह दाखिल-दफ्तर कर दी जायगी। इनके नाम ये हैं—दीनता, मान-मर्षण, भय-दर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारण। उदाहरण देकर इनकी पुष्टि की जाती है।

दीनता—अपने को अति तुच्छ समझना और असफलता का सारा दोष अपने सिर लेना। यथा—

मातु-पिता जग जाय तज्यौ बिधि हू न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच निरादर-भाजन कादर, कूकर टूकन लागि ललाई।
राम सुभाउ सुन्यो 'तुलसी' प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथ कों परमारथ कों रघुनाथ सों साहेब खोरि न लाई॥

मान-मर्षण—सब प्रकार के अभिमान को नष्ट करके केवल इष्टदेव की कृपा के आश्रित होना। यथा—

आपु हौं आपु को नीके कै जानत रावरो राम भरायो गढ़ायो।
कीर ज्यों नाम रटै 'तुलसी' सो कहै जग जानकीनाथ पढ़ायो।
सोई है खेद, जो बेद कहै, न घटै जन जो रघुबीर बढ़ायो।
हौं तो सदा खर को असवार, तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो॥

भय-दर्शन—जीव को भय दिखाकर इष्टदेव के सम्मुख करना। यथा—

'सुत' दार, अगार, सखा, परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे।
सब की ममता तजि कै समता सजि संत-समाज बिराजहि रे।
नर-देह कहा करि देखु बिचार, बिगारु गँवार न काजहि रे।
जनि डोलहि लोलुप कूकर ज्यों, 'तुलसी' भजु कोसलराजहि रे॥

भर्त्सना—अपने मन को डाँटना। यथा—

बिषया पर-नारि, निसा तरुनाई, सु पाई पर्‌यो अनुरागहि रे।
जम के पहरू दुख रोग बियोग, बिलोकतहू न बिरागहि रे।
ममता-बस तैं सब भूलि गयो, भयो भोर, महाभय भागहि रे।
जरठाइ दिसा, रबिकाल उग्यौ, अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे।

आश्वासन—अपने इष्टदेव के गुणों पर विश्वास रखना और उ कृपा के भरोसे मन को ढाढ़स देना। यथा—

मीत बालि-बंधु पूत, दूत, दसकंध-बंधु
सचिव, सराध कियो सबरी जटाइ को।
लंक जरी जोहे जिय सोच सो बिभीषन को,
कहौ ऐसे साहेब की सेवा न खटाइ को।
बड़े एक एक तें अनेक लोक लोकपाल,
अपने अपने को तो कहैगो घटाइ को।
साँकर के सेइबे सराहिबे, सुमिरिबे को,
राम सो न साहेब, न कुमति-कटाइ को॥

मनोराज्य—बड़े-बड़े अभिलाष करके इष्टदेव से उनकी पूर्ति के प्रार्थना करना। यथा—

गढ़ि-गुढ़ि छोलि-छालि कुन्द की सी भाईं बातें,
जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनिहौं।

बिचारण—दार्शनिक सिद्धांतों का विवेचन अन्य मार्गों की व दिखाकर मन को भक्ति-पथ में लगाना। यथा—

जप, योग, बिराग, महा-मख साधन, दान, दया, दम कोटि
मुनि, सिद्ध, सुरेस, गनेस, महेश-से सेवत जन्म अनेक
निगमागम ज्ञान, पुरान पढ़े, तपसानल में जुग-पुंज
मन सों पन रोपि कहै 'तुलसी' रघुनाथ बिना दुख कौन

इन बातों के पालन से मनुष्य शरणागति के योग्य होता है। इसके शरणागति में उसे इन छह नियमों का पालन करना चाहिए—

अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववर्णनं तथा।
आत्मनिक्षेपकार्पण्यौ शरणागतिलक्षणम्॥

अनुकूल का संकल्प—अपने इष्टदेव के अनुकूल गुणों के धारण क संकल्प करना। यथा—

सुत काम बिए, नित नेम लिए रघुनाथहि के गुन-गाथहि
सुख-मंदिर सुन्दर रूप सदा उर आनि धरे धनु भाथहि
रसना निसिबासर सादर सो 'तुलसी' जपु जानकीनाथहि
करु संग सुसील सुसंतन सों तजि कूर कुपंथ कुसाथहि

प्रतिकूल का त्याग—इष्टदेव से प्रतिकूल वस्तुओं और गुण का यथा

काम से रूप, प्रताप दिनेस से, सोम से सील, गनेस से माने
हरिचंद से साँचे, बड़े बिधि से, मघवा से महीप, बिषै-सुख-साने
सुक से मुनि, सारद से बकता, चिरजीवन लोमस ते अधिकाने
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी' जु पै राजिवलोचन राम न जाने

रक्षा का विश्वास—इष्टदेव कभी अनिष्ट न होने देंगे। यथा—

जोग न बिराग जप जाग तप त्याग ब्रत,
तीरथ न धर्म जानौं बेद बिधि किमि है।
'तुलसी' सो पोच न भयो है, नहिं ह्वैहै कहूँ,
सोचैं सब याके अघ कैसे प्रभु छमिहै।
मेरे तो न डरु रघुबीर सुनौ साँचो कहौं,
खल अनखैहैं तुम्हैं, सज्जन न गमिहै।
भले सुकृत के संग मोहि तुला तौलिए तौ,
नाम के प्रसाद भार मेरी ओर नमिहै॥

गोप्ता का वर्णन—अपने रक्षक इष्टदेव का गुणगान करना। यथा—

सेवा-अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यों,
बिहूने गुन पथिक पियासे जात पथ के।
लेखे जोखे चोखे चित 'तुलसी' स्वारथ-हित,
नीके देखे देवता देवैया घने गथ के।
गीध मानो गुरु, कपि-भालु मानो मीत कै,
पुनीत गीत साके सब साहेब समत्थ के।
और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत,
लसम के खसम तुही पै दसरत्थ के॥

आत्मनिक्षेप—तन, मन और कर्म सब कुछ इष्टदेव को भेंट करना। यथा—

जे मद-मार-बिकार भरे ते अचार-बिचार-समीप न जाहीं।
है अभिमान तऊ मन में, जन भाखिहै दूसरे दीन न पाहीं।
जौ कछु बात बनाइ कहौं 'तुलसी' तुम तें तुम हौ उर माहीं।
जानकीजीवन जानत हौ, हम हैं तुम्हरे, तुम में सक नाहीं॥

कार्पण्य—अपने दोष कहकर शरण की भिक्षा माँगना। यथा—

पाइ सुदेह-बिमोह-नदी तरनी न लही करनी न कछू की।
राम-कथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रह्लाद न धू की।
अब जोर जरा जरि गात गयो मन, मानि गलानि कुबानि न मूकी।
नीके कै ठीक दई 'तुलसी' अवलंब बड़ी उर आखर दू की॥

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि तुलसी के क्षेत्र में भक्ति-सुलभ कि

सामग्री भरी हुई है। अब यहाँ कुछ फुटकल बातों पर विचार करके इ प्रसंग को समाप्त करना है। सबसे पहले राम के स्वभाव को लीजिए

राम-स्वभाव

रामचन्द्र का अवतार लोक-मंगल के लिए हुआ था राम में सबसे बड़ी विशेषता उनके स्वभाव की थी राम के इस गुण का वर्णन तुलसी को बहुत प्यार था। इसका निरूपण उन्होंने 'विनय-पत्रिका' में बड़े विस्तार से किया है। 'कवितावली' से भी कुछ अंश उद्धृत किए जाते हैं—

भाई को न मोह, छोह सीय को न तुलसीस,
कहैं 'मैं बिभीषन की कछु न सबील की'।
लाज बाँह बोले की, नेवाजे की सँभार-सार,
साहेब न राम से बलैया लेउँ सील की॥

शील ऐसा गुण है जिसके बिना कोई व्यक्ति नहीं रह जाता। व्यवहार क्षेत्र में इसके बिना काम ही नहीं चल सकता। शीलहीन का तो विश्वास ही न करना चाहिए।

सेवक-छोह तें छाँड़ी छमा 'तुलसी' लख्यो राम सुभाव तिहारो।
तौ लौं न दाप दल्यो दसकंधर जौ लौं बिभीषन लात न मारो॥

अपने भक्तों पर भगवान् का सदा ध्यान रहता है। वे अपने भक्तों की टेक कभी नहीं टूटने देते। उनके भले-बुरे सब प्रकार के उपालंभ सहते हैं—

सीय-सिरोमनि सीय तजी जेहि पावक की कलुषाई दही है।
धर्मधुरंधर बंधु तज्यो, पुरलोगनि की बिधि बोलि कही है।
कीस निसाचर की करनी न सुनी, न बिलोकी, न चित्त रही है।
राम सदा सरनागत की अनखौंही अनैसी सुभाय सही है॥

एक धोबी के झूठा कलंक लगाने पर 'पतिदेवता सुतीयमनि' सीता को त्याग दिया, पिता के बचनों को सत्य करने के लिए भरत ऐसे धर्मप्राण और पुरवासी ऐसे रामप्राण जीवों की भी एक नहीं सुनी। किन्तु सुग्रीव से भक्त बुरे होते हुए भी राम को प्यारे रहे। उनकी लाख बुराई सुनी, पर सब अनसुनी कर दी। भक्तों के पक्षपात का इससे बढ़कर नमूना और क्या होगा। यही क्यों, वे तो भक्त के लिए पत्थर फोड़कर निकले थे—

प्रभु सत्य करी प्रहलाद गिरा, प्रगटे नरकेहरि खंभ महाँ।

तुलसी कहते कि अन्य देवों और राम में इतना अधिक अन्तर है कि यदि अन्य लोग सेंत-मेंत मिलें तो भी किसी काम के नहीं

तेरे बसाहे बेसाहत औरनि, और बेसाहि कै बेचनहारे।
ब्योम रसातल भूमि भरे नृप कूर कुसाहब सेंतहु खारे।
'तुलसी' तेहि सेवत कौन मरै, रज तें लघु को करै मेरु तें भारे।
स्वामि सुसील समर्थ सुजान सो तो सो तुहीं दसरत्थ-दुलारे॥

अन्य देवों से राम में क्या अन्तर है—

(१) जीबे को बिलोक लोक लोकपाल ते सब,
कहूँ कोऊ भो न चरवाहो कपि-भालु को।
(२) कायर को आदर काहू के नाहिं देखियत,
सबनि सोहात है सेवा-सजान टाहलो।

किंतु राम में कैसा भक्त-स्नेह है—

एते बड़े तुलसीस तऊ सबरी के दिए बिन भूख न भाजी।
राम गरीबनेवाज, भए हौं गरीबनेवाज गरीब निवाजी।

सगुण समर्थन

जैसा कह चुके हैं कि सूरदास और तुलसीदास दोनो कवियों ने सगुण की धारा में स्नान किया था और उसमें प्रवाह बनाए रखने का काव्यमूलक आदर्श भी जनता के समक्ष रखा था। 'सूर-सागर' में 'भ्रमर-गीत' संबंधी जितने पद हैं उनमें बड़ी चतुरता के साथ सगुण-निरूपण किया गया है। तुलसीदास ने भी सगुण का बड़े अच्छे ढंग से समर्थन किया है। केवल एक उदाहरण दिया जाता है। राधिका कहती हैं—

पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहूँ कहूँ,
खोजि कै खवास खासो कूबरी सी बाल को।
ज्ञान को गढ़ैया, बिनु गिरा को पढ़ैया, बार-
खाल को कढ़ैया औ बढ़ैया उर-साल को।
प्रीति को बधिक रसरीति को अधिक, नीति-
निपुन बिबेक है, निदेस देस-काल को।
'तुलसी' कहे न बनै, सहे ही बनैगी सब,
जोग भयो जोग को, बियोग नंदलाल को॥

जिसके हम उपासक हैं यदि वह हमारी भावना में मग्न नहीं हो सकता, हम जब विपत्ति में पड़ते हैं तब वह हमारे साथ नहीं दिखाई देता, पुकारने पर अपना स्थान छोड़कर हमारे सामने नहीं आता तो ऐसे ब्रह्म में हमारी वृत्तियाँ कैसे रमेंगी। उसे हम प्यार कैसे कर सकेंगे? केवल निराकार ही नहीं तुलसी ने निराकार ब्रह्म भी माना है। गंगा को वे ब्रह्ममय ही मानते

है। प्राचीन ग्रंथों में भी ब्रह्म के द्रव-रूप का उल्लेख है। बल्कि ब्रह्म का पहला रूप जल ही था। कालिदास ने भी 'या स्रष्टुः सृष्टिराद्या' लिखा है। देखिए—

ब्रह्म जो व्यापक बेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन ज्ञान गुनी को।
सोइ भयो द्रव रूप सही जु है नाथ बिरंचि महेस मुनी को॥

तुलसीदास मर्यादावादी थे, समाज की शृंखला तोड़कर व्यर्थ ही अपना दूसरा राग अलापना उन्हें पसंद नहीं था। इसी से निर्गुणिए संतों को उन्होंने फटकारा था। स्वयम् वेद-शास्त्र और उसका तत्व समझते नहीं, पर नए मत का प्रवर्तक बनने की लालसा में लोग अपनी परंपरा की ही तीव्र आलोचना करने लगते हैं। ब्रह्म के मूर्त रूप का विरोधी भी इसी के अंतर्गत आता है। तुलसीदास ने मूर्तरूप के समर्थन में कई प्रमाण दिए हैं। उनके विचार से भगवान् का मूर्त रूप सबसे अधिक गुणकारी है—

(१) अंतरजामिहु तें बड़ बाहिरजामि हैं राम, जो नाम लिये तें।
आवत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों बालक-बोलनि कान किये तें॥
आपनि बूझि कहै 'तुलसी', कहिबे की न बावरी बात बिये तें।
पैज परे प्रहलादहु को प्रकटे प्रभु पाहन तें न हिये तें॥

(२) सेवक एक तें एक अनेक भए 'तुलसी' तिहुँ ताप न डाढ़े।
प्रेम बदौं प्रहलादहि को जिन पाहन तें परमेसुर काढ़े॥

पौराणिक कथा की लपेट में आने से मूर्तरूप के इस समर्थन को कुछ कठहुज्जती लोग नहीं मानते, पर इस कथन को तो केवल अर्थवाद के रूप में लेना चाहिए। अमूर्त की भावना हम अपने हृदय में, कितना भी चिंतन करें नहीं कर सकते। इसके लिए मूर्त रूप आवश्यक है। हृदय के भीतर ब्रह्म का चिंतन करनेवाले योगियों के लिए हिमालय है। समाज के भीतर रहनेवाले योगियों के लिए तो भगवान् का मूर्त रूप ही अधिक उत्तम होगा। वे ब्रह्मज्ञान की सीढ़ी पर कदम-ब-कदम चढ़ेंगे। एक छलांग में ब्रह्मलोक पहुँचने की जरूरत उन्हें नहीं है। इतना होने पर भी तुलसीदास ने भक्ति के उन्मेष में कहीं-कहीं भक्तमाली कथाओं पर भी श्रद्धा दिखलाई है। मुक्ति पाने अथवा ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए हृदय में वैसा भक्तिपूर्ण भाव चाहिए। कम-से-कम विश्वास तो अवश्य होना चाहिए। यदि धोखे में कोई विजातीय भगवन्नाम लेने पर सीधा स्वर्ग चला जायगा तो फिर संसार में सदाचार और भक्ति

की आवश्यकता ही क्या रह जायगी। जन्म भर पाप करके मरते समय किसी बहाने नाम ले लेने से ही सबका उद्धार हो सकता है। देखिए—

आँधरो अधम जड़ जाजरो-जरा जवन
सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग में।
गिरो हिय हहरि 'हराम हो हराम हन्यो'
हाय-हाय करत परी गो काल-फँग में।
'तुलसी' बिसोक ह्वै त्रिलोकपति-लोक गयो,
नाम के प्रताप, बात बिदित है जग में।

इसी प्रकार की कथाओं और कुछ इसी प्रकार के विचारों के फैलने से भारत में 'अलहदियों' का अड्डा ही तैयार हो गया था। मलूकदास कहते हैं—

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कहि गए, सब के दाता राम॥

ईश्वर-भजन का यह तात्पर्य नहीं कि दिन भर माला घुमाइए, संसार में कर्मण्यता को तिलांजलि देकर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहिए। यहाँ तो 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' है। काम करते रहो और भगवान् को भी मत भूलो। जैसा कह चुके हैं, तुलसीदास को मर्यादा छोड़कर चलनेवालों और अपना मायाजाल

ढोंग से चिढ़

लाने वालों से चिढ़ थी। वे लिखते हैं—

गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग
निगम-नियोग तो सो कलि ही छरो सो है।

केवल नया पंथ निकालनेवाले में ही दंभ, पाखंड और ढोंग नहीं घुस रहा था, परंपरा की लीक पीटनेवाले भी स्वाँग रचकर लोगों को ठगा करते थे।

भेखु सु बनाइ, सुचि बचन कहैं चुवाइ,
जाइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की।
कोटिक उपाय करि लालि पालियत देह,
मुख कहियत गति राम ही के नाम की।
प्रगटै उपासना, दुरावै दुरवासनाहि,
मानस निवास-भूमि लोभ मोह काम की।
राग रोष ईरषा कपट कुटिलाई भरे,
'तुलसी' से भगत भगति चहैं राम की॥

संसार की गति इतनी पलट गई थी कि योगियों तो योगियों सामाजिकों तक में 'हाय पेट!' की ही धुन सुनाई देती थी

देशदशा

किसबी किसान कुल बनिक भिखारी भाट,
चाकर चपल-नट चोर चार चेटकी।
पेट को पढ़त गुन गढ़त चढ़त गिरि
अटत गहन-बन अहन अहेट की।
ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत, बेचत बेटा-बेटकी।
'तुलसी' बुझाइ एक राम-घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की॥

केवल पेट-पालन नहीं, धर्म कर्म भी केवल दिखाने के लिए बिना किसी विश्वास के किए जाते हैं। तीर्थ में दान इसलिए देते हैं कि परलोक में दूना-चौगुना मिलेगा। जान पड़ता है, तीर्थ-स्थान अब परमार्थ-मूल श्रद्धा और भक्ति के लिए न रहकर एक प्रकार से स्वार्थ-साधक बन गए हैं। वे कोई बैंक तो है नहीं कि सूद-सहित मूल चुकाएं! धर्म को निष्काम करने का भाव एकदम लुप्त हो गया।

'तुलसी' प्रतीति बिनु त्यागै तें प्रयाग तनु,
धन ही के हेतु दान देत कुरुखेत रे।

आलस्य इतना बढ़ गया है और अकर्मण्यता इतनी अधिक आ गई है कि कोई समर्थ होते हुए भी कार्य तत्काल नहीं कर डालता, उसे 'कल' पर टालता रहता है। कल का तो अंत नहीं, वह अनंत है, कभी नहीं आता।

काल्हि ही तरुन तन काल्हि ही धरनि धन,
काल्हि ही जितौंगो रन कहत कुचालि है।
काल्हि ही साधौंगो काज काल्हि ही राजा-समाज,
मसक ह्वै कहै 'भार मेरे मेरु हालिहै'।
'तुलसी' यही कुभाँति घने घर घालि आई,
घने घर घालति है, घने घर घालिहै।
देखत सुनत समुझत हू न सूझै सोई,
कबहूँ कह्यो न कालहू को काल कालि है॥

भारत में ऐसे दुर्गुणों के फैल जाने पर भी तुलसी केवल वैसों से चिढ़ते थे, सबसे नहीं। भारत के प्रति उनका प्रेम ज्यों का त्यों था। जिस युग में

देश-प्रेम

आधुनिक राष्ट्रीयता का नाम भी न रहा हो उस युग में आधुनिक ढंग से भारत पर गर्व करनेवाला दूसरा नहीं दिखाई देता। बहुत से केवल नाम कमाने के लिए राष्ट्रीय आंदोलन में घुस जाया करते हैं उनका बहिरंग रँगा रहता है पर

अंतरंग स्वदेश-प्रेम से छुआ भी नहीं होता; अपितु कुछ लोग तो रँगे सियार बनकर देश-द्रोह तक करते हैं। किन्तु इस कवि का सत्रहवीं शताब्दी का हृदय देखिए—

भलि भारत-भूमि भले कुल जन्म, समाज सरीर भलो लहि कै।
करषा तजि कै, परुषा बरषा हिम मारुत घाम सदा सहि कै।
जो भजै भगवान सयान सोई 'तुलसी' हठ चातक ज्यों गहि कै।
नतु और सबै बिष-बीज बए हर-हाटक कामदुहा नहि कै॥

'कवितावली' में इसी प्रकार की कितनी ही भावानुभूतियाँ स्थान-स्थान पर व्यंजित हैं। विनय के भीतर कवि ने संसार के कितने ही अनुभव कह डाले हैं। इन कतिपय उदाहरणों से ही कवि के

जीवन पर विचार

भावुक हृदय का परिचय मिल जाता है। 'कवितावली' के उत्तरकांड की विशेषता यह भी है कि इसमें कवि की जीवन-संबंधी घटनाओं का भी कई स्थान पर उल्लेख हो गया है। 'हनुमानबाहुक' के कुछ कवित्त भी कवि के जीवन का कुछ पता देते हैं। तुलसीदास को जन्मते ही माता-पिता का वियोग सहना पड़ा था। वे या तो मर गए होंगे या किसी कारणवश इन्हें उनसे अलग होना पड़ा होगा। कहते हैं कि अभुक्त मूल-नक्षत्र में जन्म लेने के कारण तुलसी को उनके माता-पिता ने त्याग दिया था। इनका लालन-पालन तीसरे के ही हाथों हुआ। माता-पिता की शांतिमय गोद का सुख तुलसी को नहीं मिला था, यह स्पष्ट है—

(१) मात-पिता जग जाय तज्यो बिधि-हू न लिखी कछु भाल भलाई।

(२) जायो कुल-मंगन बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी-जनक को।
बारे तें ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को॥

(३) मेरे जाति-पाँति न चहौं काहू की जाति पाँति,
मेरे कोउ काम को न हौं काहू के काम को।

'कवितावली' से यह भी प्रकट होता है कि तुलसीदास को लोग अज्ञातकुल का होने के कारण तंग भी किया करते थे। कहीं-कहीं तो उन्होंने खीझकर ऐसों को खूब फटकारा है—

(१) **काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब काहू की जाति बिगारौं न सोऊ।**
(२) **साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच सोच कहा,**
का काहू के द्वार परो, जो हौं सो हौं राम को।

इनके अन्य नाम का भी आभास मिलता है—
रामबोला नाम हौं गुलाम रामसाहि को।
'रामबोला' नाम का 'विनयपत्रिका' में भी उल्लेख है—
'राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम'।

एक बार काशी में भयंकर महामारी फैली थी। 'कवितावली' में उसकी भीषणता का चित्र है और उसको शांति के लिए प्रार्थना की गई है। इससे कवितावली के कुछ पद्यों के निर्माणकाल का भी पता चलता है।

संकर-सहर-सर नर-नारि बारिचर,
बिकल सकल महामारी माँजा भई है।

महामारी का समय भी दिया हुआ है—
(१) **बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी,**
बूझिये न ऐसो गति संकर-सहर की।
(२) **एक तो कराल कलि-काल सूल-मूल तामें**
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।

उक्त रुद्रबीसी-सं० १६६५ से १६८५ वि० तक थी। कवितावली के कुछ पद्यों की रचना इसी समय के बीच हुई होगी। सं० १६८० में तुलसीदास की मृत्यु हो गई थी। तुलसीदास की बाँह में शूल उठा था, जिसे दूर करने के लिए उन्होंने 'हनुमानबाहुक' एक अलग ही पुस्तक लिखी। पर रोग का आभास कवितावली के छंदों से ही मिलने लगता है—

(१) **अधिभूत-बेदना बिषम होत भूतनाथ!**
'तुलसी' बिकल पाहि पचत कुपीर हौं।
मारिये तौ अनायास कासी-बास खास फल,
ज्याइये तौ कृपा करि निरुज सरीर हौं॥
(२) **रोग भयो भूत सो कुसूत भयो 'तुलसी' को**
भूतनाथ पाहि पद-पंकज गहतु हौं।
ज्याइये तौ जानकीरमन-जन जानि जिय,
मारिये तो माँगी मीचु सूधियै चहतु हौं।

जिस समय तुलसीदास काशी में थे उस समय यहाँ के पंडे-पुरोहितों ने इनका विरोध किया था। इस विरोध का संकेत इस पुस्तक में भी मिलता

हैं। बैजनाथदास लिखते हैं कि निम्नलिखित कवित्त विश्वनाथ-मंदिर में लिखकर ये बाहर चले गए थे । पीछे शंकर का कोप हुआ और ये बुलाए गए ।

देवसरि सेवौं बामदेव गाँव रावरे ही,
नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं।
दीबे जोग 'तुलसी' न लेत काहू को कछुक,
लिखी न भलाई भाल, पोच न करत हौं।
एते पर हू जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै,
ताको जोर दीन देव-द्वारे गुदरत हौं।
पाइ कै उराहनो, उराहनो न दीजै मोहिं,
कालकला कासीनाथ, कहे निबरत हौं॥

देश की दुर्गति, काशी की कदर्थना, अकाल, राजा के अन्याय आदि का भी वर्णन मिलता है—

(१) खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-बिहीन लोग सीद्यमान सोच-बस,
कहैं एक एकन सों 'कहाँ जाई का करी।'
(२) हाहा करै 'तुलसी' दयानिधान राम, ऐसी,
कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की।
(३) धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप जोग बिराग लै जीव पराने।
को करि सोच मरै 'तुलसी' हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने॥
(४) कासी में कंटक जेते भए ते गे पाइ अघाइ कै आपनो कीयो।
आज कि कालिह परौं कि नरौं जड़ जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो॥

कहते हैं कि तुलसीदास ने मृत्यु के समय क्षेमकरी पक्षी को देखकर उत्तरकाण्ड का छंद १८० कहा था—

देखि सप्रेम पयाल-समैं सब सोच-बिमोचन छेमकरी है।

उत्तरकांड के अनेक पद्यों में तुलसीदास के जीवन का रहस्य छिपा पड़ा है।

हमारे यहाँ के कवियों और महात्माओं में बहुत दिनों से आत्मगोपन की प्रथा सी चली आ रही है। अपनी रचनाओं में अपने संबंध में कुछ अधिक कहना वे आत्मश्लाघा के कारण अनुचित समझते हैं।

जीवनी

यही बात गोस्वामी तुलसीदास के संबंध में भी है। इन्होंने अपने ग्रंथों में अपने जीवन-वृत्त के संबंध में बहुत थोड़ी बातें कही हैं का जीवन-चरित्र बाबा

कृत 'गोसाईं-चरित्र' और महात्मा रघुबरदास-कृत 'तुलसी-चरित्र' नामक दो ग्रंथों में वर्णित है। इनके रचयिता गोस्वामी जी के शिष्य कहे जाते हैं, पर खेद है कि इन ग्रन्थों में कथित घटनाओं में भी कहीं कम और कहीं बहुत अंतर है। इन चरित्रों में गोस्वामीजी का जन्म-संवत् १५५४ दिया है और मृत्युकाल १६८०। किंतु अधिकतर विद्वानों का मत है कि इनका जन्म-संवत् १५८९ था। इधर खोज में गौतम चंद्रिका नामक पुस्तक मिली है जिसमें तुलसीदास का जीवन-वृत्त भी थोड़ा-सा दिया गया है। उसके अनुसार इनका जन्म सं० १६०० में हुआ था। इनकी मृत्यु के संबंध में जो दोहा प्रचलित है उसका प्राचीन पाठ यों मिलता है जिससे सं० १६०० में इनके जन्म लेने का समर्थन होता है—

संवत सोरह सै असी असी बयस के तीर।

कहा जाता है कि इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। छोटी वय में ही माता-पिता से इनका संबंध छूट गया। यह बात 'कवितावली' और 'विनयपत्रिका' के कई छंदों से सिद्ध होती है। माता-पिता से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने पर बाबा नरहरिदास ने इनका पालन-पोषण किया। उन्हीं की सेवा में रह कर इनमें राम-भक्ति का अंकुर जमा। इनकी बाल्यावस्था का अधिकांश उक्त बाबा जी के साथ काशी में बीता। विद्वानों का मत है कि इनके तीन विवाह हुए थे। गौतम-चंद्रिका में इनकी स्त्री का नाम यमुना दिया है। इनकी तीसरी पत्नी से इन्हें तारक नामक एक पुत्र भी हुआ था, जो छोटी वय में मर गया। ये अपनी इस स्त्री से बहुत अधिक प्रेम करते थे। एक बार उसके मायके चले जाने पर ये उससे मिलने वहाँ जा पहुँचे थे, इस पर उसने इन्हें लज्जित करते हुए कहा था—

'लाज न आवति आपको, दौरे आएहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहहुँ मैं नाथ॥
अस्थि चर्ममय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जौ श्रीराम महँ होति न तौ भव-भीति॥'

यह बात इनके हृदय में ऐसी लगी कि ये विरक्त होकर तुरन्त काशी चले आए। कुछ दिन यहाँ रहकर ये तीर्थाटन करने के लिए निकल पड़े। अयोध्या, मथुरा, कुरुक्षेत्र, चित्रकूट, प्रयाग, पुरी आदि तीर्थों की इन्होंने कई बार यात्रा की। पर अपने जीवन का अधिकांश भाग इन्होंने काशी में ही

बिताया। कहा जाता है कि वृद्धावस्था में स्त्री से इनकी भेंट हुई थी पर उसके प्रार्थना करने पर भी इन्होंने उसे अपने साथ नहीं रखा।

तीर्थाटन का परिणाम बहुत सुन्दर हुआ। इससे एक तो इनका व्यावहारिक ज्ञान बहुत बढ़ गया, दूसरे इन्होंने अनेक भाषाओं का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया। यही कारण है कि इनकी भाषा बड़ी साफ और सुथरी है तथा भाव बहुत चुस्त हैं। तीसरी बात यह हुई कि अनेक महात्माओं और विद्वानों की संगति का लाभ हुआ। इनके प्रेमियों एवम् सहयोगियों में महात्मा सूरदास, भक्तमाल के रचयिता नाभादास, अब्दुर्रहीम खानखाना, महाराजा मानसिंह, श्रीमधुसूदन सरस्वती और काशी के टोडर नामक क्षत्रिय का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मीराबाई से भी पत्र-व्यवहार होने की बात कही जाती है, जिसके लिए 'विनय-पत्रिका' का 'जाके प्रिय न राम-बैदेही' पद बहुत प्रसिद्ध है। गौतम चंद्रिका में इनके इतने मित्रों का उल्लेख है—काशीनाथ पंडित, समरसिंह राजपूत, गंगाराम सतसंगी, कैलास कवि, उजैनीदास संगीतज्ञ, भजन ग्वाला, जयराम नगरसेठ, सियाराम तमोली, नाथू नाऊ, रामू मल्लाह, खेलावन रैदास, बांधी गोड़, हरिहर बाह, मी ढाढ़ी, जसन जुलाहा, भगवान् ब्राह्मण, तोड़र, कसच्छा के मेधाभगत। सबसे पहले उजैनीदास ने मीरा का भजन गाया जिसे सुनकर तुलसीदास आनंदित हुए। मीरा सम्बन्धी जनश्रुति का मूल कदाचित् मीरा का भजन सुनना ही है।

जिस प्रकार प्रायः महात्माओं के सम्बन्ध में हुआ करता है उसी प्रकार इनके सम्बन्ध में भी लोक में अनेक चमत्कारपूर्ण एवम् अलौकिक कथाएँ प्रचलित हैं। उनका विवेचन यहाँ अनावश्यक है। गोस्वामी जी परम राम-भक्त थे। इन्हें न तो किसी प्रकार का अभिमान था और न लोभ ही छू गया था। सबसे नम्रतापूर्वक व्यवहार करते थे। परम सुशील और सदाचारी थे। पाखंडियों के विरोधी थे। राम को छोड़ किसी नर की प्रशंसा करना अनुचित समझते थे। साधुओं और महात्माओं पर इनकी बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी। स्वदेश और स्वधर्म का इन्हें बहुत गर्व था। तात्पर्य यह कि ये पूरे महात्मा थे।

यों तो इनकी बनाई हुई बहुत सी पुस्तकें कही जाती हैं। पर विद्वानों ने बहुत विचार करने पर इनके निम्नलिखित १२ ग्रंथों का नामोल्लेख निर्विवाद रूप से किया है—रामचरितमानस, विनयपत्रिका, दोहावली, कवितावली

(हनुमानबाहुक सहित) गीतावली, रामाज्ञाप्रश्न, पार्वती-मंगल, जानकी-मंगल, रामललानहछू, बरवैरामायण, वैराग्यसंदीपनी और कृष्णगीतावली ।

कवितावली के कई पद्यों से सिद्ध है कि इनके समय में एक बार काशी मे महामारी या प्लेग का प्रकोप हुआ था । गोस्वामीजी इसी से रोगग्रस्त होकर स्वर्गवासी हुए । कहते हैं कि इन्होंने मरते समय यह दोहा कहा था—

राम नाम जस बरनि कै, भयो चहत अब मौन ।
'तुलसी' के मुख दीजिये, अब ही तुलसी सोन ।।

इनकी मृत्यु-तिथि के संबंध में यह दोहा प्रचलित है—

संवत सोरह सौ असी, असी गंग के तीर ।
सावन-सुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर ।।

इस दोहे के अनुसार गोस्वामीजी की मृत्यु संवत् १६८० के श्रावण मास की शुक्ला सप्तमी को हुई थी पर इधर कई प्रमाणों से सिद्ध किया जाता है कि इनकी मृत्यु-तिथि श्रावण शुक्ला तृतीया (शनिवार) थी (सावन स्यामा तीज सनि, तुलसी तज्यो सरीर—बेणीमाधवदास) । इसकी पुष्टि इस बात से भी की जाती है कि गोस्वामीजी के परम मित्र काशीवासी टोडर के वंशज इसी तिथि को प्रतिवर्ष तुलसीदास के नाम पर सीधा दान किया करते हैं । तुलसीदास के संबंध में उनके एक गुरु श्री आर्कदकानन ब्रह्मचारी ने बहुत ठीक कहा है—

आनन्दकानने ह्यस्मिनजङ्गमस्तुलसी तरुः ।
कवितामञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता ।।

यहाँ कवितावली में वर्णित विषयों का भी विवरण दे दिया जाता है, जिससे इसका कथा-भाग जानने में सुविधा हो । पुस्तक में कांडक्रम रखा गया है । बालकांड के आरंभ में सात सवैयों में रामचंद्र के बाल-रूप का वर्णन है । इसके बाद संक्षेप में सीता स्वयंवर का वर्णन करके परशुराम को ला मिलाया गया है । परशुराम-लक्ष्मण-संवाद के प्रसंग में ही छंद २१ में विश्वामित्र-यज्ञ-रक्षण और अहल्योद्धार की कथा का भी संकेत कर दिया गया है । अन्त के छन्द में परशुराम का धनुष देकर चला जाना वर्णित है । अयोध्याकांड के प्रथम दो सवैयों में रामचन्द्र का त्याग दिखलाया गया है । केवट के अटपटे वचनों से उसके राम-प्रेम पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहा

कवितावली के विषय

जाता। इसके अनन्तर अन्त तक १५-१६ छन्दों में ग्रामवासियों द्वारा रामचन्द्र के स्वरूप का वर्णन है। अन्तिम छन्द के हास्य को पढ़ने से हँसी आए बिना नहीं रहती। अरण्यकांड में केवल एक छन्द है। इसमें हेम-कुरंग के प्रसंगमात्र से सीता-हरण की ओर संकेत कर दिया गया है; और सब प्रसंग छोड़ दिए गए हैं। किष्किंधाकांड में भी केवल एक ही छन्द है, जिससे राम की सुग्रीव से मैत्री और हनूमान का समुद्र पार कर लंका में पहुँचना सूचित होता है। सुन्दरकांड सबसे उत्कृष्ट है। इसमें लंका में हनूमान की वीरता तथा एक से एक अच्छे रूपकों की सहायता से लंका-दहन का बड़ा ही अनोखा वर्णन किया गया है। इसके बाद सीता की सुध लेकर हनूमान राम के पास लौट आते हैं। सेतुबंध के बाद लंकाकांड में ग्रन्थ के विस्तार के अनुसार अंगद-रावण-सम्वाद काफी बड़ा है। इसके बाद बहुत दूर तक भयभीत मन्दोरी रावण को समझाती है। तदनंतर तीन-चार ही छन्दों में रामचन्द्र और लक्ष्मण का युद्ध समाप्त कर कवि ने छन्द २६ से ४७ तक हनूमान की युद्ध-शैली का वर्णन बहुत विस्तार और समारोह के साथ किया है। छंद ४८, ४६ और ५० में तो रण-भूमि का जीता-जागता चित्र खींच दिया है। चार-पाँच छन्दों में लक्ष्मण को शक्ति लगना कहकर एक ही छन्द में कुम्भकर्ण और रावण का वध कराके लंका कांड समाप्त किया गया है।

उत्तरकांड ग्रन्थ के आधे से भी अधिक है। इसमें रामायण की किसी घटना का वर्णन नहीं है, भिन्न-भिन्न विषयों के कवित्त-सवैये हैं। आधे से अधिक में तो रामचन्द्र की प्रशंसा, उनकी महिमा और स्तुत ही भरी पड़ी है। अजामिल, प्रह्लाद, गणिका आदि के उदाहरण देकर अनेक छन्दों में रामचन्द्र की शरणागत-पालकता का वर्णन किया गया है। इसके बाद बहुत दूर तक केवल राम-नाम के माहात्म्य का वर्णन करते गए हैं। प्रसंग के अतिरिक्त और भी कई स्थलों में राम-नाम की महिमा गाई गई है। इस कांड में कवि ने रामचन्द्र का वर्णन दोनों प्रकार से किया है—निर्गुण मानकर भी और सगुण मानकर भी। कई छन्दों में इन्होंने अपनी बाल्यावस्था का और अपनी दरिद्रता का हृदयद्रावक दृश्य खींचा है। छन्द १६६ और १६७ में इन्होंने अपनी बाहु पीड़ा की भी चर्चा की है। छन्द ६८ से १०५ तक कलिकाल को भी खूब खरी खोटी सुनाई है। कहते हैं कि मेघा नाम का इनका एक भक्त था। उसने लोगों

के कहने में आकर तुलसीदास पर अविश्वास करके इनकी परीक्षा लेने के लिए अपनी स्त्री को इनके पास भेजा था। उसने इनका मन डिगाने के लिए अनेक उपाय किए पर ये विचलित न हुए। इन्होंने उसको फटकार दिया। कलिकाल विषयक ये छन्द उसी समय के कहे हुए हैं और उसी पर लक्ष्य करके कहे गए हैं। इनपर यह आक्षेप किया जाता है कि ये स्त्रियों की उपेक्षा किया करते हैं। कलियुग की निन्दा करने की अपेक्षा स्त्री निन्दा की रचना होती तो मेघा-भगत की स्त्री वाली जनश्रुति से अधिक मेल मिलता। रामचरितमानस मे भी कवि ने उन्हीं स्थलो पर स्त्रियों की निन्दा की है जहाँ खोटी स्त्रियों की चर्चा आई है; जैसे मन्थरा के प्रसग में अथवा अरण्य कांड के अन्त में नारद को समझाते समय।

इस ग्रन्थ में इन्होंने अपने मन की उमंग प्रकट करने में कुछ कसर नही रखी है। कवि ने प्रायः २० छन्दों में (१४९ से १६८ तक) शिव की स्तुति और महिमा गाई है। ये शिव और राम में कोई भेद नहीं समझते थे। इसी प्रकार छन्द १४८ में भवानी अन्नपूर्णा और छन्द १७३ से १७५ तक पार्वती की स्तुति है। पार्वती की स्तुति उस समय की बनाई हुई है जब काशी में माहा-मारी का भीषण प्रकोप हुआ था। इसमें कवि ने राम और राम-नाम के महात्म्य के अतिरिक्त राम-धाम का माहात्म्य भी गाया है। छंद १३८ में सीतामढी की, छंद १३९, १४० में सीतावट की, छन्द १४१, १४२ में चित्रकूट की महिमा कही है। इसी सिलसिले में छन्द १४४ में प्रयाग और आगे के तीन छन्दो मे गगा का माहात्म्य है। इससे तत्कालीन सामाजिक दशा का थोड़ा-बहुत पता चलता है। उस समय के लोगों में राम, शिव, अन्नपूर्णा, चित्रकूट, सीतामढी, सीतावट, गंगा, प्रयाग, काशी आदि पर बड़ी श्रद्धा थी। छन्द १४३ में कवि ने किसी पहाड़ पर आग लगने का दृश्य खींचा है। इस विषय में यह अनुमान किया जाता है कि जब ये चित्रकूट में थे तब इन्होंने दूर से हनुमानधारा नामक पर्वत पर आग लगी देखी होगी, क्योंकि उस पर्वत में अब भी बहुधा दावाग्नि प्रकट होती हैं। इस काड के अनेक छंद काशी के बारे में बने हुए है, जिनमें से कुछ में काशी की महिमा का वर्णन करते हुए कलि की निन्दा की गई है और कुछ में काशी की अनेक घटनाओं का वर्णन है; जैसे छन्द १७० मे ब्रजवासी का अपार संहार छन्द १७३ से १७६ तक महामारी का प्रकोप

छन्द १७७ में 'मीन की शनीचरी' का दुकाल वर्णित है। अन्तिम तीन छन्दों में कलिकाल कृत काशी की दुर्दशा का वर्णन है। छन्द १८० में क्षेमकारी नामक चील की बहुत प्रशंसा की है। छन्द १३३ से १३५ तक तीन छन्दों में इन्होंने 'भ्रमर गीत' भी लिखा है।

अब पुस्तक के पिंगल का भी थोड़ा विचार करना चाहिए। चारणोंवाली शैली पर लिखने के कारण इसमें कुछ चुने चुनाए छन्दों का ही योग हुआ है। मनहरण, रूप-घनाक्षरी, सवैया, छप्पय और झूलना इस पुस्तक में प्रयुक्त छन्द हैं। सवैया कई प्रकार के हैं। मालती और दुर्मिला सवैया के अतिरिक्त कुछ मिश्रित चरणों के सवैयों का प्रयोग भी पाया जाता है, जिन्हें पिंगल में 'उपजाति' कहते हैं। कवितावली में कहीं-कहीं तो चारों चरणों में विभिन्न सवैयों के पद मिले हुए हैं, उपजाति सवैया बनाने में एक मेल के सवैयों का ध्यान नहीं रखा गया है। कोई २२ अक्षर का है, तो कोई २४ का। मनहरण कवित्तों में धारा का ध्यान बहुत रखा गया है, पर कहीं-कहीं प्रवाह उखड़ा हुआ और शिथिल भी है। विरति भंग दोष तो कई स्थानों मे है और कहीं-कहीं तो बहुत खटकता है। यहाँ एक उदाहरण दिया जाता है—

पिंगल

बीस भुज सीस दस खीस गए तबहिं
जब ईस के ईस सों बैर कीन्हों।

इसमें मात्रा भी कम है और प्रवाह भी नहीं है।

मेरे जान जब तें हौं जीव ह्वै जन्म्यौं जग,
तब तें बेसाह्यौ दाम लोभ मोह काम को।

पूर्वार्द्ध में प्रवाह ठीक नहीं है।

लोक को न डर, परलोक को न सोच देव-
सेवा न सहाय, गर्व धाम को न धम को।

यहाँ देव के बाद विश्राम पड़ता है, यह विरति-भंग दोष है। कवितावली में विरति-भंग दोष कई जगह है। ऊपर का दोष तो क्षम्य भी हो सकता है, पर कहीं-कहीं यह दोष बहुत भद्दा हो गया है—

ईस न गनेस न, दिनेस न, धनेस न,
सुरेस सुर गौरि गिरापति नहिं जपने।

यहाँ विश्राम 'सुरेस' के 'सु' के बाद पड़ता है। समास में विश्राम पड़न

भद्दा नहीं जान पड़ता, पर इस प्रकार का दोष ठीक नहीं । यह दोष कवित्तो में ही मिलता है ।

तुलसीदास ने तुकांतों का ध्यान बहुत रखा है । इनके सभी तुकांत उत्तम है । पर कहीं-कहीं अधम तुकांत भी देखने को मिल जाता है । देखिए—

दसरत्थ के दानि-सिरोमनि राम, पुरान-प्रसिद्ध सुन्यौं जसु मैं ।
नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम सों मन भावत पायो न कै ।
'तुलसी' कर जोरि करै बिनती जो कृपा करिहौ नदयालु सुनै ।
जेहि देह सनेह न रावरे सों असि देह धराइ कै जाय जियें ।।

इस सवैये में केवल 'ऐं' का तुकांत है, जो अधम है । प्राचीन कविता मे तुकात की ओर लोगों ने ध्यान तो अधिक अवश्य दिया था, पर कही-कही 'द्वै, छ्वै, च्वै' के तुकांत भी मिलाए गए हैं । तुलसीदास ने भी इस प्रकार के तुकात रखे हैं; जैसे—अयोध्याकांड का छंद १२ और उत्तरकांड का छंद ४० एवम् ४१ । यमक और अनुप्रास ने कविता में कई प्रकार के दोष ला दिए थे; जैसे—'नर की नर-काव्य करै नरकी' । तुलसीदास ने इसे बहुत बचाया है, पर कही-कही काफिया तंग हो जाने पर शब्द को बेतरह तोड़ना भी पड़ा है—

भई आस सिथिल जगन्निवास-दील की ।

यहाँ ढील, सील आदि का तुकांत मिलाने के लिए 'दिल' को 'दील' करना पडा है । भाषा की स्थिरता के लिए ऐसे प्रयोग चिन्त्य हैं ।

विभिन्न सवैये के चरणों के मेल का भी एक उदाहरण देखिए—

'तुलसी' जेहि के पद-पंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े ।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े ।।

कहीं-कहीं मात्राओं के ह्रस्व-दीर्घ हो जाने से नया सवैया ही बन गया है । दुर्मिल में एक अक्षर दीर्घ करके उसे नया रूप दिया गया है—

यहि घाट तें थोरिक दूरि अहै कटि लौं जल-थाह देखाइहौं जू ।
परसे पग धूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू ।
'तुलसी' अवलंब न आन कछू लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू ।
बरु मारिए मोहि बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ।।

इसमें 'हौ' ह्रस्व कर देने से दुर्मिल सवैया बनेगा, पर बिना ह्रस्व किये भी इसमे धारा है । यह नया सवैया ही हो गया है । मोटे हिसाब से कवितावली में चार छंदों का प्रयोग हुआ है घनाक्षरी सवैया छप्पय और झूलना रूप

घनाक्षरी तो केवल एक ही (अयोध्याकांड, संख्या १०) है, पर मनहरण बहुत हैं। सवैयों में मत्तगयंद और दुर्मिल की प्रचुरता है, स्थान-स्थान पर उपजाति सवैये भी बहुत हैं। कुल मिलाकर इसमें ३२५ छंद हैं। उपर्युक्त छंद व्रजभाषा के खास छंद है। इसलिए पुस्तक में व्रजभाषा का प्रयोग बहुत ठीक हुआ है। अवधी में ये छंद मँजे नहीं हैं। अवधी के लिए दोहे-चौपाइयाँ ही ठीक हैं। 'लाल' ने दोहे-चौपाई में अपना 'छत्रप्रकाश' लिखा है, पर भाषा व्रजी रखी है। इसीलिए उसमें वैसा माधुर्य नहीं आया है।

ऊपर के कई शीर्षकों में विभिन्न दोषों का यथास्थान उल्लेख किया जा चुका है। यहाँ पर कुछ फुटकल दोष और दिखा दिए जाते है। कहीं-कहीं

दोष

तुलसी ने अन्वय विचित्र रखा है। यद्यपि केशव आदि की रचना की भाँति इनकी कविता में बहुत देर तक माथा मारने की आवश्यकता नहीं पड़ती, फिर भी दोष तो दोष ही है।

देखिए—

गावत गीत सबै मिलि सुन्दरि बेद जुआ जुरि बिप्र पढ़ाहीं।

इस चरण में 'जुआ जुरि बिप्र बेद पढ़ाहीं' अन्वय होने से अर्थ स्पष्ट होता है, अन्यथा 'जुआ' विप्र का विशेषण भासता है और 'युवा' का विकृत रूप जान पड़ता है; पर कवि का अभिप्राय यह नहीं। और देखिए—

'तुलसी' तेहि औसर लावनिता दस चारि नौ तीन इकीस सबै।
मति भारति पंगु भई जो निहारि, बिचारि फिरी उपमा न पबै॥

इसमें 'दस, चारि, नौ, तीन, इकीस सबै' में गूढ़ार्थ-प्रतीति दोष है। लोगों ने इसके भिन्न-भिन्न अर्थ किए हैं, पर सभी अर्थों में कोई न कोई दोष है। इस टीका में जो अर्थ किया है उसमें कालदोष अवश्य है, पर साहित्यिक दृष्टि से वही अधिक जँचता है। भारती के उपमा-अन्वेषण की सार्थकता इसी अर्थ से सिद्ध होती है।

पुस्तक के फुटकल रूप में होने से भावों की पुनरुक्ति तो कई जगह हुई है, पर कहीं-कहीं शब्दों की भी व्यर्थ ही पुनरुक्ति की गई है—

ब्याल बधिर लेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर।
× × ×
चौंके बिरंचि संकर-सहित कोल कमठ अहि कलमल्यौ।

एक ही छंद में शेषनाग के लिए एक बार 'व्याल' और दूसरी बार 'अहि' का आना खटकता है। संस्कृत के ढंग की हिंदी संधि का एक उदाहरण लीजिए—

भले भूप कहत भले भदेस भूपनि सों,
लोक लखि बोलिए पुनीत रीतिमारषी।

इस अंश में 'रीतिमारषी' शब्द चित्य हैं। इसका अर्थ है—रीतिम्+आरषी=ऋषियों की रीति को। ऐसे प्रयोगों से भाषा के प्रसाद गुण को क्षति पहुँचती है, इससे ऐसे प्रयोग त्याज्य हैं।

प्राचीन काव्य में व्याकरणविरुद्ध दोष बहुत पाए जाते हैं। इसका कारण यह था कि उस समय व्याकरण का कोई आदर्श नहीं था। प्रान्तों के भेद से शब्दों का लिंग भी बदल जाया करता है। व्रज में गेंद स्त्रीलिंग है तो पूर्व में उसे पुलिंग बोलते हैं। इसी से कविता में भी शब्दों का लिंग-विपर्यय देखने में आता है। बाबाजी की कविता में यद्यपि प्रयोग बहुत नपे-तुले हुए हैं तथापि परंपरा की छाप से वे भी अछूते नहीं बचे—

(१) ऐसिय हाल भई तोहि धौं नतु लै मिलु सीय चहै सुख जौ रे।
(२) कोपि रघुनाथ जब बान तानी।

पहले का व्याकरण-दोष तो उलट-फेर से ठीक हो जायगा, पर दूसरे का दोष तुकांत की लपेट में होने से पूरा चरण बिना पलटे दूर नहीं हो सकता।

तुलसीदास की कवितावली के गुणों और दोषों का संक्षेप में विवेचन किया गया। कवि की रचना में जितने अधिक गुण हैं उनके सामने ये छोटे-छोटे दोष किसी गिनती में नहीं। अपितु उन गुणों पर ध्यान देते समय ये दोष दृष्टि में आते ही नहीं। संसार में निर्दोष कोई नहीं है, पर जिसमें गुणों का बहुत आधिक्य हो वही निर्दोष माना जाता है। यद्यपि तुलसीदास की महत्ता प्रमाणित करनेवाले इनके और भी कई ग्रंथ हैं तथापि केवल कवितावली पर ही विचार करने से इनके विशाल कवि हृदय का परिचय मिल जाता है। ऊपर इनकी भावुकता, काव्य-मर्मज्ञता और वर्णन-पटुता के कई उदाहरण दिए गए हैं। यदि इन्हें हम अन्य हिन्दी-कवियों के समक्ष तुलनात्मक दृष्टि से लाते हैं तो भी इन्हीं का पलड़ा झुका हुआ दिखाई देता है। दो भाषाओं पर पूर्ण अधिकार, मानव-व्यापारों के अधिकांश स्वरूपों का निरूपण, सामूहिक प्रवृत्ति की

उपसंहार

सच्चा पहचान और अभिव्यंजन-शक्ति का कौशल---एक साथ इतनी बातें न तो महात्मा सूरदास में थीं और न महाकवि केशवदास में। जायसी, कबीर आदि का तो नाम लेना ही व्यर्थ है, क्योंकि उन लोगों का क्षेत्र ही एकांगी था। इसलिए यदि पूछा हो कि हिन्दी-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ कवि, काव्य और लोक दोनों पक्षों को साथ-साथ लेकर चलनेवाला और भक्ति की सुधाधारा बहानेवाला महात्मा कौन था, तो बिना किसी संकोच के गोस्वामी तुलसीदास का नाम लेना पड़ेगा। तुलसीदास के काव्य का महत्त्व उतना ही बढ़ता जा रहा है जितना वह पुराना होता जाता है। कवि के स्वर्गारोहण से सवा तीन सौ वर्ष पश्चात् भी उसके ग्रंथों का इतना अधिक समान और आलोड़न कहाँ हुआ है। विद्वानों और अविद्वानों दोनों का समान रूप से रंजन किसके ग्रन्थ करते हैं। भारत की संस्कृति को कविता के बाँध से रोकने में कौन कवि समर्थ हुआ है। केवल तुलसीदास। संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों में भी इनका स्थान बहुत ऊँचा है। संस्कृत में कालिदास और अँगरेजी में शेक्सपियर जिस कोटि में रखे जाते हैं हिन्दी में तुलसीदास का स्थान उससे भी ऊचा है।

पंचम संस्करण

इस संस्करण में भूमिका भाग में कुछ अपेक्षित परिवर्तन उसे अद्यतन बनाने की दृष्टि से कर दिए गए हैं।

वाणी-वितान भवन
ब्रह्मनाल, वाराणसी--१
शारदीय नवरात्र, २०१३

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

षष्ठ संस्करण

इसमें भूमिका भाग में ('अंतर्दर्शन') कुछ वांछनीय संशोधन किए गए हैं।

हिन्दी-विभाग
मगध विश्वविद्यालय, गया
गुरुपूर्णिमा, २०२० वैक्रम

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

* श्रीगणेशाय नमः *

कवितावली

बालकांड

दुमिल सवैया—आठ सगण

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच-बिमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे धिक से।
'तुलसी' मनरंजन रंजित-अंजन नैन सु-खंजन-जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे ॥१॥

टिप्पणी—**सकारे** = (बँगला सकाल) प्रातःकाल। **गोद कै लै** = (बुंदेलखंडी मुहावरा) गोद मे लेकर। **हौं** = (अहम्) मैं। **सोच-बिमोचन** = शोक से छुड़ानेवाले (रामचन्द्र का विशेषण)। **ठगि सी रही** = चकित हो गई। **से** = (ते) वे (संस्कृत 'सः' से); तुकांत के लिए 'ते' के स्थान पर 'से' कर दिया है। **खंजन-जातक** = खंजन पक्षी का बच्चा। **सजनी** = सखी। **समसील** = समानतावाले, समान। **अलंकार**—उपमा और गम्योत्प्रेक्षा का संकर।

भावार्थ—(एक सखी दूसरी सखी से कहती है) हे सखी, मैं प्रातःकाल राजा दशरथ के महल के द्वार पर गई। उसी समय राजा अपने पुत्र रामचन्द्र जी को गोद में लेकर बाहर आए। मैं शोक से छुड़ानेवाले रामचन्द्र की शोभा देखकर चकित-सी रह गई। जो (ऐसे रूप को देखकर) चकित न हुए, उनको धिक्कार है। हे सखी, खंजन के बच्चे की तरह सुन्दर, काजल लगी हुई और मन को आनंदित करनेवाली आँखें ऐसी ज्ञात होती हैं मानों चन्द्रमा (रामचन्द्रजी के मुख) में दो नवीन और बराबर के नीले कमल (अंजनलिप्त आँखें) खिले हुए हों।

पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकैं, पुलकैं नृप गोद लिये।
अरबिंद आनन, रूप-मरंद अनंदित लोचन भृंग पिये।
मन में न बस्यो अस बालक जौ 'तुलसी' जग में फल कौन जिये ॥२॥

टिप्पणी—नूपुर = घुंघरू (नेउर)। **कलेवर** = शरीर। **झँगा** = झिंगुली। **अरबिंद** = कमल। **सो** = समान। **मरंद** = मकरंद। **भृंग** = भौंरे। **अलंकार**—उपमा और रूपक (तीसरे चरण में)।

भावार्थ—पैरों में घुँघरू हैं, कर-कमलों में पहुँचियाँ हैं, हृदय पर सुन्दर मणियों की मालाएँ शोभायमान हैं। नवीन नीले कमल सम साँवला शरीर पीली झिंगुली में झलक रहा है। ऐसे रामचन्द्रजी को गोद में लिए राजा हृष से पुलकायमान हो रहे हैं। उनके नेत्ररूपी भौंरे रामचन्द्रजी के मुखरूपी कमल से रूपरूपी मकरंद का आनन्द से पान करते हैं (भाव यह कि राजा दशरथ रामचन्द्रजी की मुखछबि को देखकर प्रसन्न होते हैं)। तुलसीदास कहते हैं—यदि मन में ऐसे बालरूप का ध्यान न आया तो संसार में जीवित रहने का क्या फल है अर्थात् कुछ भी नहीं।

नोट—ऊपर के दोनों सवैये अन्नप्राशन के दिन के रूप की छवि के वर्णन में हैं, क्योंकि उसी दिन पहले-पहल बालक को द्वार-दर्शन कराया जाता है।

तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं।
दमकैं दँतियाँ दुति-दामिनि ज्यों, किलकैं कल बाल-बिनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा 'तुलसी'-मन-मंदिर में बिहरैं॥३॥

टिप्पणी—**दुति** = (द्युति) कांति, शोभा। **सरोरुह, कंज** = कमल। **मंजुलताई** = सुन्दरता। **धूरि** = स० धूलि। **ज्यों** = तरह। **कल** = सुन्दर, श्रवणसुखद (जैसे—कलगान)। **अलंकार**—'तन की दुति स्याम सरोरुह' में 'वाचक लुप्तोपमा'। 'लोचन कंज की मंजुलताई हरैं' और 'छवि भूरि अनंग की दूरि धरैं' में 'तीसरा प्रतीप'। 'दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों' में 'पूर्णोपमा'। 'मन-मंदिर' में 'रूपक'।

भावार्थ—रामचन्द्रजी के शरीर की कांति नीलकमल की तरह है। नेत्रों की शोभा के आगे कमलों की सुन्दरता फीकी पड़ती है। धूलभरे शरीर अति सुन्दर शोभा देते हैं। (धूल से लिप्त रहने पर भी) उनकी शोभा कामदेव के अत्युत्तम रूप को मात करती है। छोटे दाँतों की ज्योति बिजली की तरह चमकती है। बालकों के खेल खेलते हुए सुन्दर किलकारी भरते हैं। राजा दशरथ के (ऐसे सुन्दर) चारों बालक तुलसीदास के मनरूपी मंदिर में विहार करें।

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै [illegible] रैं

कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन-मंदिर में बिहरैं ॥४॥

टिप्पणी—**आरि करैं** = हठ करते हैं। **प्रतिबिंब** (म०) = अपनी परछाहीं। **रिसिआइ** = क्रोध करके। **अरैं** = मचलते हैं।

भावार्थ—कभी खेलने के लिए चन्द्रमा माँगने का हठ करते हैं। कभी अपनी परछाहीं देखकर डरते हैं। कभी ताली बजाते हुए नाचते हैं। उनकी बाललीला देखकर सब माताओं के मन में आनंद होता है। कभी रिसहे होकर हठ करके कुछ कहते हैं, और फिर जिस वस्तु के लिए मचलते हैं उसे लेकर छोड़ते हैं। राजा दशरथ के ऐसे चारों बालक तुलसीदास के मन-रूपी मंदिर में विहार करें।

बर दंत की पंगति कुंदकली अधराधर-पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीच, जगै छबि मोतिन माल अमोलन की।
घुँघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुंडल लोल कपोलन की।
निवछावरि प्रान करै 'तुलसी', बलि जाउँ लला इन बोलन की ॥५॥

टिप्पणी—**अधराधर** = दोनों ओष्ठ। **पल्लव** = नवीन पत्ते। **अधराधर-पल्लव खोलन की** = नए पत्तों के समान कोमल होठों को खोलने की। **जगै** = प्रकाशमान होती है। **लोल** = चंचल, हिलते हुए। **कपोल** = गाल। **लला** = रामचन्द्रजी।

नोट—इस छन्द में सभी वाक्यों का अन्वय 'बलि जाऊँ' के साथ है। इस अन्वय को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

भावार्थ—कुन्दकली के समान श्रेष्ठ दंतपंक्ति की बलि जाऊँ। हँसते समय नवीन पत्तों की तरह कोमल अधरों (ओष्ठों) के खोलने की बलि जाऊँ। अनमोल मोतियों की माला की छबि की बलि जाऊँ, जो ऐसी चमकती है जैसे बादल में बिजली चमकती है तथा मुख पर लटकती हुई घूँघरवाली अलकों की, कपोलों पर हिलते हुए कुण्डलों की और लला (रामचन्द्रजी) की तोतली बोली की बलि जाऊँ। तुलसीदास इन सब पर अपने प्राण न्यौछावर करते हैं।

पदकंजनि मंजु बनी पनहीं, धनुहीं सर पंकजपानि लिये।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं, सरजूतट चौहट, हाट, हिये।
'तुलसी' अस बालक सों नहिं नेह कहा जप जोग समाधि किये।
नर ते खर सूकर स्वान समान, कहौ जग में फल कौन जिये ॥६॥

टिप्पणी—**पनहीं** = पादत्राण, जूता। **धनुहीं** = छोटा धनुष। **बनी** = (मुहावरा) शोभा देती है। **चौहट** = चौमुहाना। **नेह** = स्नेह **हाट** = बाजार

भावार्थ—रामचन्द्रजी के कमल के समान कोमल पैरों में सुन्दर जूते शोभित हैं। वे कोमल हाथों में छोटा धनुष और छोटे बाण लिए हैं और अपनी अवस्था के बालकों के साथ सरयू के किनारे, चौमुहाने पर, बाजार में और (भक्तों के) हृदय में खेलते फिरते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि यदि ऐसे बालक से प्रेम नहीं किया तो जप, योग और समाधि के ही करने से क्या होता है? वे मनुष्य गदहे, कुत्ते और सूअर के समान हैं, संसार में उनके जीवित रहने का फल ही क्या? भाव यह कि बालरूप रामचन्द्रजी से स्नेह किये बिना जप, जोग, समाधि, यहाँ तक कि जीवन भी व्यर्थ है।

नोट—यह पाँच वर्ष वाले रामरूप का ध्यान है।

सरजू बर तीरहिं तीर फिरैं रघुबीर सखा अरु बीर सबै।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसे कटि पीत दुकूल नवीन फबै।
'तुलसी' तेहि औसर लावनिता दस, चारि, नौ, तीन, इकीस सबै।
मति भारति पंगु भई जो निहारि, बिचारि फिरी उपमा न पबै ॥७॥

टिप्पणी—**बीर** = भाई। **सबै** = (सवय) एक उमर के। **निषंग** = तरकस तूणीर। **दुकूल** = रेशमी वस्त्र। **फबै** = फबता है, सुन्दर लगता है। **औसर** = अवसर, समय। **लावनिता** = (लावण्यता, लावण्य) सुंदरता। **इकीस** = बढ़कर। **सबै** = सबसे। **मति-भारति** = सरस्वती की बुद्धि। **बिचारि फिरी** = विचार कर लौट आई। **पबै** = पावै, पाती है। **अलंकार**—संबंधातिशयोक्ति।

भावार्थ—श्रीरामचंद्रजी अपने सवय (एक उमर के) मित्रों और भाइयों को लेकर सरयू नदी के किनारे-किनारे फिरते हैं। सबके हाथों में धनुष-बाण हैं, कमर में तरकस बाँधे हुए हैं और नवीन पीतांबर अति सुन्दर लगता है। तुलसीदास कहते हैं कि उस समय की जमात की सुंदरता देखकर सरस्वती उपमा खोजने लगी और दशों दिग्पालों, चारों चतुर्व्यूहियों (कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध) नवों अवतारों (मच्छ-कच्छादि, रामावतार को छोड़कर) और तीनों ईशों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) की जमातों से राम की जमात की शोभा सबसे इक्कीस (बढ़कर) पाई। उपमा देने योग्य किसी को न पाकर सरस्वती की बुद्धि पंगु हो गई, और यह विचार कर कि उपमा न मिलेगी वह निज स्थान को लौट आई (भाव यह कि सरस्वती भी उपमा न पा सकी तो मैं कैसे कह सकता हूँ)।

मनहरण कवित्त—१६ + १५ वर्ण, अंत में गुरु

छोनी में के छोनीपति छाजैं जिन्हैं छत्रछाया,
छोनी-छोनी छाए छिति आए निमिराज के।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बर बेष बपु
बरबे को बोले बयदेही बरकाज के।
बोले बंदी बिरुद बजाइ बर बाजनेऊ,
बाजे-बाजे बीर बाहु धुनत समाज के।
'तुलसी' मुदित मन पुर-नरनारि जेते
बार बार हेरैं मुख औध-मृगराज के ॥८॥

टिप्पणी—**छोनी**=(सं० क्षोणी) पृथ्वी। **छोनीपति**=राजा। **छाजैं जिन्हैं छत्रछाया**=जिनके सिरों पर राजछत्र सुशोभित है। **छोनी-छोनी**= अक्षौहिणियाँ। **छिति छाये**=जनकपुरी को घेरे पड़े हैं। **निमिराज**=जनक (निमि इक्ष्वाकुवंशी थे और जनक के पुरुषा थे)। **प्रबल प्रचंड**=बड़े प्रतापवान्। **बरिबंड**=बलवान्। **बेष**=वस्त्राभूषण। **बपु**=शरीर। **बयदेही**=(सं० वैदेही) सीता। **बरकाज**=विवाह। **बरबे को बोले**=वरण करने को बुलवाए थे। **बिरुद**=यश। **बाजे बाजे** (अरबी)=कोई कोई। **बाहु धुनत**=भुजा ठोंकते हैं। **समाज**=सभा। **हेरैं**=देखते हैं। **औध**=अवध। **औध-मृगराज**= अयोध्या के सिंह, अयोध्यावासियों के शिरोमणि रामचंद्रजी। **अलंकार**— वृत्यनुप्रास।

भावार्थ—जनकपुरी में आए हुए संसार के राजा जिनके सिर पर राजछत्र सुशोभित है, स्थान-स्थान पर अक्षौहिणियाँ डेरा डाले हुए है। वे बड़े प्रतापी, बलवान्, सुंदर वेष धारण किये हुए और स्वरूपवान हैं। वे सीताजी के स्वयंवर में वरण किये जाने को बुलवाये गए हैं। बंदीजन राजाओं की कीर्ति का गान करते हैं और अच्छे-अच्छे बाजे भी बजते हैं; जिनको सुनकर सभा में स्थित कोई-कोई वीर उत्साह से भरकर अपनी भुजाओं को ठोंकते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि नगर के जितने भी स्त्री-पुरुष हैं वे सब रामचन्द्रजी के अतिशय रूपवान् मुख को बार-बार देखते हैं। (भाव यह कि रामचंद्रजी के रूप को देखकर भी उनकी दृष्टि तृप्त नहीं हो पाती)।

सीय के स्वयंबर, समाज जहाँ राजनि को,
राजनि के राजा महाराजा जानै नाम को ?
पवन, पुरंदर, कृसानु भानु, धनद से,
गुन के निधान रूपधाम सोम-काम को ?
बान बलवान जातुधानप सरीखे सूर
जिन्ह के गुमान सदा सालिमसँ धाम को।

तहाँ दसरत्थ के, समर्थ नाथ 'तुलसी' के
चपरि चढ़ायो चाप चंद्रमा-ललाम को ॥९॥

टिप्पणी—**जानै नाम को**=उनका नाम कौन जान सकता है (अर्थात् अगणित थे)। **पुरंदर**=इंद्र। **कृसानु**=(सं० कृसानु) अग्नि। **धनद**=कुबेर। **से**=समान। **सोम-काम को**=(राजाओं के गुण और रूप के सामने) चंद्रमा और कामदेव क्या चीज है, अर्थात् चंद्रमा और कामदेव से भी अधिक गुणवान् और सुन्दर हैं। **बान**=बाणासुर। **जातुधानप**=रावण। **सरीखे**=(सं० सदृश) तुल्य। **गुमान**=घमंड। **सालिम**=(**फारसी शब्द**) दृढ़ अविचलित। **दसरत्थ के**=दशरथ के पुत्र (रामचन्द्रजी)। **चपरि**=फुर्ती से, शीघ्रता से। **चंद्रमा-ललाम**=चन्द्रभूषण, शिव।

भावार्थ—सीताजी के स्वयंवर में जहाँ राजाओं की सभा है, अनेक राजाओं के भी राजा-महाराजा एकत्र हुए हैं; उनके नाम कौन जान सकता है? वे (बल में) पवन के समान (ऐश्वर्य में) इन्द्र के समान, (तेज और प्रताप मे) अग्नि और सूर्य के समान और कुबेर के तुल्य (लक्ष्मीवान्) हैं। चन्द्रमा और कामदेव स्वरूप में उनके आगे कुछ नहीं, अर्थात् उनकी समता नहीं कर सकते। बाणासुर ऐसे बलवान् और रावण ऐसे शूर, जिनको संग्राम में दृढ़ रहने का बड़ा अभिमान था (धनुष न उठा सके)। वहाँ (जहाँ ऐसे-ऐसे शूर-वीरों का समाज था) दशरथ के पुत्र और तुलसीदास के सामर्थ्यवान् स्वामी रामचन्द्रजी ने फुर्ती से शिवजी के धनुष को चढ़ा लिया।

मयनमहन पुरदहन गहन जानि,
आनि कै सबै को सारु धनुष गढ़ायो है।
जनक सदसि जेते भले भले भूमिपाल,
किए बलहीन, बल आपनो बढ़ायो है।
कुलिस कठोर कूर्मपीठ तें कठिन अति,
हठि न पिनाक काहू चपरि चढ़ायो है।
'तुलसी' सो राम के सरोज-पानि परसत ही,
टूट्यो मानो बारे तें पुरारि ही पढ़ायो है॥१०॥

टिप्पणी—**मयन**=(सं० 'मदन' से प्राकृत 'मयन')। **महन** (प्रा०)=मथन (सं०)। **मयनमहन**=शिवजी। **पुर**=त्रिपुर नाम का एक दैत्य। **पुर-दहन गहन जानि**=त्रिपुरासुर को भस्म करना, कठिन जानकर। **आनि कै**=एकत्र करके। **सारु**=सार। **गढ़ायो है**=बनवाया था। **कुलिस** =(सं० कुलिश) वज्र। **बारे तें**=छुटपन से। **अलंकार**—'सरोज पानि' में रूपक। द्वितीय विभावना (सरोज पानि परसत ही टूट्यो)। उत्प्रेक्षा ('मानो' वाचक से)।

भावार्थ—जिस धनुष को शिवजी ने त्रिपुरासुर को भस्म करना कठिन जानकर सब शक्तिमान् पदार्थों का सार ले-लेकर बनवाया था, जिस धनु ने जनक की सभा में भले-भले बलवान् राजाओं को बलहीन करके अपना बल बढ़ाया था, जो वज्र से भी कठोर और कच्छप की पीठ से भी कठिन था, जिसको किसी ने हठपूर्वक फुर्ती से नहीं चढ़ाया था; वही धनुष रामचन्द्रजी के कोमल हाथों से, स्पर्श करते ही, स्वयं टूट गया। मानो शिवजी ने उसको बालपन से ही 'रामचन्द्रजी के छूते ही टूट जाना' यह पाठ पढ़ा रखा था।

छप्पय—रोला + उल्लाला

डिगति उर्बि अति गुर्बि, सर्ब पब्बै समुद्र सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर।
दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्खभर।
सुरबिमान, हिमभानु, भानु संघटित परस्पर।
चौंके बिरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि जबहि राम सिवधनु दल्यौ॥११॥

टिप्पणी—**डिगति** = डगमगाती है, हिलती है। **उर्बि** = (सं० उर्वी) पृथ्वी। **गुर्बि** = (सं० गुर्वी; गुरु का स्त्रीलिंग) भारी। **पब्बै** = (सं० पर्वत, प्रा० पव्वअ, पव्वय, पब्बै)। **ब्याल** = शेषनाग। **मुक्खभर** = मुख के बल। **हिमभानु** = चन्द्रमा। **संघटित** = टकराते हैं। **कोल** = वराह, सूकर। **चंड** = भयंकर। **दल्यौ** = तोड़ा। **अलंकार**—अतिशयोक्ति।

भावार्थ—ज्यों ही श्रीरामचन्द्रजी ने शिवजी का धनुष तोड़ा त्यों ही उसकी कठोर ध्वनि ने ब्रह्मांड को फोड़ दिया। बड़ी भारी पृथ्वी और (उस पर स्थित) सब पर्वत, समुद्र और तालाब डगमगाने लगे। उस समय शेषनाग भी बधिर हो गए और दिशाओं के अधिपति एवं समग्र चर और अचर व्याकुल हो गए। दिशाओं के हाथी लड़खड़ाने लगे, रावण मुख के बल गिर पड़ा। देवताओं के विमान, चन्द्रमा और सूर्य परस्पर टकराने लगे। (ऊपर = ब्रह्मलोक में) ब्रह्मा शिवजी सहित चौंक उठे और पाताल में वराह जी, कच्छप जी तथा शेषनाग जी कलमला गए।

लोचनाभिराम घनस्याम रामरूप-सिसु,
सखी कहै सखी सों तू प्रेम-पय पालि री।
बालक नृपालजू के ख्याल ही पिनाक तोर्‌यो,
—प्रताप-ताप बालि री।

जनक को, सिया को, हमारो, तेरो, 'तुलसी' को,
सबको भावतो ह्वैहै मैं जो कह्यो कालि री।
कौसिला की कोखि पर तोखि तन वारिए री,
राय दसरत्थ की बलैया लीजै आलि री ॥१२॥

टिप्पणी—**लोचनाभिराम**=आँखों को आनन्द देनेवाले। **घनस्याम**=काले बादल के सदृश। **रामरूप-सिसु**=रामचन्द्र का रूप ही शिशु रूप है। **प्रेम-पय**=प्रेमरूपी दूध से। **ख्याल ही**=खेल ही में, कौतुक मात्र से। **मंडलीक-मंडली**=राजाओं की सभा का। **दाप**=(सं० दर्प) अभिमान। **दालि**=चूर्ण करके। **भावतो**=मन इच्छित। **तोखि**=प्रसन्न होकर। **तन वारिए**=शरीर निछावर करना चाहिए। **बलैया लीजै**=बलैया लेना (स्नेहपूर्वक बोलने का एक मुहावरा है); इसका तात्पर्य है—जिसके प्रति बोला जाय उसका अरिष्ट (रोग-दोष) अपने सिर लेना।

भावार्थ—एक सखी दूसरी सखी से कहती है—"अरी सखि, बादल के सदृश श्यामवर्ण तथा आँखों को तृप्त करने वाले रामचन्द्रजी का रूप ही जो शिशु है, उसको स्नेह रूपी दूध से पुष्ट कर।" भाव यह कि रामचन्द्रजी के रूप से स्नेह बढ़ा। राजा दशरथ के इस पुत्र ने अनेक राजाओं के प्रताप और घमंड को चूर करके *लीला* से ही धनुष तोड़ दिया, जैसे मैंने कल ही कहा था (कि राम धनुष तोड़ेंगे; और सीता और राम का विवाह होगा)। जनक की, सीता की, हमारी, तेरी और तुलसीदास की सब की अभिलाषा पूरी हो गई। अतः हमें कौशल्या की कोख पर प्रसन्न होकर अपने शरीर को निछावर कर देना चाहिए और राजा दशरथ की बलैया लेनी चाहिए।

दूध दधि रोचना कनकथार भरि-भरि,
आरती सँवारि बर नारि चलीं गावतीं।
लीन्हें जयमाल कर-कंज सोहैं जानकी के,
'पहिराओ राघोजू को' सखियाँ सिखावतीं।
'तुलसी' मुदित-मन जनक नगर-जन,
झाँकतीं झरोखे लागीं सोभा रानी पावतीं।
मनहुँ चकोरी चारु बैठीं निज निज नीड़,
चंद की किरन पीवैं पलकैं न लावतीं ॥१३॥

टिप्पणी—**झरोखे**=खिड़की में से, गवाक्ष में से। **चारु**=सुन्दर। **नीड़**=घोसला। **पलकैं न लावतीं**=पलक नहीं लगातीं, एकटक देखती हैं। **अलंकार**—चौथे पद में उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा।

भावार्थ—सुन्दरी सौभाग्यवती स्त्रियाँ सोने के थालों में दूध दही औ

रोचन (हरदी) भर-भर कर आरती सजाकर मंगल गाती हुई मंडप को चलीं। जयमाल लिए हुए श्री सीताजी के करकमल शोभा पा रहे थे। सखियाँ सीताजी को सिखाने लगीं कि रामचन्द्रजी को माला पहनाओ। तुलसीदास कहते हैं कि उस समय जनकपुरवासी सब प्रसन्न चित्त थे। (उस समय की शोभा देखने के लिए झरोखों से लगकर झाँकती हुई सुनयना आदि रानियाँ ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानों सुन्दर चकोरियाँ अपने-अपने घोंसलों में बैठी हुई बिना पलक लगाए (एकटक श्रीरामचन्द्रजी के मुखरूपी) चन्द्रमा की किरणों को पी रही हों। भाव यह कि रामचन्द्रजी के मुख की शोभा निहार रही थीं।

नगर निसान बर बाजैं, ब्योम दुंदुभी,
बिमान चढ़ि गान कै कै सुरनारि नाचहीं।
जय जय तिहूँ पुर, जयमाल राम-उर,
बरषैं सुमन सुर, रूरे रूप राचहीं।
जनक को पन जयो, सबको भावतो भयो,
'तुलसी' मुदित रोम-रोम मोद माचहीं।
साँवरो किसोर, गोरी सोभा पर तृन तोरी,
'जोरी जियौ जुग-जुग' सखीजन जाँचहीं॥१४॥

टिप्पणी—**निसान**=(निशान) बाजे। **ब्योम**=आकाश। **दुंदुभी**=नगाड़ा। **गान कै कै**=गान कर-करके। **रूरे**=सुन्दर। **राचहीं**=अनुरक्त होते हैं, मन लगाते हैं। **पन**=प्रण। **जयो**=विजयी हुआ। **रोम-मोद माचहीं**=रोम-रोम में आनंद मच रहा है। **किसोर**=किशोर अवस्थावाले (रामचंद्र)। **गोरी**=गौरवर्ण (जानकी की शोभा)। **तृन तोरि**=(मोहावरा है, किसी की नजर न लगे इसलिए अपने वात्सल्यभाजन के लिए तिनका तोड़कर फेंका जाता है), निछावर होना। **जाँचहीं**=(सं० 'याचना से') माँगता है। **अलंकार**—आशिषालंकार (केशवदास के मत से)।

भावार्थ—जनकपुर में अनेक प्रकार के मांगलिक बाजे बजते हैं। आकाश में नगाड़े बजते हैं और आकाश-यानों में चढ़कर देवताओं की स्त्रियाँ (अप्सराएँ) गा-गाकर नाचती हैं। सीताजी ने रामचंद्रजी के गले में जयमाल डाली, यह देखकर तीनों लोकों में जयजयकार हो रहा है। रामचद्रजी के सुदर रूप पर अनुरक्त होकर देवगण फूलों की वर्षा करते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जनक की प्रतिज्ञा विजयी (पूरी) हुई और सबकी मन-चाही बात (सीता-राम का विवाह) हुआ। इसमें सब लोग प्रसन्न हैं। उनके रोम-रोम में आनन्द समा रहा है। सीताजी की सखियाँ साँवले और किशोर अवस्था वाले रामचन्द्र और गौर

वर्णा सीताजी की सुंदर शोभा पर अरिष्ट-निवारण के हेतु (इन पर किसी की नजर न लगे) निछावर होकर अपने इष्ट देवों से यह प्रार्थना करती हैं कि यह (सीता-राम) की जोड़ी युग-युग (चिरकाल तक) जिए।

भले भूप कहत भले भदेस भूपति सों,
'लोक लखि बोलिए, पुनीति रीतिमारखी'।
जगदंबा जानकी, जगतपितु रामचंद्र,
जानि, जिय जोवो, जौ न लागै मुँह कारखी।
देखे हैं अनेक ब्याह, सुने हैं पुरान-बेद
बूझे हैं सुजान-साधु नर-नारि पारखी।
ऐसे सम समधी समाज न बिराजमान,
राम-से न बर, दुलही न सिय सारखी ॥१५॥

टिप्पणी—कहत भले = अच्छे वचन कहते हैं। **भदेस** = बुरे, दुष्ट। **लोक लखि** = संसार की रीति विचार कर। **रीतिमारखी** = (रीतिम् + आरखी), आर्षी अर्थात् ऋषिप्रोक्त रीति, भलेमानसों की तरह। **जोवो** = देखो। **जौ** = जिससे। **मुँह में कारिख लगना** = (मुहावरा) कलंकित होना। **पारखी** = परीक्षक जानकर। **समधी (संबंधी)** = पति-पत्नी के श्वशुर। **अलंकार**—धर्म वाचक-उपमानलुप्तोपमालंकार।

भावार्थ—सज्जन राजा दुष्ट राजाओं से ये अच्छे वचन कहते हैं—"संसार की और ऋषियों से कही गई प्राचीन पवित्र रीति को विचार कर बोलना उचित है। सीताजी को ससार की माता और रामचंद्रजी को संसार का पिता जानकर हृदय में पवित्र भाव से देखो, जिसमें तुम लोगों को (पाप-दृष्टि से देखने के कारण) कलंकित न होना पड़े। हमने अनेक ब्याह देखे हैं और अनेक विवाहों का वर्णन वेद-पुराणों में सुना है और ज्ञानवान् साधुओं तथा जानकार नर-नारियों से भी पूछा है। यही ज्ञात होता है कि किसी भी विवाहोत्सव में ऐसे रूप-गुण, शौर्यादि में समान दशरथ और जनक के समान समधी, रामचंद्रजी के समान दूल्हा और सीताजी के सदृश दुलहिन विराजमान नहीं हुए।"

बानी, बिधि, गौरी, हर, सेसहू, गनेस कही,
सही भरी लोमस भुसुंडि बहु-बारिखो।
चारिदस भुवन निहारि नर नारि सब,
नारद को परदा न नारद सो पारिखो।
तिन कही जग में जगमगति जोरी एक,
दूजो को कहैया औ सुनैया चख चारिखो।

रमा, रमारमन, सुजान हनुमान कही,
'सिय-सी न तीय, न पुरुष राम सारिखो' ॥16॥

टिप्पणी—बानी = (सं० वाणी) सरस्वती। बिधि = ब्रह्मा। सही भरी = (मुहावरा) समर्थन किया। बहु-बारिखो = बहुत अवस्थावाले, वृद्ध अतएव सम्माननीय। पारिखो = परीक्षक, जाननेवाले, भले-बुरे को पहचाननेवाले। तिन = नारद ने। दूजो को कहैया औ सुनैया = दूसरी जोड़ी को कहने और सुनने वाला। चख चारिखो = चख चारि को, चार आँखवाला अधिक विचारवान् (तुकांत के लिए 'को' को 'खो' कर दिया है)।

भावार्थ—सरस्वती, ब्रह्मा, पार्वती, शिव, शेषनाग तथा गणेशजी कहते हैं कि (यश, प्रताप, कीर्ति, गुण, रूप आदि में) सीताराम के समान कोई नहीं है। चिरवयस्क अतएव अनुभवी लोमश मुनि और कागभुशुण्डि भी इस बात का समर्थन करते हैं। नारद मुनि को न किसी स्थान पर जाने की रुकावट है, न कोई नारद के समान सद्-असद् की जाँच कर सकता है। उन्होंने चौदहों भुवनों के सब स्त्री-पुरुषों को अच्छे प्रकार देखकर कहा है कि संसार में एकमात्र श्री सीता-रामचन्द्रजी की जोड़ी प्रकाशमान है। दूसरी जोड़ी को श्रेष्ठ कहने और सुनने वाला ऐसा अधिक विचारवान् कौन है? अर्थात् कोई नहीं। लक्ष्मीजी, विष्णुजी और चतुर हनुमानजी ने भी कहा है कि न सीता के समान स्त्री है न राम के समान पुरुष।

मत्तगयंद सवैया—7 भगण + अंत में दो गुरु

दूलह श्रीरघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मंदिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं।
राम को रूप निहारति जानकि कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं॥17॥

टिप्पणी—जुवा जुरि = जुआ खेलते समय। (विवाह की सब विधि पूर्ण होने पर कन्यापक्ष की स्त्रियाँ, सहेलियाँ वर-कन्या को कोहबर में ले जाकर लहकौर (लघुकवर खिलाने के बाद दोनों से जुआ खेलाती हैं)।

भावार्थ—सब सुन्दरी सौभाग्यवती स्त्रियाँ एकत्र होकर मंगलाचार गाती हुई दूलह श्री रामचन्द्रजी तथा दुलहिन श्री सीताजी को सजाकर सुन्दर मन्दिर में ले गई। लहकौर खिलाने के बाद जुआ (द्यूतक्रीड़ा) आरंभ हुआ। उस समय ब्राह्मण वेदध्वनि करने लगे। उस समय सीताजी कंकण के नग में श्री रामचन्द्रजी की परछाहीं देखने लगीं। इससे (पाँसा फेंकने की सुध) भूल

गई। हाथ हटाते ही कंकण के नग में स्थित रामचन्द्रजी के रूप का प्रतिबिंब नहीं देख सकूँगी, इस भय से हाथ टेके रह गईं और क्षण भर भी हाथ को नहीं हटाया (टकटकी लगाए उसी प्रतिबिंब को देखती रही)।

मनहरण कवित्त—१६ + १५ वर्ण, अंत में गुरु

भूपमंडली प्रचंड चंडीस-कोदंड खंड्यो,
चंड बाहुदंड जाको ताहि सो कहतु हौं।
कठिन कुठार-धार धारिबे की धीरताहि,
बीरता बिदित ताको देखिये चहतु हौं।
'तुलसी' समाज-राज तजि सो बिराजै आजु,
गाज्यो मृगराज गजराज ज्यों गहतु हौं।
छोनी में न छाँड्यो छप्यो छोनिप को छोना छोटो,
छोनिप-छपन बाँको बिरुद बहतु हौं॥१८॥

टिप्पणी—चंडीस-कोदंड = शिव धनुष। **चंड** = बलशाली। **धारिबे की** = सहने योग्य। (अन्वय) = राज-समाज तजि। **बिराजै** = विराजमान हो, अलग हो जाय। **गाज्यो** = गरजकर। **मृगराज** = सिंह। **छप्यो** = छिपा हुआ। **छोनिप** = छोणिप) राजा। **छौना** = छोटा बच्चा। **छोनिप-छपन** = (क्षोणिप-क्षपण) क्षत्रिय-संहारक। **बहतु हौं** = धारण करता हूँ। **अलंकार**—वृत्त्यनुप्रास, परुषा वृत्ति। रौद्र रस।

भावार्थ—धनुष-भंग का हाल सुनकर उसी समय परशुरामजी आ पहुँचे और बोले—"इस राजसमूह में जिसने शिवजी का कठिन धनुष तोड़ दिया है और जिसकी ऐसी बलशाली भुजाएँ हैं उसी से मैं कहता हूँ कि मैं उसकी धनुष तोड़ने के कारण प्रकट हुई वीरता और मेरे कठिन कुल्हाड़े की पैनी धार को सहने की धीरता को देखना चाहता हूँ। वह राजसमाज को छोड़ अलग आ विराजे (मुझको अपनी वीरता और धीरता दिखलावे)। जैसे सिंह गर्जन कर हाथी को पकड़ लेता है वैसे ही मैं अभी उसको पछाड़े देता हूँ। क्योंकि मैं ऐसा हूँ कि मैंने पृथ्वी पर छिपे हुए क्षत्रिय के छोटे बालक को भी नहीं छोड़ा। इसी से मैं 'क्षत्रिय-संहारक' ऐसे बाँके यश को धारण किए संसार में विचरता हूँ।

निपट निदरि बोले बचन कुठारपानि,
मानि-त्रास औनिपन मानों मौनता गही।
रोषे माषे लखन अकनि अनखौहीं बातें,
'तुलसी' बिनीत बानी बिहँसि ऐसी कही।
'सुजस तिहारो भरो भुवननि, भृगुनाथ'!
प्रगट प्रताप आपु कह्यौ सो सबै सही।

टूट्यौ सो न जुरैगो सरासन महेसजू को,
रावरी पिनाक में सरीकता कहा रही ?' ॥१९॥

टिप्पणी—**निपट** = बिलकुल । **कुठारपानि** = परशुराम । **औनिपन** = (सं० अवनिप) राजाओं ने । **औनिपन मानों मौनता गही** = राजाओं को मानो मौनता ने पकड़ लिया अर्थात् राजा लोग डर के मारे कुछ भी उत्तर न दे सके । **माखे** = बुरा मानकर । **अकनि** = (सं० आकर्ण्य) सुनकर । **अनखौहीं** = खिझानेवाली, अपमानजनक । **सरासन** = शरासन, धनुष । **रावरी** = आपकी । **सरीकता** = (फा० 'शरीक' में हिंदी 'त' प्रत्यय जोड़कर तुलसीदासजी ने इसको अपना लिया है । इस चतुरता से यह शब्द गढ़ा गया है कि कानों में खटकने के बदले और भी मधुर प्रतीत होता है) साझा । **कहा** = क्या । **अलंकार**—अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा ।

भावार्थ—परशुरामजी इस प्रकार अत्यंत निरादर के वचन बोले । उनके वचन सुनकर सब राजा ऐसे भयभीत हो गए मानों उनको मौनता ने ग्रस लिया अर्थात् राजा लोग डर के मारे बोल न सके ! उनकी (परशुरामजी की) अपमानजनक बातें सुनकर लक्ष्मण क्रुद्ध हुए । परन्तु मुसकुरा कर नम्र वाणी से ऐसा कहा—"हे परशुरामजी, आप का सुयश (चौदहों) भुवनों में भरा हुआ है । आप का प्रताप भी सब पर प्रकट है । जो आप कहते हैं सो सब सत्य है । परन्तु शिवजी का टूटा हुआ धनुष अब नहीं जुड़ सकता । (आप को शिवधनुष के टूटने से क्रोध हुआ, अतः) क्या इस धनुष में आप का (शिवजी के साथ) साझा था ?"

मत्तगयंद सवैया—सात भगण + दो गुरु

गर्भ के अर्भक काटन को पटु-धार कुठार कराल सौं जाको ।
सोई हौं बूझत राज-सभा 'धनु को दल्यौ ?' हौं दलिहौं बल ताको ।
लघु आनन उत्तर देत बड़ो, लरिहै, मरिहै, करिहै कछु साको ।
गोरो गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको ॥२०॥

टिप्पणी—**अर्भक** = गर्भ में का बच्चा । **पटधार** = पटु अर्थात् चतुर है धार जिसकी ऐसा (कुठार का विशेषण, बहुव्रीहि समास) । **सोई हौं** = (सं० सोऽहं) वही मैं; यह शब्द उनका अभिमान सूचित करता है । **साका करना** = (मुहावरा) अद्भुत कर्म करके स्थायी कीर्ति प्राप्त करना । **ढोटो** = बालक ।

भावार्थ—जिसके पास गर्भ के भी बच्चों को काट गिराने में कुशल धारवाला भयंकर कुल्हाड़ा है वही मैं (परशुराम) राजसमूह से पूछता हूँ कि धनुष किसने तोड़ा ? मैं उसका बल चूर करूँगा । (अब कौशिक से कहते हैं) हे कौशिक ! यह छोटे मुँह बड़ी बात कहनेवाला बालक मुझसे लड़कर मरेगा

अथवा मुझे जीतकर कीर्ति-स्थापन करेगा, अतः हे विश्वामित्र ! बतलाओ तो यह गौरवर्ण घमंड से भरा हुआ छोटा बालक किसका है ? (अर्थात् यह कोई क्षत्रियकुमार है या ऋषिकुमार) ।

मनहरण छंद

मख राखिबे के काज राजा मेरे संग दए,
जीते जातुधान, जे जितैया बिबुधेस के ।
गौतम की तीय तारी, मेटे अघ भूरि भारी,
लोचन अतिथि भये जनक जनेस के ।
चंड बाहुदंड-बल चंडीस-कोदंड खंड्यो,
ब्याही जानकी, जीते नरेस देस-देस के ।
साँवरे-गोरे सरीर, धीर महाबीर दोऊ,
नाम राम-लखन, कुमार कौसलेस के ।।२१।।

टिप्पणी—मख=यज्ञ । **बिबुधेस**=(विबुधेश) इंद्र । **अघ**=पाप । **लोचन अतिथि भए**=दर्शन दिए हैं (आए हैं) ।

भावार्थ—(विश्वामित्रजी उत्तर देते है) ये साँवले और गोरे शरीर वाले धैर्यवान् और महापराक्रमी राम और लक्ष्मण नाम से प्रसिद्ध हैं और अयोध्याधिपति राजा दशरथ के लड़के हैं । इन्हें राजा दशरथ ने मेरे यज्ञ की रक्षा के लिए मेरे साथ कर दिया था । इन्होंने ऐसे पराक्रमी राक्षसों को जीता है जिन्होंने इन्द्र को भी जीत लिया था । बहुत से बड़े-बड़े पापों को मेटकर गौतम की पत्नी अहल्या को तार दिया । इसके बाद राजा जनक को दर्शन दिए । यहाँ अपना विशाल भुजाओं के बल से शिवजी का धनुष तोड़ दिया, और देश-देश के राजाओं को जीतकर सीता से बिवाह किया । (भाव यह है कि परशुधर ! तुम समझ लो कि मखरक्षण, अहल्यातारण, जनक-समान विदेह को दर्शन देकर उनका प्रिय बनना साधारण क्षत्रियकुमार का काम नहीं है । इन्हें अवतारी समझो और शांत हो जाओ) ।

मत्तगयंद सवैया

काल कराल नृपालन के धनुभंग सुने फरसा लिए धाए ।
लक्खन-राम बिलोकि सप्रेम, महारिसि तें फिरि आँख दिखाए ।
धीर सिरोमनि, बीर बड़े, बिनयी, बिजयी, रघुनाथ सुहाये ।
लायक हे भृगुनायक सो धनु-सायक सौंपि सुभाय सिधाए ।।२२।।

टिप्पणी—लायक हे=लायक ये सामर्थ्यवान् ये ।

भावार्थ—धनुषभंग सुनकर राजाओं के भयंकर काल परशुरामजी फरसा लेकर दौड़े आए। आते ही राम-लक्ष्मण की मनोहर छबि देखकर उनको स्नेह हो आया। पर शीघ्र ही (क्रोधी स्वभाव होने के कारण) क्रुद्ध होकर लाल आँखें दिखाने लगे। परन्तु फिर धैर्यवानों में अग्रणी, बड़े पराक्रमी, विनयशील और सब पर विजय पानेवाले रामचन्द्रजी उनको अच्छे लगे। परशुरामजी बड़े सामर्थ्यवान् होकर भी राम को (परब्रह्म) समझकर सहज ही में अपने धनुष-बाण सौंपकर तप करने को वन में चले गए।

अयोध्याकांड

कीर के कागर ज्यों नृपचीर बिभूषन, उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगबास के रूख ज्यों पंथ के साथी ज्यों लोग लुगाई।
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया मनो धर्म-क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई॥१॥

नोट—इस छन्द में प्रथम चरण से 'तजि' शब्द का अध्याहार करके यों अन्वय करना होगा—"राम के अंगनि नृपचीर विभूषन तजि यों उपमा पाई ज्यों कीर के अंगनि कागर तजि।"

टिप्पणी—**कीर** = तोता। **कीर के** = सुग्गे के अंग। **कार** = (अ० कागज) यहाँ 'पंख' अर्थ लेना चाहिये। **उप्पम** = उपमा। **मगबास** = (मार्गवास) मार्ग का निवासस्थान। **औध** = अवध। **रूख** = वृक्ष। **पुनीत** = पवित्र, पतिव्रता। **राजिवलोचन** = कमल के समान नेत्रवाले। **बटाऊ** = बटोही। **नाई** = (न्याय) तरह। **अलंकार**—उपमा, उत्प्रेक्षा।

भावार्थ—(रामचन्द्रजी की त्यागशीलता का वर्णन है) श्रीरामचन्द्रजी ने (वनवास को जाते समय) बल्कल-वस्त्र धारण करके अति सुन्दर राजसी वस्त्रों और आभूषणों को इस प्रकार छोड़ दिया जैसे बसंत ऋतु में सुग्गे अपने पंख खुशी से गिराकर तनिक भी दुखी नहीं होते। (बसंत में सुग्गे अपने पुराने पंख गिराकर नवीन पंख धारण करते हैं।) और उन्होंने अयोध्या को ऐसे छोड़ दिया जैसे कोई मार्ग के निवास के वृक्ष को खेदरहित होकर छोड़ देता है। और मार्ग के संगी को छोड़ने में जैसे कुछ शोक नहीं होता, वैसे ही बिना किसी प्रकार के दुःख के उन्होंने अयोध्या के स्त्री-पुरुषों को त्याग दिया। साथ में सुयोग्य भाई तथा पतिव्रता सीताजी ऐसी शोभा दे रही थीं मानो धर्म

और क्रिया ही सुन्दर देह धारण करके शोभा पा रहे हो। इस प्रकार कमल-नयन रामचन्द्रजी अपने पैत्रिक राज्य को छोड़कर बटोही की तरह वन को चले। (भाव यह है कि राम को राजसी वस्त्राभूषण, अयोध्या, अयोध्या-निवासीगण तथा पैत्रिक राज्य छोड़ते तनक भी शोक का अनुभव नहीं हुआ)

कागर-कीर ज्यों भूषन चीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यों काई।
मातु-पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई।
संग सुभामिनि भाई भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई ॥२॥

टिप्पणी—**कागर-कीर-ज्यों** = सुग्गे के पंखों के समान सुन्दर। **लस्यो** = सुशोभित हुआ। **अन्वय** = कागर-कीर ज्यों भूषन-चीर तजि सरीर (यों) लस्यो ज्यों काई तजि नीर लसै। **सनेह** = प्रेमी। **सगाई** = संबंध। **दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई** = मानों दो एक दिन (थोड़े समय तक) अयोध्या में पहुनाई करते थे। अलंकार—उपमा और उत्प्रेक्षा।

भावार्थ—अति सुन्दर राजसी वस्त्राभूषणों को छोड़कर राम का शरीर, ऐसा सुशोभित हुआ, जैसे काई को छोड़कर जल शोभा देता है। माता-पिता प्रियजन और सब स्नेह के सम्बन्धियों का (उनका मोह छोड़कर) सहज स्वभाव से सम्मान करके और पतिव्रता स्त्री तथा भले भाई लक्ष्मण को साथ लेकर, मानो कुछ काल तक अयोध्या में आतिथ्य पाकर, कमलनेत्र रामचन्द्रजी अपने पैत्रिक राज्य को छोड़कर बटोही की भाँति वन को चले गए।

सिथिल-सनेह कहै कौसिला सुमित्राजू सों
'मैं न लखी सौति, सखी! भगिनी ज्यों सेई है'।
कहै मोहि मैया, कहौं, 'मैं न मैया भरत की,
बलैया लैहौं, भैया तेरी मैया कैकेई है'।
'तुलसी' सरल भाय रघुराय माय मानी,
काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है।
वाम विधि मेरो सुख सिरिस सुमन सम,
ताको छल-छुरी कोह कुलिस लै टेई है ॥३॥

टिप्पणी—**सौति** = सपत्नी। **सेई है** = पालन किया है। **मतेई** = बिमाता, सौतेली माता। **वाम विधि** = कुटिल विधाता, दुर्दैव। **सिरिस सुमन सम** = अत्यन्त कोमल, नाजुक। **टेई है** = पैनाई है, तीक्ष्ण की है। अलंकार—उपमा और रूपक।

भावार्थ—रामचन्द्रजी के स्नेह से शिथिल होकर कौशल्या सुमित्राजी से कहती हैं कि हे सखि मैंने कैकेयी को कभी सपत्नी की तरह नहीं देखा अर्थात्

कैकेयी से सौत का सा व्यवहार नहीं रखा, बल्कि भगिनी की तरह उसका पालन किया है। जब रामचन्द्रजी मुझे 'मैया' कहकर पुकारते थे तब मैं कहती थी कि हे मैया, तेरी बलैया लूँ, तेरी माता मैं नहीं हूँ, मै तो भरत की माता हूँ और तेरी माता कैकेयी हैं। मेरे ऐसे वचन सुनकर सरल स्वभाववाले रामचन्द्रजी कैकेयी को ही माता मानते थे, और कर्म-मन-बचन से भी उसको विमाता की तरह नहीं जाना। परन्तु दुर्दैव ने सिरिस के फूल के समान कोमल मेरे सुख को (काटने के लिए) कैकेयी की छल रूपी छुरी को क्रोधरूपी वज्र पर तीक्ष्ण किया।

'कीजै कहा, जीजी जू!' सुमित्रा परि पायँ कहैं,
'तुलसी' सहावै बिधि सोई सहियतु है।
रावरो सुभाव रामजन्म ही तें जानियतु,
भरत की मातु को कि ऐसो चहियतु है।
जाई राजघर, ब्याहि आई राजघर माहँ,
राज-पूत पाए हूँ न सुख लहियतु है।
देह सुधागेह ताहि मृगहूँ मलीन कियो,
ताहू पर बाहु बिनु राहु गहियतु है॥४॥

टिप्पणी—जीजी = दीदी, बड़ी बहिन। **अन्वय** = जोई विधि सहावै सोई सहियतु है। **कि** = क्या। **जाई** = पैदा हुई। **सुधागेह** = चन्द्रमा। **अलंकार—** दृष्टान्त।

भावार्थ—सुमित्राजी कौशल्या के पैर छूकर कहती हैं कि हे बहिन, क्या किया जाय? जो भाग्य में होता है वह सहना ही पड़ता है। रामचन्द्रजी ऐसे सुशील पुत्र की जननी होना यही तुम्हारी साधुता को प्रमाणित करता है। (अगर तुम्हारा स्वभाव अच्छा न होता तो रामचन्द्रजी तुम्हारे पुत्र न होते। भगवान् का तुम्हारे गर्भ से जन्म लेना ही तुम्हारी सुशीलता आदि को सिद्ध करता है।) परन्तु क्या भरत की माता को ऐसा करना (राम को वनवास देना) उचित था? (अर्थात् उचित न था कि सवतिया-डाह से तुमको दुखी करतीं।) तुम राजकुल में उत्पन्न हुई, राजवंश में ही तुम्हारा विवाह हुआ और राज्याधिकारी (सर्वश्रेष्ठ) पुत्र भी पाया; पर इतने पर भी तुम्हे सुख नहीं मिलता, यह बात ठीक वैसी ही है जैसी चन्द्रमा की, अर्थात् चन्द्रमा का शरीर सुधा-भवन होकर भी मृग-द्वारा लांछित हुआ और कलंकित होने पर भी उसे बिना भुजा के राहु द्वारा ग्रसित होना पड़ता है (अर्थात् एक ही दुःख

से छुटकारा न हुआ वरन् और भी दुःख सहना पड़ता है तथा आपके पुत्र का केवल राज्यपद ही नहीं हरण किया गया, वरन् बनवास भी दिया गया)।

नोट—इस छन्द का शब्द-संगठन कुछ ऐसा विचित्र-सा जान पड़ता है कि अर्थ करने में कठिनाई भासती है। इसके कई एक अर्थ हो सकते हैं। परन्तु यदि इस छन्द में दृष्टांत अलंकार माना जाय तो यही अर्थ होगा जो हमने किया है। हमें तो प्रसंगानुकूल यही अर्थ ठीक जँचता है।

उपजाति सवैया

नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला कन होत अजाखुर बारिधि बाढ़े।
'तुलसी' जेहि के पद-पंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े ॥५॥

टिप्पणी—नाम = राम नाम। खल कोटि = करोड़ों पापी। बूड़त = डूबत ('डूब' का वर्ण-विपर्यय से 'बूड़')। काढ़े = निकाले। तटिनी = नदी। स्वै = (सोई) उसी। करारे = कगार (ऊँचा तट)।

भावार्थ—जिनके नाम ने अजामिल के समान करोड़ों पापियों को संसार रूपी अपार नदी में डूबने से निकाल लिया, अर्थात् जन्म-मरणादि के बंधन से छुटा दिया, जिन (राम) के स्मरण से सुमेरु पर्वत भी पत्थर के कण के समान और बढ़ा हुआ समुद्र भी बकरी के खुर के समान हो जाता है, जिनके चरणकमलों से गंगा नदी प्रकट हुई, जो बड़े-बड़े पापों को दूर कर देती हैं, वही स्वामी श्रीरामचन्द्रजी उन्हीं गंगाजी को पार करने के लिए (गंगा के) कगार पर खड़े होकर नाव माँगते हैं (कैसे आश्चर्य की बात है!)।

एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह दिखाइहौं जू।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू।
'तुलसी' अवलंब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू।
बरु मारिए मोहि, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ॥६॥

टिप्पणी—थोरिक = थोड़ी ही। अहै = (अस्ति) है। लौं = तक। परसे = (स्पर्श) छूने से। तरनी = (तरणी) नाव। घरनी = (गृहिणी) पत्नी। क्यों = कैसे। लरिका = बाल-बच्चे। बरु = भले ही।

भावार्थ—(जब रामचन्द्रजी ने नाव माँगी तब केवट कहता है कि) इस घाट से कुछ दूर पर गंगाजी उथली हैं अतः वहाँ जल कमर तक है। मैं आप को

उसकी गहराई दिखला देता हूँ (आप स्वयं पार हो जाइए)। आपके पैरों की धूलि के स्पर्श से मेरी नाव भी तर जायगी अर्थात् अहल्या की तरह स्त्री होकर उड़ जायगी। जब मेरी घरवाली पूछेगी कि नाव कहाँ गई तो मैं उसे क्या कहकर समझाऊँगा। दूसरे मेरी जीविका का और कुछ भी सहारा नहीं। मैं अपने बाल-बच्चों को किस प्रकार पालूँगा? आप मुझे भले ही मार दीजिए, पर मैं बिना पैर धोए हुए अपनी नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा।

रावरे दोष न पायँन को, पग धूरि को भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन-बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है।
पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है?
'तुलसी' सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है ॥७॥

टिप्पणी—रावरे = आपके। **बन** = जल। **बन-बाहन** = नाव। **जल खाइ रहा है** = जल में भींगने से और भी कोमल हो गई है। **पावन** = पवित्र। **पखारि कै** = (प्रक्षालन कर) धोकर। **बैन** = वचन (प्रा० बयन)। **हँसे हहा है** = ठठाकर हँस पड़े।

भावार्थ—केवट कहता है कि हे रामचन्द्रजी यह आपके पैरों का दोष नहीं है (जो उनके स्पर्श से पत्थर भी स्त्री हो जाती है) पर यह आपके पैरों की धूल का बड़ा भारी प्रभाव है (जब पत्थर भी आपकी पदधूलि के स्पर्श से तर गया तब) पत्थर से तो काठ की नाव कोमल है, जिस पर जल में भींगने से और भी कोमल हो गई है। इसलिए आपके पवित्र पैरों को धोकर नाव पर चढाऊँगा। इसमें आपकी क्या आज्ञा है? केवट के चतुरता के वचन सुनकर रामचन्द्रजी सीताजी की ओर देखकर ठठाकर हँसने लगे।

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे,
केवट की जाति कछू बेद न पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याही लागि, राजाजू!
हौं दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं?
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वै कै बात न बढ़ाइहौं।
'तुलसी' के ईस राम रावरो सौं, साँची कहौं,
बिना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइहौं ॥८॥

टिप्पणी—पात = पत्तल। **सहरी** = (स० शफरी) मछली की एक जाति **बारे-बारे** = छोटे-छोटे। **बित्तहीन** = निर्धन। **घरनी** = (गृहणी) पत्नी। **सौं** = शपथ। **बात न बढ़ाइहौं**—निरर्थक बात नहीं करूँगा

भावार्थ—पत्तल भर मछली मारता हूँ, यही मेरी आजीविका है। मेरे सब पुत्र अभी छोटी अवस्था के हैं, अर्थात् जीविका पैदा करने योग्य नहीं हैं। मैं केवट की जाति अर्थात् नीच जाति का हूँ। अतः मैं उनको वेद भी नहीं पढाऊँगा, जिससे वे जीविका प्राप्त कर सकें। हे राजन्! मेरा तो सब परिवार इसी नाव पर निर्भर है। मैं दीन तथा निर्धन हूँ, इससे दूसरी नाव कैसे बनाऊँगा? मैं निषाद (नीच जाति) हूँ, स्वामी से व्यर्थ तकरार नहीं करूँगा। हे रामचन्द्रजी, मुझे आपकी शपथ है, मैं सच कहता हूँ कि बिना आपके पैर धोये नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा, नहीं तो मेरी नाव भी गौतम की पत्नी अहल्या की भाँति आपकी पदधूलि से उड़ जायगी।

जिनको पुनीत बारि, धारे सिर पै पुरारि,
त्रिपथगामिनी जसु बेद कहै गाइ कै।
जिनको जोगींद्र मुनिवृन्द देव देह भरि,
करत बिराग जप-जोग मन लाइ कै।
'तुलसी' जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो-सो लिवाइ कै।
तेई पायँ पाइ कै चढ़ाइ नाव धोए बिनु,
ख्वैहौं न पठावनी कै ह्वैहौं न हँसाइ कै? ॥९॥

टिप्पणी—**पुनीत** = पवित्र। **बारि** = जल। **पुरारि** = त्रिपुर नामक दैत्य के शत्रु शिवजी। **त्रिपथगामिनी** = (तीन पथ अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल में बहनेवाली) गंगाजी। **देह भरि** = जीवन भर। **गौनो सो** = द्विरागमन की बधू की तरह, अर्थात् नवीन और पवित्र मानकर। **पठावनी कै** = पार उतारकर।

भावार्थ—जिन चरणों के पवित्र जल को अर्थात् त्रिपथगामिनी गंगाजी को, जिसका यश वेद गा-गाकर कहते हैं, शिवजी अपने सिर पर धारण करते हैं, जिन चरणों को पाने के लिए सनकादि श्रेष्ठ योगीजन, मुनिगण और देवता जन्म भर मन लगाकर विशेष प्रेम से जप और योग करते हैं, जिन चरणों की धूलि के स्पर्श से अहल्या तर गई, और गौतम मुनि उसको नवबधू सी पवित्र मानकर घर को ले चले, उन्हीं चरणों को पाकर और बिना उनको धोए नाव में चढ़ाकर मैं अपनी मजदूरी नहीं खोऊँगा। और (इस तरह अपनी ही भूल से मजदूरी खोकर) अपनी हँसी नहीं

प्रभुरुख पाइ कै बोलाइ बाल घरनिहिं,
बंदि कै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि-घेरि।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को,
धोइ पायँ पीयत पुनीत बारि फेरि-फेरि।
'तुलसी' सराहैं, ताको भाग सानुराग सुर,
बरषै सुमन जय जय कहैं टेरि-टेरि।
बिबुध-सनेह सानी बानी असयानी सुनि,
हँसे राघौ जानकी लखन तन हेरि-हेरि ॥१०॥

टिप्पणी—**प्रभुरुख** = रामचन्द्रजी की स्वीकृति। **बाल** = बालक। **घरनी** = (गृहणी) स्त्री। **कठौता** = काष्ठ-पात्र। **आनि** = (आनीय) लाकर। **सानुराग** = सप्रेम। **टेरि-टेरि** = उच्चस्वर से। **सनेह-सानी** = स्नेह से युक्त। **असयानी** = अचतुर, छलरहित। **राघौ** = (सं०) राघव। **तन** = तरफ।

भावार्थ—श्रीरामचन्द्रजी की इच्छा जानकर केवट ने अपनी स्त्री और बालकों को बुलाया। वे सब प्रणाम करके चारों ओर से घेर-घेरकर बैठ गए। केवट छोटे से काठ के पात्र को गंगाजल से भर लाया और रामचन्द्रजी के पैर धोकर चरणों के पवित्र जल को बार-बार पीने लगा। तुलसीदास कहते हैं कि देवता सप्रेम उसके भाव की सराहना करने लगे और उच्च स्वर से जय-जय शब्द कर फूल बरसाने लगे। केवट परिवार की विविध प्रकार की स्नेह-युक्त और छलहीन वाणी सुनकर रामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण की ओर देखकर हँसने लगे।

सवैया—दुर्मिल—आठ सगण

पुर तें निकसीं रघुबीर-बधू, धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै।
फिरि बूझति हैं 'चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै ?'
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै ॥११॥

टिप्पणी—**निकसीं** = निकलीं। **मग में डग द्वै दए** = थोड़ी दूर चलीं। **भरि भाल** = सारे ललाट पर। **जल की कनी** = पसीने की बूँदें। **कनी** = 'कण' से लघुवाचक। **मधुराधर** = कोमल अधर-पुट। **वै** = दोनों। **केतिक** = कितनी दूर। **कित ह्वै** = कहाँ पर। **आतुरता** = व्याकुलता, अधैर्य, घबराहट। **चारु** = सुंदर। **अँखियाँ जल च्वै चलीं** = आँखों से आँसू बह चले।

भावार्थ—सीताजी पहले-पहल ही नगर से बाहर इस प्रकार पैदल निकली थीं। (रामचंद्रजी के समान वीर पुरुष की पत्नी होने के गर्व से) कुछ दूर

तक धैर्य धारण करके चलीं। इतने ही परिश्रम से उनके सारे ललाट पर पसीने की बूंदें झलकने लगीं और अति कोमल दोनों अधर पुट सूख गए। अतः पूछने लगीं कि अब कितनी दूर और चलना है? पर्णकुटी कहाँ पर बनाओगे? सीता-जी की ऐसी व्याकुलता देखकर रामचंद्र की अतीव सुन्दर आँखों से आँसू टपकने लगे।

सवैया—उपजाति

जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ पिय, छाहँ घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े।
'तुलसी' रघुबीर प्रिया स्रम जानि कै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यौ, पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े ॥१२॥

टिप्पणी—**परिखौ**=बाट देखो। **घरीक**=घड़ी एक, कुछ देर तक। **पसेउ**=पसीना। **बयारि करना**=हवा करना, पंखा झलना। **भूभुरि**=गरम धूलि। **डाढ़े**=दग्ध, जले हुए। **नाह** (प्रा०)=(सं० नाथ) पति।

भावार्थ—सीताजी रामचन्द्रजी से कहती हैं कि लक्ष्मण जल लाने को गए हैं। अभी वे बालक ही हैं, अतः हे प्यारे, थोड़ी देर इस छाँह में खड़े होकर उनको परख लीजिए। आप भी थक गए हैं, इसलिए मैं आपके पसीने को पोंछकर आपको पंखा झल दूं और गर्म धूलि से जले हुए आपके पैरों को धो डालूं। तुलसीदास कहते हैं कि रामचंद्रजी इन वचनों से सीताजी को थकी हुई जानकर देर तक बैठकर काँटे निकालते रहे। सीताजी अपने ऊपर स्वामी (राम-चंद्रजी) का स्नेह जानकर प्रेम से पुलकायमान हो गई, और आँखों से प्रेमाश्रु बह चले।

ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहे, धनु काँधे धरे, कर सायक लै।
बिकटी भृकुटी बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छबि है।
'तुलसी' अस मूरति आनि हिए जड़ डारि धौं प्रान निछावरि कै।
स्रम-सीकर साँवरि देह लसै मनो रासि-महातम-तारक-मै ॥१३॥

टिप्पणी—**नौ द्रुम**=नवीन पेड़। **डार**=डाल, शाखा। **काँधे**=(सं० स्कंध) कंधे पर। **सायक**=बाण। **बिकटी**=टेढ़ी। **भृकुटी**=भौंहें। **बड़री**=बड़ी-बड़ी। **अनमोल**=शुद्ध रूप व्याकरण के अनुसार 'अमोल' होना चाहिए। **धौं**=(ध्रुव) निश्चय। **स्रम-सीकर**=(श्रम-शीकर) पसीने की बूंदें। **रासि**=राशि, ढेर। **अन्वय**—महातम रासि मनो तारक मैं। **तारक-मै**=तारकमय। **अलंकार**—**उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा (तीसरे चरण में)।**

भावार्थ—श्रीरामचन्द्रजी नए वृक्ष की शाखा थामे हुए (विश्रामार्थ) खड़े हैं। कंधे पर धनुष रखे हुए हैं। हाथ में बाण लिए हैं। उनकी भौंहें टेढ़ी और नेत्र बड़े-बड़े हैं। और कपोलों की शोभा तो अमूल्य (अनुपम) है। साँवले शरीर पर पसीने की बूंदें इस प्रकार सुन्दर लगती हैं जिस प्रकार बड़ी भारी घनी अँधेरी (भाद्रपद अमावस्या की) रात्रि तारों से परिपूर्ण होने के कारण सुन्दर लगती है। तुलसीदास कहते हैं (स्वयं, अपने प्रति) कि रे मूर्ख, रामचन्द्र जी की ऐसी मूर्ति को हृदय में धारण करके अपने प्राणों को निछावर कर दे।

जलज-नयन, अलजानन, जटा है सिर
जोबन-उमंग अंग उदित उदार हैं।
सांवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सी,
मुनिपट धरे, उर फूलनि के हार हैं।
करनि सरासन सिलीमुख, निषंग कटि,
अति ही अनूप काहू भूप के कुमार हैं।
'तुलसी' बिलोकि कै तिलोक के तिलक तीनि,
रहे नरनारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं ॥१४॥

टिप्पणी—जलज-नयन = कमल-नेत्र। अलजानन = कमल के समान मुखवाले। जोबन = यौवन। उदित = प्रकट, प्रकाशित। उदार = प्रशस्त, अति बड़े। भामिनी = मन को भाने वाली अर्थात् प्यारी (प्रेमसूचक विशेषण)। सरासन = (शरासन) धनुष। सिलीमुख = बाण। निषंग = तरकस। तिलोक = त्रिलोक। तिलक = श्रेष्ठतासूचक शब्द। चितेरे = चित्रित, चित्रलिखित तसवीरों की तरह। चित्रसार = चित्रशाला। अलंकार—'भामिनी दामिनी सी' 'धर्म-लुप्तोपमा'। अंतिम पाद में 'उदाहरणालंकार' है।

भावार्थ—(मार्ग के ग्रामों में रहने वाले परस्पर विचार करते हैं) इन लोगों की आँखें कमल के समान और मुख कमल के तुल्य है, सिर पर जटाएँ बँधी हैं, सब अंग प्रशस्त हैं। अंग-अंग से अतिशय यौवन की उमंग प्रकट होती है। साँवले (रामचन्द्रजी) तथा गोरे (लक्ष्मणजी) के मध्य में यह सुन्दर स्त्री (काले और सफेद बादलों के बीच) बिजली की तरह शोभित है। ये तीनों मुनि-वस्त्र अर्थात् वल्कल के वस्त्र धारण किए हैं। हृदय पर फूलों की माला पहने हैं, हाथों में धनुष-बाण लिए हैं और कमर में तरकस बाँधे हैं। इस वेष से ये लोग किसी राजा के अति सुन्दर राजकुमार जान पड़ते हैं। तुलसीदास

कहते हैं कि तीनों लोकों से श्रेष्ठ इन तीनों को देखकर स्त्री-पुरुष एक टक ऐसे स्थिर हो गए जैसे चित्रशाला के चित्र (हिलते नहीं)।

आगे सोहैं साँवरो कुँवर, गोरो पाछे पाछे,
आछे मुनि बेष धरे लाजत अनंग हैं।
बान बिसिषासन, बसन बन ही के कटि
कसे हैं बनाइ, नीके राजत निषंग हैं।
साथ निसिनाथमुखी पाथनाथ-नंदिनी सी,
'तुलसी' बिलोके चित लाइ लेत संग हैं।
आनँद उमंग मन, जोबन उमंग तन,
रूप की उमंग उमगत अंग अंग हैं॥१५॥

टिप्पणी—**अनंग** = कामदेव। **बिसिषासन** = (बिशिषासन) धनुष। **बनाइ** = खूब अच्छी तरह। **राजत** = शोभित होते हैं। **निशिनाथ** = (निशि-नाथ) चंद्रमा। **पाथ** = जल। **पाथनाथ** = समुद्र। **पाथनाथनंदिनी** = लक्ष्मीजी। **अलंकार**—उपमेयलुप्तोपमा (तीसरे चरण में)

भावार्थ—आगे-आगे श्यामवर्ण श्रीरामचंद्रजी और पीछे-पीछे गौरवर्ण लक्ष्मणजी शोभायमान हैं। सुंदर मुनिवेष अर्थात् बल्कल-वस्त्र धारण किए हुए होने पर भी कामदेव को लज्जित करते हैं। हाथों में धनुष-बाण हैं। कमर में बल्कलादि वस्त्र ही अच्छे प्रकार कसे हैं। सुन्दर तरकस भी सुशोभित हैं। साथ में चन्द्रमा के समान मुखवाली लक्ष्मीजी की भाँति एक सुन्दरी (सीताजी) है। तुलसीदास कहते हैं कि जिसकी ओर वे कृपादृष्टि करते हैं (अथवा जो सप्रेम उनकी ओर देखते हैं) उनके चित्त को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं क्योंकि उनके मन में प्रसन्नता का भाव झलकता है, शरीर में युवावस्था की उमंग वर्तमान है और उनके प्रत्येक अंग से सुन्दर रूप उमड़ रहा है।

सुन्दर बदन, सरसीरुह सुहाए नैन,
मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के।
अंसनि सरासन लसत, सुचि कर सर,
तून कटि, मुनिपट लूटक पटनि के।
नारि सुकुमारि संग, जाके अंग उबटि कै,
बिधि बिरचै बरूथ बिद्युत-छटनि के।
गोरे को बरन देखे सोनो न सलोनो लागै,
साँवरे बिलोके गर्ब घटत घटनि के॥१६॥

टिप्पणी—**सरसीरुह** = कमल। **नैन** = नयन। **मंजुल** = सुन्दर **प्रसून**

फूल। अंसनि = कंधों में (सं० अंस)। सुचि = (शुचि) पवित्र। तून = तूणीर, तरकस। लूटक पटनि के = वस्त्रों की शोभा को लूटने या हरनेवाले। उबटि कै = उबटन द्वारा मैल निकाल कर। बरूथ = समूह। बिद्युत-छटनि = (विद्युत + छटा = विद्युच्छटा) बिजली की छटाओं। बरन (वर्ण) = रंग। सोनो = सुवर्ण। सलोनो = (सलावण्य) सुन्दर, रोचक। घटनि के = श्याम सजल बादलों की घटाओं का। अलंकार—'नैन कमल' में वाचक-धर्म लुप्तोपमा, 'मुनिपट लूटक पटनि. . . घटनि के' में उपमान के निरादर से प्रतीप अलंकार है।

भावार्थ—दोनों भाइयों के मुख अति सुन्दर है। कमल के समान सुहावनी आँखें है, जटाओं के मुकुट के ऊपर सुन्दर फूल गूँथे हुए हैं। कंधों में धनुष, पवित्र हाथों में बाण और कमर में तरकस सुशोभित है और मुनिवस्त्र अर्थात् बल्कल आदि के वस्त्रों ने तो मानो पीतांबर आदि वस्त्रों की शोभा छीन ली है। (तात्पर्य यह कि मुनिवस्त्र राजसी वस्त्रों से भी सुन्दर प्रतीत होते हैं।) उनके साथ में कोमलांगी स्त्री (सीताजी) हैं जिनके अंगों का मैल निकालकर ब्रह्मा ने बिजली की छटाएँ बनाई हैं, तात्पर्य यह कि अतिशय सुन्दरी हैं। लक्ष्मण के गौरवर्ण को देखने से सोना भी अच्छा नहीं लगता और रामचन्द्रजी के श्याम रंग को देखकर काली घटाओं का भी अहंकार मिट जाता है।

बल्कल बसन, धनुबान पानि, तून कटि,
रूप के निधान, घन-दामिनी-बरन हैं।
'तुलसी' सुतीय संग सहज सुहाए अंग,
नवल कँवल हू ते कोमल चरन हैं।
औरै सो बसंत, औरै रति, औरै रतिपति,
मूरति बिलोके तन-मन के हरन हैं।
तापस बेषै बनाइ, पथिक पथै सुहाइ,
चले लोक-लोचननि सुफल करन हैं॥१७॥

टिप्पणी—रूप के निधान = रूप के खजाने अर्थात् अतीव सुन्दर। तून = तरकस। सहज = स्वभावतः, अकृत्रिम। घन-दामिनी-बरन = बादल और बिजली के रंग के। कँवल = कमल। अलंकार—तद्रूप रूपक (तीसरे चरण में)। गम्योत्प्रेक्षा (चौथे-चरण में)।

भावार्थ—दोनों भाई वल्कल पहने हुए हैं। हाथों में धनुष-बाण हैं, कमर में तरकस कसे हैं। राम बादल के वर्ण के तथा लक्ष्मण बिजली के रंग के है। तुलसीदास कहते हैं कि साथ में सुन्दरी स्त्री है जिसके अंग स्वभावतः

सुन्दर हैं और चरण नवीन कमल से भी अधिक कोमल हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो गौरवर्ण लक्ष्मण दूसरे बसंत हैं, सीताजी दूसरी रति हैं और श्याम वर्ण रामचन्द्रजी दूसरे कामदेव हैं। इनकी मूर्तियों के देखने से ये तन और मन को हरनेवाले ज्ञात होते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि ये तीनों (बसंत, रति और काम) तपस्वी का वेष बनाकर, पथिक-रूप से मार्ग में शोभायमान होकर लोगों की आँखों को (सुन्दर दृश्य के दर्शन से) सफल अथवा कृतार्थ करने चले हैं।

बनिता बनी स्यामल गौर के बीच, बिलोकहु, री सखी! मोहिं सी ह्वै।
मग-जोग न, कोमल क्यों चलिहैं? सकुचात मही पद-पंकज छ्वै।
'तुलसी' सुनि ग्रामबधू बिथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै ॥१८॥

टिप्पणी—**बनिता**=स्त्री। **बनी**=(मुहावरा) सुशोभित है। **मोहिं सी ह्वै**=मेरी तरह होकर, मेरी ही भाँति ध्यान से। **मग**=मार्ग। **जोग**=योग्य। **बिथकीं**=(बि=विशेष करके=थकीं) छक गईं, तृप्त हो गईं। **मोहन**=मोहित करनेवाले। **अनूप**=अनुपम, अद्वितीय, जिसके जोड़ का कोई दूसरा न हो। **अलंकार**—धर्म-वाचक-उपमानलुप्तोपमा।

भावार्थ—(एक ग्रामीण स्त्री अन्य स्त्रियों से कहती है) हे सखि मेरी तरह चित्त लगाकर देखो, साँवले और गोरे के बीच में स्त्री (सीता) कैसी बनी है (सुशोभित) है। ये कठोर मार्ग में चलने योग्य नहीं हैं। ये कुमार हैं। इनसे कैसे चला जायगा? इनके कोमल चरण-कमलों के स्पर्श से पृथ्वी भी अपनी कठोरता स्मरण कर सकुचाती है। तुलसीदास कहते हैं कि उसके वचन सुनकर सब ग्रामवधुएँ स्तब्ध हो गईं। शरीर में प्रेमवश रोमांच हो उठा और आँखों से प्रेम के आँसू बह चले। सब अनुरागवश कहने लगीं कि राजा के दोनों बालक सब प्रकार से सुन्दर हैं, इनका रूप मन को मोहित करने वाला है, इनकी उपमा का कोई दूसरा नहीं है।

सवैया मत्तगयंद—७ भगण+२ गुरु

साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मैन लियो है।
बान कमान निषंग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनि बेष कियो है।
संग लिये बिधुबैनी बधू, रति को जेहि रंचक रूप दियो है।
पाँयन तौ पनही न, पयादेहि क्यों चलिहैं? सकुचात हियो है ॥१९॥

टिप्पणी—**मैन** (सं० 'मदन', प्रा० 'मयन') कामदेव। **बिधुबैनी**=(प्रा०

विधुबदनी; प्रा० बिधुबयनी) चंद्रमुखी । रंचक = थोड़ा सा। पनहीं = जूता, पादत्राण। पयादेहि = पैदल ही। क्यों = किस प्रकार। हियो = हृदय। अलंकार—प्रतीप (तीसरे चरण में)।

भावार्थ—साँवले, गोरे दोनों राजकुमार स्वभाव से सुन्दर हैं। उन्होंने मनोहरता में तो कामदेव को भी जीत लिया है, अर्थात् कामदेव से भी बढ़कर मनोहर हैं। हाथो में धनुष-बाण और कमर में तरकस बाँधे हुए हैं, सिर पर जटाएँ सुशोभित हैं और मुनियों का-सा वेष धारण किये हुए हैं, साथ में अति सुन्दरी चन्द्रवदनी स्त्री है, जिसने अपने रूप में से थोड़ा सा रूप रति (कामवधू) को दिया है। हृदय मेरा सकुचाता है कि इनके पैरों में तो जूते भी नहीं हैं, ये पैदल किस प्रकार चलेंगे ?

सवैया मत्तगयंद = ७ भगण + २ गुरु

> **रानी मैं जानी अजानी महा, पबि पाहन हू तें कठोर हियो है।**
> **राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो है।**
> **ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ?**
> **आँखिन में सखि ! राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनवास दियो है ॥२०॥**

टिप्पणी—**अजानी** = अज्ञानी। **पबि** = वज्र। **पाहन** = पाषाण, पत्थर। **काज अकाज न जान्यो** = भले-बुरे का विचार न किया। **कह्यो कान कियो है** = (मुहावरा) कहा मान लिया। **किमि कै** = कैसे, किस कारण अथवा किस हृदय से।

भावार्थ—हे सखि, मैं समझती हूँ कि रानी बिलकुल मूर्ख है। उसका हृदय वज्र और पत्थर से भी कठोर है (जो ऐसे सुकुमारों को वन भेजने में न पिघला) राजा ने भी, जिन्होंने स्त्री के वचन मान लिये, भले-बुरे का कुछ विचार नहीं किया। इनके समान मन को हरनेवाली मूर्तियों से बिछुड़ने पर भी इनके प्यारे लोग कैसे जीते रहे ? हे सखि, ये तो आँखों में रखने योग्य हैं, अर्थात् ये तो सदा दृष्टि-पथ में रहें तभी अच्छा है। इन्हें वनवास किस कारण (अर्थात् किस हृदय से) दिया गया ?

मत्तगयंद सवैया = ७ भगण + २ गुरु

> **सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी सी भौंहैं।**
> **तून सरासन बान धरे, 'तुलसी' बन-मारग में सुठि सोहैं।**
> **सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।**
> **पूछति ग्रामबधू सिय सों "कहौ साँवरे से सखि रावरे को हैं" ॥२१॥**

टिप्पणी—सुठि (सं० सुष्ठु) = सुन्दर। सुभाय = (सु + भाव) अच्छे भाव से, पवित्र दृष्टि से। त्यों = तन, ओर।

भावार्थ—ग्रामवधू सीता से पूछती हैं कि हे सखि, जिनके सिर पर जटाएँ हैं, छाती चौड़ी है, भुजाएँ लंबी हैं, आँखें लाल हैं, टेढ़ी भौंहें हैं, और जो (कमर में) तरकस, (हाथों में) धनुष-बाण धारण किये हुए वन के मार्ग में अति सुन्दर शोभा देते हैं और जो बड़े आदर सहित बार-बार पवित्र दृष्टि से तुम्हारी ओर देखकर हमारे मन को मोहित करते है, साँवले से आपके कौन हैं? (अर्थात् तुम्हारे साथ इनका क्या संबंध है?)

दुर्मिल सवैया = ८ सगण

सुनि सुन्दर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसुकाइ चली।
'तुलसी' तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग-तड़ाग में भानु-उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली॥२२॥

टिप्पणी—**बैन** = (सं० वचन, प्रा० वअन = वयन) वचन। **सयानी** = सज्ञानी **नैन** = नयन। **सैन** = संकेत। **औसर** = (अवसर) समय। **लाहु** = लाभ। **अली** = सखी। **उदै** = उदय। **बिगसीं** = (विकसीं) खिलीं। **अलंकार**—उत्प्रेक्षा।

भावार्थ—ग्रामवधुओं के प्रेमपूर्ण सुन्दर वचन सुनकर सीताजी ने अच्छी तरह जान लिया कि ये चतुर हैं। अतः रामचन्द्रजी की ओर तिरछी आँखो से देखकर उन्हें (ग्रामवधुओं को) संकेत से समझाकर कछ मुसकरा गई। तुलसी-दासजी कहते हैं कि उस समय सब सखियाँ नेत्रों का लाभ लेने लगीं। वे ऐसी शोभित होती हैं मानो प्रेमरूपी तालाब में (रामरूपी) सूर्य के उदय होने से सुन्दर कमल की कलियाँ (स्त्रियों की आँखें) खिल गई हैं। (राम-प्रेम तालाब है, राम सूर्य है, स्त्रियों की आँखें कमल-कलियाँ हैं।)

धरि धीर कहैं 'चलु' देखिय जाइ, जहाँ सजनी रजनी रहिहैं।
कहिहै जग पोच, न सोच कछू, फल लोचन आपन तौ लहिहैं।
सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ, कल आपुस में कछू पै कहिहैं।
'तुलसी' अति प्रेम लगीं पलकें, पुलकीं लखि राम हिये महिहैं॥२३॥

टिप्पणी—**सजनी** = सखी। **रजनी** = रात को। **पोच** = बुरा। **लोचन-फल** = सुन्दर दृश्य का दर्शन। **कल** = सुन्दर, श्रवण-मधुर। **पै** = तो। **हिये महि** = हृदय मध्य, हृदय में। **पलकै लगीं** = पलकें बंद हो गईं। **अलंकार**—प्रेमा (केशव के मत से

भावार्थ—प्रेम-विवश होकर ग्रामवधुएं परस्पर धैर्य धारण कर कहती हैं कि हे सखि, चलो ये लोग रात को जहाँ रहेंगे वहाँ चलकर (देर तक) इन्हें देखें। संसार में लोग हमें (परपुरुष के दर्शन को जाने के कारण) बुरा कहेंगे ही, पर इसकी कुछ परवाह नहीं, हमारी आँखें (उनकी सुन्दर मूर्तियों को देखकर) अपना फल तो पा जायँगी और उनकी बातें सुनकर कान तो सुख पायेंगे अगर हमसे कुछ न बोलेंगे तो आपस में कुछ तो श्रवण-सुखद बातें करेंगे। तुलसीदास कहते हैं कि प्रेम के आवेश में उनकी पलकें मुँद गयीं और रामचंद्रजी की छवि को हृदय में देखकर रोमांचित हो गयीं।

पद कोमल, स्यामल गौर कलेवर, राजत कोटि मनोज लजाए।
कर बान-सरासन, सीस जटा, सरसीरुह-लोचन सोन सुहाए।
जिन देखे, सखी! सतभायहु तें 'तुलसी' तिन तौ मन फेरि न पाए।
यहि मारग आजु किसोर बधू बिधु-बैनी समेत सुभाय सिधाए॥२४॥

टिप्पणी—**कलेवर**=शरीर। **राजत**=शोभित होते हैं। **मनोज**=(मनस्+ज=जन्मा हुआ) कामदेव। **सोन**=(सं० शोण) लाल। **सतभायहु तें**=सद्भाव से, प्रेमपूर्वक भी। **तिन**=उन्होंने। **किसोर**=किशोर अवस्था के दोनों राजकुमार। **बिधुबैनी**=विधुवदनी, चन्द्रमुखी।

भावार्थ—(ग्रामवधुएँ परस्पर कहती हैं) रामचंद्रजी और लक्ष्मणजी के चरण कोमल हैं। देह का रंग क्रमशः साँवला और गोरा है। वे ऐसे शोभित हैं कि उनके सौंदर्य को देखकर करोड़ों कामदेव भी लज्जित हो जाते हैं। हाथों में धनुष-बाण लिये हैं, सिर पर जटा बाँधे हैं और लाल कमल के समान सुहावने नेत्र हैं। हे सखि, जिन्होंने उनको प्रेम से देखा वे तो अपने मन को न लौटा सकीं (अर्थात् उनका मन रामचंद्रजी के साथ-ही-साथ रह गया)। हे सखि, इस मार्ग से होकर आज दो किशोर अवस्था के राजकुमार चन्द्रमुखी वधू सहित सहज ही चले गये हैं? (क्या तुमने उन्हें देखा है?)

मुख पंकज, कंज बिलोचन मंजु, मनोज-सरासन सी बनी भौंहैं।
कमनीय कलेवर कोमल, स्यामल गौर किसोर, जटा सिर सोहैं।
'तुलसी' कटि तून, धरे धनु बान, अचानक दीठि परी तिरछौहैं।
केहि भाँति कहौं, सजनी! तेहि सों मृदु मूरति द्वै निवसीं मन मोहैं॥२५॥

टिप्पणी—**कंज**=कमल। **कमनीय**=सुन्दर। **दीठि**=दृष्टि। **अलंकार**—प्रेमा (केशव के मत से)।

भावार्थ—(एक ग्रामवधू अपनी दशा कहती है) रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी

के मुख कमल से हैं, अति सुन्दर कमल सी आंख हैं, कामदेव के धनुष की भाँति टेढ़ी भौंहें सुशोभित हैं, उनकी देह सुन्दर और कोमल है। दोनों किशोर अवस्था के और क्रमशः साँवले और गोरे वर्ण के हैं। सिर पर जटा बँधी है। कमर मे तरकस कसे हुए हैं और हाथों में धनुष-बाण धारण किये हुए हैं। हे सखी, मेरी अचानक उन पर तिरछी नजर पड़ गई। उसी समय से दोनों कोमल मूर्तियाँ मेरे मन में बस गई हैं। तुझसे क्या कहूँ (कि तब से मेरी क्या दशा है, तू खुद समझ ले)।

प्रेम सों पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चितु दै, चले लै चित चोरै।
स्याम सरीर पसेउ लसै, हुलसै 'तुलसी' छबि सो मन मोरै।
लोचन लोल चलैं भृकुटी, कल काम-कमानहु सो तृन तोरै।
राजत राम कुरंग के संग, निषंग कसे, धनु सों सर जोरै ॥२६॥

टिप्पणी—चितै=देखकर। चितु=चित्त। पसेउ=पसीना। हुलसै=आनंदित होते हैं। लोल=चंचल। कल=संदर। तृन तोरै=निछावर होता है। कुरंग=हरिण। धनु सों सर जोरै=धनुष-बाण संधान किये हुए।

भावार्थ—(रामचंद्रजी के आखेट जाने का प्रसंग) प्रेम से पीछे सीताजी की ओर तिरछी दृष्टि से देखकर, अपना चित्त सीताजी को देकर और सीताजी का मन स्वयं चुराकर रामचंद्रजी आखेट को चले। आखेट के श्रम से निकला हुआ पसीना साँवले शरीर पर शोभायमान है। आँखों के चंचल होने के कारण चलायमान भौंहें ऐसी शोभा देती हैं कि जिनको शोभा पर कामदेव का सुन्दर धनुष भी निछावर होता है। इस प्रकार तरकस बाँधे हुए, धनुष पर बाण संधान किये हुए रामचन्द्रजी हरिण के साथ दौड़ते हुए सुशोभित होते है। तुलसीदास आनंदित होकर कहते हैं कि रामचन्द्रजी की उस समय की शोभा मेरे मन को आनंदित करती है।

सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि, पानि सरासन सायक लै।
बन खेलत राम फिरैं मृगया, 'तुलसी' छबि सो बरनै किमि कै?
अवलोकि अलौकिक रूप मृगीमृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै।
न डगैं न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक है ॥२७॥

टिप्पणी—चारिक=चार। सायक=बाण। किमि कै=किस प्रकार। अलौकिक=जो इस लोक में न हो अर्थात् अद्भुत। चकै=चकित होते हैं। चितवैं=देखते हैं। सिलीमुख पंच=चार बाण तरकस में, एक हाथ में। **अलंकार**—भ्रम।

भावार्थ—रामचंद्रजी चार सुन्दर सजे हुए बाण कमर में खोंसे हाथ में धनुष-बाण लिये बन में मृगया खेलते फिरते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि मैं उस छबि का वर्णन किस प्रकार करूँ ? इनके उस अद्भुत रूप को देखकर मृग-मृगी चौंककर चकित हो जाती हैं और ध्यान से देखने लगती हैं। अपने मन में रामचन्द्रजी को पाँच बाण धरे कामदेव जानकर वे न तो हिलते हैं न डरकर भागते हैं।

बिंध्य के बासी उदासी तपोब्रतधारी महा, बिन नारि दुखारे।
गौतम-तीय तरी, 'तुलसी' सो कथा सुनि, भे मुनिबृन्द सुखारे।
ह्वैहैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे।
कीन्हीं भली, रघुनायक जू, करुना करि कानन को पगु धारे ॥२८॥

टिप्पणी—**उदासी**=दुःख सुख में एक से। **महातपोब्रतधारी**=बड़े ब्रह्मचारी। **भे**=हुए। **ह्वैहैं**=हो जायँगी। **सिला**=पत्थर। **परसे**=स्पर्श करने से। **पद-मंजुल कंज**=सुन्दर कमल के समान चरण। **कीन्हीं भली**= अच्छा किया।

भावार्थ—(तुलसीदास हास्य रस में रामचन्द्रजी के चरणकमलों की धलि का माहात्म्य वर्णन करते हैं) विंध्याचल के बड़े-बड़े ब्रह्मचारी और उदासी जो सब बिना स्त्रियों के दुःखी थे, यह कथा सुनकर कि, रामचंद्रजी की चरण-रज से गौतम-पत्नी अहल्या पत्थर से स्त्री हो गई, वे सब बहुत खुश हुए और कहने लगे कि हे रामचन्द्रजी ! आपने अच्छा किया जो हम लोगों पर दया करके वन को आये क्योंकि आपके सुन्दर चरण-कमलों के स्पर्श से सब शिलाएँ चद्रमुखी स्त्रियाँ हो जायेंगी। (और हम लोगों को एक-एक स्त्री मिल जायगी)।

अरण्यकांड

मत्तगयंद सवैया = ७ भगण + २ गुरु

पंचवटी बर पर्नकुटी तर बैठे हैं राम सुभाय सुहाए।
सोहैं प्रिया, प्रिय बन्धु लसै, 'तुलसी' सब अंग घने छबि छाए।
देखि मृगा, मृगनैनी कहे प्रिय बैन, ते प्रीतम के मन भाए।
हेमकुरंग के संग सरासन सायक लै रघुनायक धाए ॥१॥

टिप्पणी—**पंचवटी**=पाँच वट-वृक्षों का समूह जिस स्थान पर हो उसे पचवटी कहते हैं। **पर्णकुटी**=पत्तों से बनी हुई झोपडी। **घने**= बहुत।

बैन = वचन (प्रा० वअन)। भाए = अच्छे लगे। हेमकुरंग = सोने का मृग।

भावार्थ—सहज ही सुन्दर रामचन्द्रजी पंचवटी में सुन्दर पर्णकुटी के नीचे बैठे थे। संपूर्ण अंगों में अतिशय शोभा से युक्त प्रिया सीताजी तथा प्यारे भाई लक्ष्मणजी भी विराजमान थे। उसी समय सोने के मृग को देखकर मृग के सदृश नेत्रवाली सीताजी ने मीठे शब्दों से मृग मारने को कहा। ये वचन श्रीरामचन्द्रजी को भी अच्छे लगे और धनुष-बाण लेकर वे स्वर्णमृग के साथ दौड़ पड़े।

किष्किंधाकांड

अब अंगदादिन की मति गति मंद भई,
पवन के पूत को न कूदिबे को पलु गो।
साहसी ह्वै सैल पर सहसा सकेलि आइ,
चितवत चहूँ ओर औरन को कलु गो।
'तुलसी' रसातल को निकसि सलिल आयो,
कोल कलमल्यो, अहि कमठ को बलु गो।
चारिहू चरन के चपेट चाँपे चिपिटि गो,
उचके उचकि चारि, अंगुल अचलु गो॥१॥

टिप्पणी—मति गति मंद भई = बुद्धि और बल दोनों का कह; वश न चला। पवन के पूत को = हनुमान को। पूत = पुत्र। पलु गो = पल मात्र भी नहीं लगा। सैल = (शैल) पर्वत। सकेलि = क्रीड़ासहित, खेल ही खेल में। कलु = कल, सुख। कलु गो = सुख नष्ट हो गया। निकसि = निकल कर। रसातल = पृथ्वी के नीचे का लोक। सलिल = जल। कलमल्यो = कलमलाया, व्याकुल हुआ। अहि = शेषनाग। कमठ = कच्छप। बल गो = बल नष्ट हो गया। चाँपे = दबने से। उचके = उछलने से। उचकि गो = ऊपर को उछल गया।

भावार्थ—जब अंगदादिकों की बुद्धि और बल ने समुद्र पार करने में कुछ काम न दिया तब (जामवंत के प्रचारने से) हनुमान को कूदने में क्षण भर की भी देर न लगी। खेल ही खेल में साहसपूर्वक एकदम पहाड़ पर चढ़ कर चारों ओर देखने लगे। जिनकी ओर देखा, भीमकाय हनुमान को देखकर (भय से) उनका सुख नष्ट हो गया। तुलसीदास कहते हैं कि (हनुमानजी के चढ़ने से पर्वत पृथ्वी में धँसा जिससे) पाताल का जल ऊपर निकल आया, वाराह घबड़ा गये और शेषनाग और कच्छपजी का भी बल जाता रहा।

हनुमानजी के चारों चरणों की चपेट से दबकर पर्वत चिपटा हो गया और उछलने पर पर्वत भी चार अंगुल ऊपर उछल गया।

सुन्दरकांड

बासव बरुन बिधि बन तें सुहावनो,
दसानन को कानन बसंत को सिंगार सो।
समय पुराने पात परत, डरत बात,
पालत, लालत, रति-मार को बिहार सो।
देखे बर बापिका तड़ाग बाग को बनाव,
रागबस भो बिरागी पवनकुमार सो।
सीय की दसा बिलोकि बिटप-असोक-तर,
'तुलसी' बिलोक्यो सो तिलोक-सोक-सारसो ॥१॥

टिप्पणी—**बासव** = इंद्र। **बरुन** = (वरुण) जल के अधिदेवता। **बिधि** = ब्रह्मा। **कानन** = बन। **पात परत** = पत्ते गिरते हैं। **बात** = पवन। **रति** = कामपत्नी। **मार** = कामदेव। **सो** = समान। **बापिका** = बावली। **बनाव** = सजावट, शोभा। **रागबस** = प्रेमवश। **बिरागी** = संसार की वस्तुओं से विरक्त, अर्थात् सांसारिक पदार्थों से प्रेम रहित। **पवनकुमार सो** = हनुमानजी के सदृश। **बिटप** = वृक्ष। **तर** = (तल) नीचे। **तिलोक** = त्रिलोक। **सोक सार** = (शोक-शाला) शोक का घर। **अलंकार**—उत्प्रेक्षा।

भावार्थ—रावण का बन इंद्र, वरुण और ब्रह्मा के बन से भी रमणीय है और (वनों का शृंगार वसंत है उस) वसंत का भी शृंगार है। समय पर ही पुराने पत्ते गिरते हैं, पवन वहाँ जाते समय रावण से डरता है और रति और कामदेव की विहार-वाटिका की तरह उसका लालन-पालन करता है। वाटिका की सजावट और सुन्दर बावली और तालाबों को देखकर हनुमान के सदृश विरागी भी प्रेमवश हो गये। तुलसीदास कहते है कि उस वन में अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हुई सीताजी की दुःखमय दशा देखकर हनुमानजी ने उस वन को तीनों लोकों के शोक का घर ही-सा देखा (अर्थात् जानकीजी को दुःखी देखकर वह अति सुन्दर बाग हनुमानजी को शोकागार सा जान पड़ा)।

माली मेघमाल, बनपाल बिकराल भट,
नीके सब काल सींचें सुधासार नीर को।

मेघनाद तें दुलारो प्रान तें पियारो बाग,
अति अनुराग जिय जातुधान धीर को।
'तुलसी' सो जानि सुनि, सीय को दरस पाइ,
पैठो बाटिका बजाइ बल रघुबीर को।
बिद्यमान देखते दसानन को कानन सो,
तहस-नहस कियो साहसी समीर को ॥२॥

टिप्पणी—मेघमाल = बादलों की पंक्ति। सुधासार = अमृतमय। बन-पाल = वन के रक्षक। बिकराल भट = भयंकर योद्धा। जातुधान = राक्षस। पैठो = प्रविष्ट हुआ। बजाइ = ललकार कर (प्रगट, चोरी नहीं)। बिद्यमान = मौजूद रहते हुए। तहस-नहस कियो = (मुहावरा) नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। साहसी समीर को = पवन के बली पुत्र ने।

भावार्थ—उस (अशोक) बाटिका के माली बादलों के समूह हैं जो सदा अमृतमय जल से अच्छे प्रकार से उसे सींचते हैं। बड़े भयंकर योद्धा उस बन के रक्षक हैं। उस बाग के लिए राक्षसों में धीर रावण के हृदय में अतिशय आसक्ति है; वह बाग रावण को मेघनाद से भी दुलारा और प्राणों से भी प्यारा है। तुलसीदास कहते हैं कि सीताजी के दर्शन पाकर और उनसे यह हाल जान-सुनकर उस बाटिका को रावण की प्यारी जानकर हनुमान रामचन्द्रजी के बल का डंका बजाकर बाग में घुसे। बली हनुमान ने रावण के सामने उसके देखते हुए उसके बाग को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

बसन बटोरि बोरि बोरि तेल तमीचर,
खोरि खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं।
तैसो कपि कौतुकी डरात ढीलो गात कै-कै,
लात के अघात सहै जी में कहै 'कूर हैं'।
बाल किलकारी कै कै तारी दै दै गारी देत,
पाछे लोग बाजत निसान ढोल तूर हैं।
बालधी बढ़न लागी, ठौर ठौर दीन्हीं आगि,
बिंध दवारि, कैधों कोटिसत सूर हैं ॥३॥

टिप्पणी—बसन = वस्त्र। बटोरि = एकत्र कर। बोरि-बोरि = डुबा-डुबा कर। तमीचर = राक्षस। खोरि-खोरि = गली-गली। लँगूर—पूँछ। कौतुकी = खिलाड़ी, कौतुक करने के इच्छुक। गात = (गात्र) शरीर। कै कै = कर-कर के। अघात = (आघात) प्रहार, चोट। जी = जिय। कूर = क्रूर, निष्ठुर। तूर = तुरही, एक प्रकार का बाजा। बालधी = पूँछ। बिंध = विंध्याचल। दवारि = दावाग्नि, वन की अग्नि। कैधों = अथवा, या। कोटिसत = सौ करोड़ सूर सूर्य। अलंकार—संदेह।

भावार्थ—(मेघनाद के ब्रह्मपाश से बँध जाने पर रावण ने हनुमानजी की पूँछ में आग लगाने की आज्ञा दे दी) राक्षस गली-गली से दौड़कर आते हैं और वस्त्रों को एकत्र कर और उन्हें तेल में डुबा-डुबाकर जैसे-जैसे हनुमानजी की पूंछ में बाँधते हैं वैसे-वैसे कौतुक करने के इच्छुक हनुमानजी अपने शरीर को शिथिल करके अपने को भयभीत प्रकट करते हैं। राक्षसों की लाता व प्रहार सह लेते हैं पर मन में कहते हैं कि ये राक्षस क्रूर हैं। बालक किलकारी मार-मारकर तालियाँ बजाते हुए हनुमानजी को गालियाँ देते हैं और उनके पीछे-पीछे नक्कारे, ढोल और तुरही बजाते हैं। हनुमानजी की इच्छा से पूँछ बढ़ने लगी। उसने लंका में ठौर-ठौर आग लगा दी। यह नहीं जान पड़ता कि वह आग विन्ध्याचल की दावाग्नि है अथवा करोड़ों सूर्य एक साथ चमक रहे हैं।

लाइ लाइ आगि, भागे बाल-जाल जहाँ-तहाँ,
लघु ह्वै निबुकि, गिरिमेरु तें बिसाल भो।
कौतुकी कपीस कूदि कनक-कँगूरे चढ़ि,
रावन-भवन जाइ ठाढ़ो तेहि काल भो।
'तुलसी' बिराज्यो ब्योम बालधी पसारि भारी,
देखे हहरात भट काल तें कराल भो।
तेज के निधान मानो कोटिक कृसानु भानु,
नख बिकराल, मुख तैसो रिस-लाल भो ॥४॥

टिप्पणी—**आग लाना** = (मुहावरा) आग लगाना। **बाल-जाल** = बालकों का समूह। **निबुकि** = बंधन से फिसल जाना, खिसककर। **गिरिमेरु** = सुमेरु पर्वत। **बिसाल** = (विशाल) बड़ा। **भो** = हुआ। **कनक-कँगूर** = सोने के कँगूरे पर। **ब्योम** = आकाश। **पसारि** = (प्रसार्य) फैलाकर। **भारी** = बड़ी (बालधी का विशेषण)। **हहरात** = भयभीत होते हैं। **कराल** = भयंकर। **निधान** = खजाना। **कृसानु** = (कृशानु) अग्नि। **अलंकार**—उत्प्रेक्षा।

भावार्थ—बालकों का झुंड पूँछ में आग लगा-लगाकर इधर-उधर भाग गया। हनुमान जी छोटा रूप धारण कर (ब्रह्मपाश के बंधन से) खिसक आये, फिर सुमेरु पर्वत से भी बड़े हो गये। कौतुकी हनुमान जी कूदकर सोने के कगूरे पर चढ़ गये। वहाँ से उसी समय रावण के महल में जा खड़े हुए। तुलसीदास कहते हैं कि अपनी भारी पूँछ को फैलाकर, हनुमान जी आकाश में विराजमान हुए। उस समय वे काल से भी भयंकर प्रतीत हुए और उनको देखकर

योद्धा भी भयभीत हो गये। उनके नख बड़े भीषण थे और क्रोध से मुख लाल हो गया था। उस समय हनुमानजी का प्रताप ऐसा फैल गया मानों करोड़ों अग्नि और सूर्य एक साथ प्रकट हुए हों।

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानो,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधों ब्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सी उघारी है।
'तुलसी' सुरेस-चाप, कैधों दामिनी-कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
"कानन उजार्‌यो अब नगर प्रजारी है" ॥५॥

टिप्पणी—**ज्वाल-जाल**=आग की लपटों का समूह। **लीलिबे को**=निगलने को। **रसना**=जिह्वा। **कैधौं**=अथवा। **व्योम**=आकाश। **बीथिका**=गली। **व्योम बीथिका**=आकाश मे तारो की एक श्रेणी जो इतनी धुँधली होती है कि पृथ्वी से केवल सफेद राह सी दिखलाई देती है। इसको आकाश-गंगा या छायापथ भी कहते है। **भूरि**=बहुत। **धूमकेतु**=पुच्छल तारा। **सुरेस चाप**=इंद्रधनुष। **कलाप**=समूह। **मेरु**=सुमेरु पर्वत। **सरि**=नदी। **जातुधान**=(यातुधान) राक्षस। **प्रजारी है**=प्रकृष्टरूप से अर्थात् अच्छी तरह जला देगा। **अलंकार**—उत्प्रेक्षा से पुष्ट संदेह।

भावार्थ—हनुमानजी की बड़ी भारी पूँछ जो भयंकर आग की लपटों की समूह है, ऐसी है मानो काल ने लंका को निगलने के लिए जीभ फैलाई है, अथवा आकाश गंगा में बहुत से धूम्रकेतु तारे भरे हैं, अथवा पराक्रमी बीररस ने तलवार म्यान से बाहर निकाल रखी हो, अथवा इंद्र-धनुष उदय हुआ हो, अथवा बिजलियों का समूह हो, अथवा सुमेरु पर्वत से बड़ी भारी आग की नदी बह चली हो। तुलसीदास कहते हैं कि यह देख कर सब राक्षस-राक्षसी घबड़ाकर कहती हैं कि पहले इस वानर ने वाटिका उजाड़ी थी, अब नगर को भस्म कर देगा।

जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत,
'जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे।
कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी,
छोटे छोटे छोहरा, अभागे भोरे भागि रे।
हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष बृषभ छोरो,
छेरी छोरो, सोवै सो जगाओ जागि जागि रे।'

'तुलसी' बिलोकै अकुलानी जातुधानी कहैं,
'बार बार कह्यो पिय कपि सों न लागि रे !' ॥६॥

टिप्पणी—**बुबुक**=आग की लपटें (भभक)। **बुबुकारी देना**=डर के मारे टूटे-फूटे शब्दों से घबराहट प्रकट करना। **निकेत**=घर। **छोटे**=बालकों के लिए प्रेम का संबोधन। **छोहरा**=बालकों के लिए अनादर का संबोधन। **भोरे**=भोले, सीधे-सादे। **भागि**=भागो। **छेरी**=बकरी। **जातुधानी**=रावण की स्त्रियाँ।

भावार्थ—लंकानिवासी इधर-उधर आग की लपटों को देखकर भय के मारे बबुक-बुबुककर चिल्लाते हैं। "(अरे घर जलते है। दौड़ो-दौड़ो। आग लग गई है। कहाँ पिता-माता, कहाँ भाई-बहन, कहाँ स्त्री, कहाँ भौजाई, कहाँ बाल-बच्चे हैं। अरे अभागो, भोले लोगों (सबको छोड़कर) भागो। हाथियों को छोड़ दो, घोड़ों को भी छोड़ दो; भैंस, बैल, बकरी सब को छोड़ दो, जो सो रहा है उसे जगाओ। अरे जागो रे जागो।" तुलसीदास कहते हैं कि यह सब देखकर मंदोदरी आदि रानियाँ घबराकर कहती हैं कि हमने कई बार रावण को समझाया कि हे प्यारे ! वानर से मत लगो अर्थात् छेड़छाड़ मत करो।

देखि ज्वाल जाल, हाहाकार दसकंध सुनि,
कह्यो 'धरो धरो' धाए बीर बलवान हैं।
लिए सूल, सेल, पास, परिघ, प्रचंड दंड,
भाजन सनीर, धीर धरें धनुबान हैं।
'तुलसी' समिध सौंज लंक जज्ञकुंड लखि,
जातुधान पुंगीफल, जव तिल धान हैं।
स्रुवा सो लँगूल, बलमूल प्रतिकूल हबि,
स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुनैं हनुमान हैं ॥७॥

टिप्पणी—**सूल**=त्रिशूल। **सेल**=बर्छी। **पास**=(पाश) फाँसी। **परिघ**=लोहाँगी। **समिध**=यज्ञकुंड में जलाने योग्य पवित्र काष्ठ। **सौंज**=सामग्री। **लखि**=विचारकर। **पुंगीफल**=सुपारी। **स्रुवा**=(श्रुवा) काठ की आचमनी, जिसमें (हव्य यज्ञ में हवनीय पदार्थ) रखकर अग्नि में स्वाहा की जाती है। **बलमूल**=बली। **प्रतिकूल**=शत्रु। **हबि**=हव्य। **स्वाहा**='स्वाहा' शब्द का उच्चारण, हव्य को आग में डालते समय 'स्वाहा' शब्द का घोष किया जाता है। **हुनै**=हवन करते हैं। **अलंकार**—समस्त वस्तुविषयक सांगरूपक।

भावार्थ—आग की लपटों को देखकर और सर्वत्र हाहाकार सुनकर रावण ने कहा कि वानर को पकड़ो। यह आज्ञा पाकर वीर और बली लोग दौड़ गए, कोई त्रिशूल कोई बर्छी कोई फाँस कोई लोहाँगी कोई ब── भारी दंड कोई

जलपूर्ण बर्तन और कोई धैर्यवान धनुष-बाण लिए थे। तुलसीदास कहते हैं कि लंका मानो यज्ञकुंड है, सब सामग्री ही लकड़ी है। राक्षस लोग सुपारी, जव, तिल और चावल हैं। शक्तिमान् पूँछ ही उस द्रव्य को यज्ञकुंड में अर्पण करने की स्रुवा है और बली शत्रु ही हवि हैं। हनुमानजी इस द्रव्य को खूब चिल्लाकर मानो स्वाहोच्चारपूर्वक हवन करते हैं।

गाज्यो कपि गाज ज्यौं, बिराज्यो ज्वालजाल जुत,
भाजे बीर धीर अकुलाइ उठ्यो रावनो।
'धाओ धाओ धरो' सुनि धाए जातुधान-धारि,
बारिधारा उलदैं जलद ज्यौं न सावनो।
लपट-झपट झहराने, हहराने बात,
भहराने भट, पर्‌यो प्रबल परावनो।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि,
'नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो' ॥८॥

टिप्पणी—**गाज्यो**=गर्जन किया। **गाज**=बिजली। **जुत**=युत, संयुक्त, घिरे हुए। **भाजे**=भागे। **रावनो**=(रावणोऽपि=प्रा० रावनोइ) रावण भी। **धारि**=समूह, झुंड। **उलदैं**=उँड़ेलते हैं, बरसाते हैं। **सावनो**=श्रावण में भी। **अन्वय**=जलद ज्यों सावनो न उलदैं त्यों, जातुधान-धारि बारिधारा उलदैं। **हहराने**=शब्द करके बहने लगी। **बात**=हवा। **भहराने**=भागने लगी। **भट**=योद्धा। **परावनो**=पलायन, भगदड़। **पर्‌यो प्रबल परावनो**=खूब भगदड़ पड़ गई। **ढकनि**=धक्कों से। **ढकेलि**=धक्का देकर। **पेलि**=बलात्, जबर्दस्ती, हठ करके। **सचिव**=रावण के मंत्री। **अनल**=अग्नि।

भावार्थ—अग्नि की लपटों के बीच में विराजमान हनुमानजी वज्र की तरह गरजे। उस गर्जन को सुनकर बड़े-बड़े धैर्यवान् और पराक्रमी वीर भाग गये। रावण भी घबड़ा गया और कहने लगा 'दौड़ो-दौड़ो, इस बंदर को पकड़ो।' यह आज्ञा सुनकर राक्षसों के समूह आग बुझाने को दौड़ चले और आग पर इतना पानी उँडेल दिया जितना बादल श्रावण के महीने में भी नहीं बरसाते। आग की लपटें तेजी से चलने लगीं और हवा शब्द करके बहने लगी। बड़े जोर की भगदड़ पड़ गई, योद्धागण भागने लगे। मंत्री बलात् धक्कों से ढकेल-ढकेलकर और ठेल-ठेलकर रावण को हटा ले चले और कहने लगे कि हे नाथ, आग बड़ी भयानक है, यहाँ कुछ भी बल न चलेगा (आप यहाँ से अन्यत्र हट चलिए)।

बड़ो बिकराल बेष देखि, सुनि सिंहनाद,
उठ्यो मेघनाद, सबिषाद कहै रावनो।
बेगि जीत्यो मारुत, प्रताप मारतंड कोटि,
कालऊ करालता, बड़ाई जीतो बावनो।
'तुलसी' सयाने जातुधान पछिताने मन,
"जाको ऐसो दूत सो साहेब अबै आवनो"।
काहे को कुशल रोषे राम बामदेवहू के,
बिषम बली सों बादि बैर को बढ़ावनो ॥९॥

टिप्पणी—सिंहनाद = सिंह के समान भीषण गर्जन। उठ्यो = घबड़ा उठा। मारुत = पवन। मारतंड = (सं० मार्तंड) सूर्य। बावनो = वामन रूप विष्णु भगवान्। सयाने = सज्ञान, चतुर। साहेब = स्वामी। आवनो = आनेवाला है। रोषे = क्रोध करने पर। बामदेवहू के = शिवजी के भी। बिषम = बड़े। बादि = व्यर्थ।

भावार्थ—हनुमानजी का बड़ा भयंकर रूप देखकर और उनका गर्जन सुनकर मेघनाद घबड़ा उठा। रावण भी बड़े खेद से कहने लगा कि इसने तो शीघ्रता में वायु को, तेज में करोड़ों सूर्यों को, भयंकरता में काल को और बड़ाई (डीलडौल) में वामन भगवान् को भी जीत लिया है। तुलसीदास कहते हैं कि चतुर राक्षस मन में पछता कर कहने लगे कि जिसके दूत का ऐसा पराक्रम है वह स्वामी (रामचन्द्रजी) तो अभी आये नहीं, आनेवाले हैं (तब न जाने लंका की क्या दशा हो)। रामचन्द्रजी के क्रोध करने पर तो शिवजी के लिए भी कुशल कैसा (अर्थात् रामचन्द्रजी के क्रुद्ध होने पर तो शिवजी भी नहीं बचा सकते, रावण की तो क्या सामर्थ्य)? ऐसे महाबलवान् से वैर बढ़ाना तो व्यर्थ ही है।

'पानी पानी पानी' सब रानी अकुलानी कहैं,
जाति हैं परानी, गति जानि गजचालि है।
बसन बिसारैं, मनि-भूषन सँभारत न,
आनन सुखाने कहैं 'क्योहूँ कोऊ पालि है?'
'तुलसी' मँदोवै मीजि हाथ, धुनि माथ कहै,
'काहू कान कियो न मैं कह्यो केतो कालि है।'
बापुरो बिभीषन पुकारि बारबार कह्यो,
'बानर बड़ी बलाइ घने घर घालिहै' ॥१०॥

टिप्पणी—अकुलानी = घबड़ाई हुई। परानी जाति हैं = भागी जाती हैं। जानि = जानो। गति जानि गजचालि है = गति में उनकी गजगामिनी

जानो। **बसन** = वस्त्र। **बिसारैं** = भूल जाती है, सुध नहीं है। **आनन सुखान** — सूखे मुख, अधीर होकर। **क्यों हूँ** = किसी प्रकार भी। **पालिहैं** = रक्षा करेगा। **मँदोवै** = मंदोदरी। **कान न करना** = (मुहावरा) ध्यान न देना। **केतो** = कितना। **बापुरो** = बेचारा (असमर्थतासूचक विशेषण)। **बलाइ** = आपदा। **घने** = बहुत। **घर घालिहै** = घरों को उजाड़ देगा।

भावार्थ—रावण की सब रानियाँ, जिनकी गति हाथी की चाल की तरह है घबड़ाई हुई और पानी-पानी चिल्लाती हुई भागी जाती हैं। उन्हें अपने वस्त्रों की भी सुध नहीं। अपने मणिजटित आभूषणों को भी नहीं सँभालती। सूखे मुँह से अर्थात् अधीर होकर कहती हैं—'कोई किसी प्रकार भी हमारी रक्षा करेगा ?' तुलसीदास कहते हैं कि मंदोदरी हाथ मलकर, सिर पीटकर कहती है कि मैंने कल कितना समझाया, पर किसी ने ध्यान न दिया। बेचारा विभीषण भी बार-बार पुकारकर कहता था कि यह बानर तो बड़ी भारी विपत्ति (मूर्तिमान् आपदा) है। यह बहुत से घरों को उजाड़ देगा (परन्तु किसी ने उसकी भी बात न मानी)।

'कानन उजार्‌यो तौ उजार्‌यो न बिचार्‌यो कछु,
बानर बिचारो बाँधि आन्यो हठि हार सों।
निपट निडर देखि काहू न लख्यो बिसेषि,
दीन्हों ना छुड़ाइ कहि कुल के कुठार सों।
छोटे औ बड़ेरे मेरे पूतऊ अनेरे सब,
साँपनि सों खेलैं, मेलैं गरे छुराधार सों।
'तुलसी' मँदोवै रोइ रोइ कै बिगोवै आपु,
'बार-बार कह्यो मैं पुकारि दाढ़ीजार सों' ॥११॥

टिप्पणी—**हार** = वन। **निपट. . . बिसेषि** = हनुमान की निर्भीकता पर भी किसी ने विशेष लक्ष्य न किया। भाव यह कि रावण के सामने खड़े होना और वह भी अत्यन्त निर्भय होकर यह किसी साधारण बानर की सामर्थ्य नहीं है। अतः यह कोई महाबली होगा। इसका किसी ने विचार न किया। **कुल के कुठार सो** = कुलनाशक अर्थात् मेघनाद से। **बड़ेरे** = बड़े। **पूतऊ** = पुत्र भी। **अनेरे** = निकम्मे, व्यर्थ। 'साँपों से खेलना' और 'छुरी की धार पर गला रखना' ये मुहावरे हैं। इनका अर्थ है—'जोखम के काम करना' अथवा 'ऐसे काम करना जिनसे प्राण जाने की संभावना हो'। **मेलैं गरे** = गले डालना। **बिगोवै** = विहीन दशा प्रगट करती है। **दाढ़ीजार** = मेघनाद का विशेषण। (स्त्रियाँ कुपित होने पर बहुधा ऐसी गालियाँ दिया करती हैं, जैसे—'मुँहझौंसा', 'मुँह-जला' इत्यादि)।

भावार्थ—मंदोदरी कहती है कि अगर इस बन्दर ने अशोकवन उजाड़ दिया था तो उजाड़ दिया था (इसकी क्या परवाह थी)। किसी की कुछ हानि तो नहीं की (फल खाना और पेड़ तोड़ना तो वानर का काम ही है)। बेचारे हनुमान को जबर्दस्ती उपवन से बाँध कर ले आये। उसको बिलकुल निर्भय देख कर भी किसी ने विशेष ध्यान न दिया कि यह साधारण वानर नहीं है। कुल के नाश करनेवाले मेघनाद से कहकर किसी ने उसको छुड़ा न दिया। मेरे छोटे-बड़े सब पुत्र निकम्मे हैं। साँपों से खेलते हैं और छुरी की धार पर अपनी गर्दन रखते हैं अर्थात् अपने प्राणों पर आपत्ति लाते हैं। तुलसीदास कहते है कि मन्दोदरी रो-रोकर अपनी विहीन दशा प्रगट करती है और कहती है कि मैंने बार-बार दाढ़ीजार मेघनाद को समझाया (कि ऐसा मत कर, पर वह माना नहीं, उसी का फल यह विपत्ति है)।

रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं,
सकैं ना बिलोकि बेष केसरीकुमार को।
मींजि मींजि हाथ, धुनैं माथ दसमाथ-तिय,
'तुलसी' तिलौ न भयौ बाहिर अगार को।
सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढ़ो, तैं न काढ़ो,
जिय की परी, सँभारै सहन-भँडार को?
खीझति मँदोवै सविषाद देखि मेघनाद,
'बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार कों' ॥१२॥

टिप्पणी—**डाढ़त**=जलती हुई। **परानी जाहिं**=भागी जाती हैं। **केसरी-कुमार**=हनुमान। **तिलौ**=तिलभर भी। **अगार को**=(सं० आगार) घर का सामान। **डाढ़ो**=जल गया। **काढ़ो**=निकला। **जिय की परी**=(मुहावरा) सब को अपने-अपने प्राण बचाने की चिंता है। **सहन-भँडार**=बाहरी खजाना। **खीझति**=क्रुद्ध होती है। **बयो**=बोया हुआ। **लुनियत**=काटा जा रहा है। **बयो लुनियत**=(कहावत है) जो इसने बोया वही काट रहे हैं अर्थात् जैसा कर्म किया वैसा ही फल भोग रहे हैं।

भावार्थ—सब रानियाँ जलती हुई घबड़ाकर भागी जाती हैं और हनुमान के भयंकर वेष को नहीं देख सकतीं अर्थात् उसकी ओर देखने का साहस नहीं करतीं। रावण की सब स्त्रियाँ हाथ मल-मलकर रह जाती है और सिर पीटती है। तुलसीदास कहते हैं कि घर का सामान तिलभर भी बाहर नहीं हुआ। सब का सब असबाब जल गया। बाहर कैसे हो? न मैंने निकाला, न तुमने निकाला,

अर्थात् किसी ने भी निकालने का प्रयत्न नहीं किया। सब को अपने-अपने प्राणों को बचाने की पड़ी है। सहन-भंडार को कौन सँभाले ? मंदोदरी दुःखित होकर मेघनाद को देखकर क्रुद्ध होती है और कहती है कि इस दाढ़ीजार ने जैसा किया वैसा ही भोगना पड़ रहा है।

रावन की रानी जातुधानी बिलखानी कहैं,
'हा हा ! कोऊ कहै बीसबाहु दसमाथ सों।
काहे मेघनाद, काहे-काहे रे महोदर ! तू
धीरज न देत, लाइ लेत क्यों न हाथ सों।
काहे अतिकाय, काहे-काहे रे अकंपन,
अभागे तिय त्यागे भोड़े भागे जात साथ सों ?
'तुलसी' बढ़ाय बादि साल तें बिसाल बाहैं,
याहि बल, बालिसौ ! बिरोध रघुनाथ सों ॥१३॥

टिप्पणी—'बीसबाहु' कहने का तात्पर्य यह है कि उसको अपने बल का बड़ा घमंड था, अब हमारी रक्षा क्यों नहीं करता ? 'दसमाथ' से उसकी बुद्धि की ओर लक्ष्य है। **लाइ लेत क्यों न हाथ सों**=अपने हाथ का सहारा देकर क्यों नहीं बचाते ? **भोड़े**=बेहूदो। **बादि**=व्यर्थ। **साल**=चीड़ का वृक्ष। **बालिसौ**=(सं० बालिश) मूर्खो, छोकड़ो।

भावार्थ—राक्षसियाँ जो रावण की रानियाँ थीं बिलख-बिलखकर कहती है कि हाय-हाय ! कोई हमारी यह दशा बड़े पराक्रमी और बुद्धिमान् रावण से कह दे। क्यों रे मेघनाद, क्यों रे महोदर, तुम हमको धीरज क्यों नहीं देते, हमारा हाथ पकड़कर इस आग से निकालते क्यों नहीं हो ? क्यों रे अतिकाय, क्यो रे अकंपन, अरे अभागो, अरे बेहूदो, स्त्रियों को छोड़कर क्यों भागे जा रहे हो ? तुम लोगों ने चीड़ के वृक्ष की तरह बड़ी-बड़ी भुजाओं को व्यर्थ ही बढ़ाया है। हे मूर्खो, क्या इसी बल से रामचन्द्रजी से विरोध कर अपना कल्याण चाहते हो ?

हाट, बाट, कोट-ओट अट्टनि, अगार, पौरि,
खोरि-खोरि दौरि-दौरि दीन्हीं अति आगि है।
आरत पुकारत, सँभारत न कोऊ काहू,
ब्याकुल जहाँ सो तहाँ लोग चले भागि हैं :
बालधी फिरावै बार-बार झहरावै, झरैं
बूँदिया सी, लंक पघिलाइ पाग, पागिहै।
'तुलसी' बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
'चित्रहू के कपि सों निसाचर न लागिहैं' ॥१४॥

टिप्पणी—हाट = बाजार। बाट = मार्ग। कोट-ओट = किले की आड़ में। अटनि = अटारियों पर। अगार = (सं० आगार) घर। पौरि = बरोठा, देहरी। खोरि-खोरि = गली-गली में। आरत = (सं० आर्त) दुःखित होकर। बालधी = पूँछ। झहरावै = झटकारते हैं। बूँदिया = एक प्रकार की मिठाई। पागिहै = डुबावेंगे (पाग में)। न लागिहै = छेड़छाड़ न करेगा।

भावार्थ—हनुमानजी ने बाजार में, मार्गों में, किले की आड़ में, अटारियों में, बरोठों में, गली-गली में दौड़-दौड़कर भयंकर आग लगा दी। सब आर्तनाद करने लगे। कोई किसी को नहीं संभालता था। सब लोग व्याकुल होकर इधर-उधर भागने लगे। हनुमानजी पूँछ फिराकर बार-बार झटकारते थे, जिससे चिनगारियाँ बूँदियों की तरह झड़ती थीं और सोने की लंका पिघलाकर पाग में डुबाई जाती थी। तुलसीदास कहते हैं कि यह देखकर सब राक्षसी घबड़ाकर कहने लगीं कि आज से कोई राक्षस चित्र के वानर से भी छेड़छाड़ न करेगा।

लागि-लागि आगि, भागि-भागि चले जहाँ-तहाँ
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार, बसन उघारे, धूम-धुंध-अंध,
कहैं बारे बूढ़े 'बारि-बारि' बार-बारहीं।
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंदि-खौंदि डारहीं।
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति,
'तात तात ! तौंसियत, झौंसियत झारहीं' ॥१५॥

टिप्पणी—धीय = पुत्री। बार = बाल, केश। धूम-धुंध-अंध = धुएँ की धुंधकार से अंधे हो गये। बारे = बालक। बारि = जल। घहराना = चिंघाड़ना। पेलि = बलात्। रौंदि = पैरों से कुचलकर। खौंदि = घायल करते हैं। चिलात = चिल्लाते है। बिललात = बिलबिलाना। तौंसियत = तौंसना, प्यासों मरना, तृषित होना। झौंसियत = झुलसना। झार = लपट।

भावार्थ—'आग लग गई', 'आग लग गई' ऐसा कहते हुए सब लोग जहाँ-तहाँ भागे। न माता अपनी लड़की को, न बाप अपने लड़के को सँभालते थे। बाल बिखर गये, वस्त्र खुल गये, धुएँ की धुंधकार से सब अंधे हो गये। बालक से बुड्ढे तक सब बार-बार 'पानी, पानी' चिल्लाने लगे। घोड़े हिनहिनाते हुए भाग गये। हाथी चिंघारने लगे और बड़ी भारी भीड़ को बलपूर्वक ठेलकर, अपने पैरों से कुचलकर घायल कर दिया। एक-एक का नाम ले-लेकर चिल्लान

लगी और बिलबिलाते हुए अत्यंत घबड़ाकर पुकारते हैं—'हे तात, हे तात, हम प्यासे हैं, हम जले जाते हैं।'

लपट कराल ज्वालजालमाल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने पहिचानै कौन काहि रे?
पानी को ललात, बिललात, जरे गात जात,
परे पाइमाल जात, भ्रात! तू निबाहि रे।
प्रिया तू पराहि, नाथ नाथ! तू पराहि, बाप
बाप! तू पराहि, पूत पूत! तू पराहि रे।
'तुलसी' बिलोकि लोग ब्याकुल बिहाल कहैं,
'लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे' ॥१६॥

टिप्पणी—**ज्वालजालमाल**=अग्नि की ज्वालाओं का घना समूह। **दहूँ**=दसों। **ललात**=इच्छुक होना। **गात**=(सं० गात्र) शरीर। **पाइमाल** (अ०)=पददलित होना, नष्ट होना। **निबाहि**=उबारो, बचाओ। **पराहि**=पलायन करो, भाग जाओ। **बिहाल**=बेसुध, परेशान। **चाहि**=देखना। **चख**=(सं० चक्षु) आँख।

भावार्थ—दसों दिशाओं में अग्नि की ज्वालाएँ और भयंकर लपटें फैल गईं। सब लोग धुएँ से घबड़ा गये। कौन किसको पहचाने? (अर्थात् कोई किसी को नहीं पहचानता था) कोई प्यास के मारे पानी के इच्छुक हैं, कोई कराहते हैं, किसी का शरीर जला जाता है। सब नष्ट हुए जाते हैं और पुकारते हैं कि हे भाई, हमको उबारो। पति स्त्री से कहता है कि हे प्रिया, तू भाग जा। स्त्री अपने स्वामी से कहती है कि नाथ, आप भाग जाइए। पुत्र अपने पिता से कहता है कि पिताजी, आप भाग जाइए। पिता अपने पुत्र से कहता है कि पुत्र, तुम भाग जाओ। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसी दशा देखकर सब लोग व्याकुल और परेशान होकर कहते हैं कि अब रावण अपनी करतूत का फल बीसों आँखों से देख ले।

बीथिका बाजार प्रति अटनि अगार प्रति,
पँवरि पगार प्रति, बानर बिलोकिए।
अध ऊर्ध्व बानर, बिदिसि दिसि बानर हैं,
मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकिए।
मूँदे आँखि हीय में, उघारे आँखि आगे ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ-तहाँ और कोऊ को किए।
'लेहु अब लेहु, तब कोऊ न सिखायो मानो,
सोइ सतराइ जाइ जाहि-जाहि रोकिए' ॥१७॥

टिप्पणी—**बीथिका** (सं०) = गलियों में। **अटनि** = अटारियों में। **अगार** = (सं० आगार) घर। **पँवरि** = बरोठा, देहरी। **पगार** = (सं० प्राकार) दीवार। **तिलोकिए** = (सं० त्रिलोक) तीनों लोकों में। **और कोऊ** = अन्य कोई व्यक्ति। **को किए** = कौन बना सकता है। **और कोऊ को किए** = कौन कह सकता है कि जिसे तुम सर्वत्र देखते हो वह कोई अन्य व्यक्ति है, वानर नहीं है। **लेहु अब लेहु** = अब अपनी करनी का फल भोगो। **सतराइ जाइ** = चिढ़ जाता था।

भावार्थ—गलियों में, बाजारों में, अटारियों में, घरों में, दरवाजों में, दीवारों में, सर्वत्र वानर ही वानर दृष्टिगोचर होते हैं। नीचे वानर, ऊपर वानर, इधर वानर, उधर भी वानर, मानो त्रिलोक ही वानरों से भर गया है। जो डर के मारे आँखें बंद करते हैं उनके ध्यान में भी वानर ही दिखलाई देते हैं। (हृदय में वानर को देखकर) आँखें खोलते हैं तो सामने वानर खड़े दिखलाई देते हैं। भयभीत होकर जहाँ-कहीं दौड़ जाते हैं वहाँ वानर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिखलाई देता है। कोई-कोई कहते हैं कि तब हमारा कहना किसी ने न माना। जिस-जिस को रोकते थे वही चिढ़ जाता था; अब अपनी करतूत का फल भोगो।

एक करैं धौज, एक कहैं काढ़ौ सौंज,
एक औंजि पानी पी कै कहैं, 'बनत न आवनो'।
एक परे गाढ़े, एक डाढ़त ही काढ़े, एक
देखत हैं ठाढ़े, कहैं 'पावक भयावनो'।
'तुलसी' कहत एक 'नीके हाथ लाए कपि,
अजहूँ न छाँड़ै बाल गाल को बजावनो'।
धाओ रे, बुझाओ रे कि बावरे हौ रावरे या
औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो' ॥१८॥

टिप्पणी—**धौज** = दौड़-धूप। **काढ़ौ** = निकालो। **सौंज** = सामग्री। **औंजि** = ऊमस से घबराकर। **औंजियाना** = घबराता (यह शब्द अब भी बलिया की तरफ प्रचलित है)। **परे गाढ़े** = विपत्ति में पड़े हैं। **नीके हाथ लाये कपि** = (व्यंग है) बड़े अच्छे (मुबारक) हाथों से वानर को पकड़ लाए थे। **बाल** = छोकरा। **गाल बजाना** = बकबक करना, डींग मारना। **न बुझावै सिंध सावनो** = जिसको समुद्र और श्रावण की वर्षा भी नहीं बुझा सकते। **अलंकार**—चौथे पाद में 'भेदकातिशयोक्ति'।

भावार्थ—कोई आग बुझाने के प्रयत्न में दौड़-धूप करते हैं। कोई कहते हैं कि सामान बाहर निकालो। कोई ऊमस से घबराकर पानी पीकर कहते हैं

कि हमसे नहीं आया जाता । कोई विपत्ति में पड़े हैं । कोई जलते हुए निकाले गये हैं । कोई खड़े-खड़े देखते हैं और कहते हैं कि आग बड़ी भयंकर है । कोई व्यंग से मेघनाद से कहते हैं कि बड़े शुभ हाथों से वानर को पकड़ लाये थे न ? अब भी लड़का 'डींग मारना नहीं छोड़ता' । कोई चिल्लाते हैं— 'दौड़ो रे दौड़ो, बुझाओ रे बुझाओ, क्या तुम लोग बावले तो नहीं हो गये ? या यह और ही प्रकार की आग लगी है जिसे समुद्र और श्रावण की वर्षा भी नहीं बुझा सकते हैं ?'

कोपि दसकंध तब प्रलय-पयोद बोले,
रावन रजाइ धाइ आए जूथ जोरि कै ।
कह्यो लंकपति 'लंक बरत बुताओ बेगि,
बानर बहाइ मारो महा बारि बोरि कै' ।
'भले नाथ !' नाइ माथ चले पाथ-प्रद-नाथ,
बरषैं मुसलधार बार-बार घोरि कै ।
जीवन तें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी,
'तुलसी' भभरि मेघ भागे मुख मोरि कै ॥१९॥

टिप्पणी—प्रलय-पयोद = प्रलयंकारी बादल, वे बादल जो प्रलयकाल में बरसते हैं । **बोले** = बुलाया । **रजाइ** = (राजा-आयसु) राजा की आज्ञा । **जूथ जोरि कै** = समूह बनकर । **बरत** = जलती हुई । **बुताओ** = बुझाओ । **बोरि कै** = डुबाकर । **पाथ-प्रद-नाथ** = (पाथ = जल, प्रद = देने वाले, अर्थात् बादल) बादलों के स्वामी अर्थात् बड़े-बड़े बादल । **घोरि कै** = गर्जन कर । **जीवन** = जल । **चपरि** = फुर्ती से । **भभरि** = डरकर ।

भावार्थ—जब आग किसी तरह न बुझी तब रावण ने क्रोध करके प्रलय-कारी बादलों को बुलाया । रावण की आज्ञा से सब झुण्ड बनाकर दौड़े आये । रावण ने कहा कि जलती हुई लंका को शीघ्र बुझाओ । बड़ी भारी जलधारा वर्षा कर वानर को बहा दो । 'जो आज्ञा महाराज' कहकर वे बड़े-बड़े बादल प्रणाम करके चले और खूब गरज-गरजकर मूसलाधार पानी बरसाने लगे । जल से आग और भी जलने लगी । लपटें फुर्ती से चौगुनी ऊँची उठ गईं । सब बादल डरकर पीठ दिखाकर लाचार होकर भाग गये ।

इहाँ ज्वाल जरे जात, उहाँ ग्लानि गरे गात,
सूखे सकुचात सब कहत पुकार हैं ।
'जुग-षट भानु देखे' प्रलय-कृसानु देखे,
सेष-मुख-अनल बिलोके बार-बार हैं ।

'तुलसी' सुन्यो न कान सलिल सर्पी समान,
अति अचरज कियो केसरी-कुमार हैं।
बारिद-बचन सुनि धुने सीस सचिवन्ह,
कहैं 'दससीस-ईस-बामता-बिकार हैं ॥२०॥

टिप्पणी—गात = (सं० गात्र) शरीर। जुग-षट = (सं० युगषट्) बारह। कृसानु = (सं० कृशानु) अग्नि। सेष-मुख-अनल = शेषनाग के मुख की अग्नि। सर्पी = घृत। अचरज = आश्चर्य। बामता = प्रतिकूलता। बिकार = बुरा फल। दससीस-ईस-बामता-बिकार = रावण के ईश्वर के प्रतिकूल होने का परिणाम है।

भावार्थ—बादल इधर तो अग्नि की ज्वाला से जले जाते हैं उधर अपनी असमर्थता के कारण उनके शरीर ग्लानि से गले जाते हैं। सब सूख गये है और सकुचाकर पुकार-पुकारकर कहते हैं कि हमने (प्रलयकाल के समय) बारहो सूर्य भी देखे, प्रलयकाल की अग्नि भी देखी और अनेक बार शेषनाग के फुकार की आग भी देखी, पर ऐसी अग्नि का नाम कभी सुनने में भी नहीं आया जिसमें पड़ने से जल भी घी के समान जलता है। हनमान ने बड़ा अद्भुत काम किया है। बादलों के वचन सुनकर मन्त्री सिर पीटकर कहते हैं कि यह आग नहीं है, वरन् यह ईशविमुख रावण के प्रति ईश्वर का कोप है।

'पावक' पवन, पानी, भानु, हिमवान, जम,
काल, लोकपाल मेरे डर डाँवाँडोल हैं।
साहिब महेस सदा, संकित रमेस मोहिं,
महातप साहस बिरंचि लीन्हें मोल हैं।
'तुलसी' तिलोक आज दूजो न बिराजै राजा,
बाजे बाजे राजन के बेटा-बेटी ओल हैं।
को है ईस-नाम को? जो बाम होत मोहू सो को,
मालवानरावरे के बावरे से बोल हैं ॥२१॥

टिप्पणी—पावक = अग्नि। हिमवान = चंद्रमा। जम = यम। डाँवाँडोल = कंपायमान। साहिब = स्वामी। संकित = (शंकित) भयभीत। रमेस = (रमा + ईश) विष्णु भगवान्। महातप साहस = बड़ी भारी तपस्या और साहस थे। बिरंचि = ब्रह्मा। तिलोक = (सं०) त्रिलोक। ओल = रेहन, गिर्वी, प्रतिबंध, किसी को अपने किसी प्रिय प्राणी को दूसरे के पास इसलिए रख छोड़ना कि यदि वह प्रतिज्ञा पूरी न करे तो दूसरा उस प्राणी के साथ जो चाहे सो करे। को है इस नाम? = ऐसा ईश्वर नाम वाला कौन है? (जो मेरे प्रतिकूल होवे)। बाम = विरुद्ध, प्रतिकूल। अन्वय = जो मोहू को बाम होत सो को? मालवान = माल्यवान् नामक रावण का मन्त्री। रावरे के = तुम्हारे।

भावार्थ—अपने मंत्रियों के 'दससीस-ईस-बामता-बिकार है' ये वचन सुनकर रावण कहने लगा कि मेरे भय से अग्नि, वायु, जल, सूर्य, चन्द्र, यम, काल और समग्र लोकपाल कम्पित रहते हैं। मेरे स्वामी महादेवजी सदा मेरी रक्षा करते हैं। विष्णु मुझसे डरते रहते हैं। अपनी तपस्या और पराक्रम से मैंने ब्रह्मा को भी मोल ले लिया है अर्थात् ब्रह्मा भी मेरे अधीन रहते हैं। तीनों लोकों में मेरे समान दूसरा राजा भी इस समय कोई नहीं है, किसी-किसी राजा के तो लड़की-लड़के मेरे पास रेहन रखे हैं। ईश्वर नामधारी ऐसा कौन है जो मुझसे प्रतिकूल हो ? हे माल्यवान्, तुम्हारे वचन तो पागलों के से हैं।

'भूमि भूमिपाल, ब्यालपालक पताल, नाकपाल,
लोकपाल जेते सुभट-समाज हैं।
कहै मालवान जातुधानपति रावरे को
मनहूँ अकाज आनै ऐसो कौन आज है ?
राम-कोह पावक, समीर सीय-स्वास, कीस
ईस-बामता बिलोकु, बानर को ब्याज है।
जारत प्रचारि फेरि-फेरि सो निसंक लंक,
'जहाँ बाँको बीर तो सो सूर-सिरताज है' ॥२२॥

टिप्पणी—**ब्याल** = सर्प। **ब्यालपालक** = शेषनाग, वासुकि, तक्षक आदि। **सुभट** = बड़े-बड़े योद्धा। **रावरे को** = आप का। **मनहूँ** = मन में भी। **अकाज** = बुरा। **अकाज आनै** = बुराई ताके। **राम-कोह पावक** = रामचंद्रजी का क्रोध ही अग्नि है। **समीर सीय-स्वास** = सीता के श्वास ही (उस आग को सुलगाने को) हवा है। **कीस** = (सं० कीश) वानर, हनुमान। **ईस-बामता** = ईश्वर की प्रतिकूलता। **ब्याज** = बहाना। **प्रचारि** = ललकारकर। **तो सो** = तुम्हारे समान। **सूर-सिरताज** = शूरों में श्रेष्ठ।

भावार्थ—माल्यवान् कहता है, 'हे राक्षसराज रावण, पृथ्वी पर के राजा, पाताल के नागराज, स्वर्ग के अधिपति, लोकपाल और जितने भी बड़े-बड़े योद्धाओं के समाज हैं उनमें से कोई मन से भी आपका अपकार करने की सोचे ऐसा आज कौन है ? अर्थात् कोई नहीं। परन्तु यह रामचंद्रजी के क्रोध की अग्नि है जो सीताजी के विरह की श्वासरूपी वायु से और भी प्रचंड हो जाती है। इसको वानर के बहाने ईश्वर का क्रोध समझो। इसी से तो तुम्हारे समान शूर शिरोमणि और बाँके वीर के होते हुए ललकारकर और निर्भय होकर यह कपि लंका में घूम-घूमकर लंका को जला रहा है।

पान, पकवान बिधि नाना को, सँधानो सीधो,
बिबिध बिधान धान बरत बखार हीं।
कनककिरीट कोटि, पलँग, पेटारे, पीठ,
काढ़त कहार, सब जरे भरे भार हीं।
प्रबल अनल बाढ़े, जहाँ काढ़े तहाँ डाढ़े,
झपट लपट भरे भवन भँडार हीं।
'तुलसी' अगार न पगार न बजार बच्यो,
हाथी हथिसार जरे, घोरे घोरसार हीं ॥२३॥

टिप्पणी—पान = पीने की वस्तु। पकवान = पक्व + अन्न। सँधानो = अचार, चटनी। सीधो = आटा, दालादि। बिबिध बिधान = अनेक प्रकार के। धान = (सं० धान्य) अनाज। बरत = जलते हुए। बखार = काठ के बड़े-बड़े कोठिला जिनमें अनाज भरा जाता है। कनक = सोना। किरीट = मुकुट। पीठ = पीढ़ा, पाटा, काष्ठासन। भार हीं = बोझ में ही। अनल = आग। हथिसार = हस्तिशाला। घोरसार = घुड़साल।

भावार्थ—पेय पदार्थ, अनेक प्रकार के पकवान, अचार-चटनी, सीधा और अनेक प्रकार के अनाज बखार में भरे हुए ही जलते हैं। करोड़ों सोने के मुकुट, पलँग, पेटारे और पीढ़े सब निकालते हुए कहार लोग बोझ में भरे ही जलते हैं। बड़ी तेज आग बढ़ गई, घर और भंडार में लपटें झपटने लगीं। असबाब को निकालकर जहाँ रखा वहीं जल गया। तुलसीदास कहते हैं कि घर, बाहर, बाजार कुछ भी न बचने पाया, हाथी हस्तिशाला में और घोड़े घुड़साल में ही भस्म हो गये।

हाट बाट हाटक पिघिलि चलो घी सो घनो,
कनक-कराही लंक तलफति ताय सों।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
पागि-पागि ढेरी कीन्हीं भली भाँति भाय सों।
पाहुने कृसानु पवमान सो परोसो,
हनुमान सनमानि कै जेंवाए चित चाय सों।
'तुलसी' निहारि अरिनारि दै-दै गारि कहैं,
'बावरे सुरारि बैर कीन्हों रामराय सों' ॥२४॥

टिप्पणी—हाट = (सं० हट्ट) बाजार। हाटक = (सं०) सोना। पिघिलि चलो = बह चला। घनो = बहुत। कनक-कराही = सोने की कड़ाही (पकवान बनाने का पात्र)। तलफति = तप रही है। ताय = ताप, गर्मी। पागि-पागि = पाग में डुबाकर। पवमान = आँधी, यहाँ 'वायु' से तात्पर्य है। परोसो = परोसने

वाला । जेंवाए = भोजन कराया । चाय सों = आनंद से । अरिनारि = शत्रु अर्थात् राक्षसों की स्त्रियाँ । गारि = गाली । अलंकार—रूपक ।

भावार्थ—बाजारों में, मार्ग में सोना पिघलकर बहुत घी के समान बह चला है । लंका मानो सोने की कड़ाही है और गर्मी के कारण तप रही है सब बलवान राक्षस अनेक प्रकार के पक्वान्न हैं । उन्हें अच्छे प्रकार बड़े प्रेम से पाग में डुबा-डुबाकर ढेर लगा दिया है, अग्नि पाहुना है । वायु परोसनेवाले हैं । हनुमान चित्त में आनंदित होकर बड़े सम्मान से भोजन कराते हैं । तुलसीदास कहते हैं कि यह देखकर शत्रु की स्त्रियाँ गाली दे-दे कर कहती हैं कि पागल रावण ने रामचंद्रजी से वैर किया (यह सब उसी का फल है) इस छंद का भाव यही है कि आँधी के झोंके से राक्षस लोग आग में गिर-गिर भस्म हो रहे हैं ।

> **रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट-उर,**
> **दिन दिन बिकल सकल-सुख-राँक सो ।**
> **नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,**
> **होत न बिसोक, ओत पावै न मनाक सो ।**
> **राम की रजाय तें रसायनी समीर-सूनु,**
> **उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो ।**
> **जातुधान बुट, पुटपाक लंक जातरूप,**
> **रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो ।।२५।।**

टिप्पणी—**राजरोग** = राजयक्ष्मा, क्षयरोग । **बिराट-उर** = विराट् पुरुष के हृदय में । **सकल-सुख-राँक** = सब सुखों से रंक (दरिद्र) । **उपचार** = उपाय, औषधि । **बिसोक** = विगत शोक, शोकरहित । **ओत** = बीमारी में कुछ आराम, चैन । **मनाक** = थोड़ा । **रजाय** = रजायसु, राजाज्ञा । **रसायनी** = रसायन विद्या को जानने वाला, रसवैद्य । **समीर-सूनु** = हनुमान । **सूनु** = (सं०) सुवन, पुत्र । **पयोधि** = समुद्र । **सोधि** = शुद्ध करके । **सरवाक** = (सं० शराव) सरवा, मिट्टी का दीया जिसमें रख के रस फूँके जाते हैं । **बुट** = बूटी । **पुटपाक** = दवाओं से बना गोला जो आग में फूँका जाता है । **जातरूप** = सोना । **रतन** = रत्न । **जतन** = यत्नपूर्वक । **मृगांक** = सोने का भस्म । (एक रसौषधि विशेष) । **अलंकार**—रूपक ।

भावार्थ—विराट् पुरुष के हृदय में रावण रूप राजयक्ष्मा बढ़ने लगा, जिससे वह सब सुखों से हीन होकर प्रतिदिन व्याकुल रहता था । देवता, सिद्ध और मुनिजन अनेक प्रकार की औषधि करके हार गये. पर विराट् पुरुष का

रोग न छूट सका और थोड़ा भी आराम नहीं हुआ। रामचंद्रजी की आज्ञा रसवैद्य हनुमान ने समुद्र पार उतर कर मरवा को ठीक करके, राक्षसरूप बूटियों के रस से लंका के सोने और रतनों का पुटपाक बनाकर और यत्न उसे जलाकर मृगांक नामक रस बना डाला।

> जारि-बारि कै बिधूम, बारिधि बुताइ लूम,
> नाइ माथो पगनि, भो ठाढ़ो कर जोरि कै।
> 'मातु ! कृपा कीजे, सहदानि दीजे, सुनि सीय,
> दीन्ही है असीस चारु चूड़ामनि छोरि कै'।
> 'कहा कहौं, तात ! देखे जात ज्यों बिहात दिन,
> बड़ी अवलंब ही सो चले तुम तोरि कै'।
> 'तुलसी' सनीर नैन, नेह सो सिथिल बैन,
> बिकल बिलोकि कपि कहत निहोरि कै ॥२६॥

टिप्पणी—जारि-बारि = जलाकर, अच्छी तरह जलाकर। कै बिधूम = खाक करके। बुताइ = बुझाकर। लूम = पूँछ। माथो = मस्तक। नाइ = झुकाकर। पगनि = पैरों पर। सहदानि = पहचान का चिह्न। बिहात = बीतते हैं। अवलंब ही = अवलंब थी। नैन = नयन। नेह = स्नेह। बैन = (सं०) वचन, (प्रा० बअन)। सिथिल बैन = गद्गद वचन से।

भावार्थ—लंका को जला कर खाक कर दिया और अपनी पूँछ को समुद्र में बुताकर, सीताजी के चरणों में सिर झुकाकर हाथ जोड़ के खड़े हुए और कहने लगे कि हे माता कृपाकर मुझे कोई चिह्न दीजिए (जिससे मेरा आप से मिलना प्रमाणित हो)। यह सुनकर सीताजी ने सुन्दर आशीर्वाद देते हुए चूड़ामणि उतार कर दी और कहा कि हे तात, मैं तुमसे क्या कहूँ ? जिस प्रकार मेरे दिन बीत रहे हैं वह तुम देखे जाते हो। तुम्हारा सहारा पाया था, वह भी आज तुम तोड़कर चले जा रहे हो। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा कहते हुए सीताजी की आँखें भर आईं और वचन स्नेह के कारण गद्गद हो गये। सीताजी को इस प्रकार व्याकुल देखकर हनुमानजी निहोरा करके अर्थात् अत्यंत नम्र वाणी से बोले—

> 'दिवस छ सात जात जानिबे न, मातु धरु,
> धीर, अरि अंत की अवधि रही थोरि कै।
> बारिधि बँधाय सेतु ऐहैं भानुकूल-केतु,
> सानुज कुसल कपि-कटक बटोरि कै।'
> बचन बिनीत कहि सीता को प्रबोध करि,
> 'तुलसी' त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै।

'जै जै जानकीस दससीस-करि-केसरी'
कपीस कूद्यो, बातघात बारिधि हलोरि कै ॥२७॥

टिप्पणी—अंत की अवधि = मृत्यु का समय। थोरि कै = थोड़ी ही। सेतु = पुल। भानुकूल-केतु = सूर्यकुल की ध्वजा-स्वरूप, अर्थात् सूर्यकुल में श्रेष्ठ। कटक = सेना। बटोरि = एकत्र। प्रबोध कर = समझा-बुझाकर, सांत्वना देकर। त्रिकूट = पर्वत का नाम। डफोरि कै = हाँक देकर, ललकार कर। दससीस-करि-केसरी = रावणरूपी हाथी को नाश करने के लिए सिंह के समान। बातघात = हवा के आघात से। हलोरि कै = लहरें उठाकर।

भावार्थ—हनुमानजी सीताजी से कहते हैं कि हे माता! धैर्य धारण करो। अब शत्रु रावण का मृत्युकाल समीप है। छः-सात दिन, अर्थात् थोड़े दिन बीतते कुछ देर नहीं लगती। रामचंद्रजी शीघ्र ही कुशलपूर्वक वानरों की सेना एकत्र कर भाई लक्ष्मण सहित समुद्र में पुल बाँधकर आवेंगे। तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकार नम्र वचन कहकर और सीताजी को आश्वासन देकर त्रिकूट पर्वत पर चढ़कर बड़े ऊँचे स्वर से "रावणरूपी हाथी को मारने के लिए सिंह के समान जानकीपति रामचंद्र की जय हो!" ऐसा कहते हुए और अपने वेग की वायु से समुद्र में लहरें उठाते हुए हनुमानजी समुद्र के उस पार कूद गये।

साहसी समीरसूनु नीरनिधि लंघि, लखि
लंक, सिद्धिपीठि निसि जागो है मसान सो।
तुलसी बिलोकि महासाहस प्रसन्न भई
देवी सीय सारिखी, दियो है बरदान सो।
बाटिका उजारि, अच्छ-धारि मारि, जारि गढ़,
भानुकूल-भानु को प्रताप-भानु भानु सो।
करत बिसोक लोक-कोकनद, कोक-कपि,
कहै जामवंत आयो-आयो हनुमान सो ॥२८॥

टिप्पणी—साहसी = मसान जगाने में अनेक विघ्न-बाधाएँ होती हैं, अनेक भयों का सामना करना पड़ता है; अतः साहसी होना आवश्यक है। सिद्धि-पीठि = जिस स्थान पर मंत्र सिद्ध हो जाते हों। मसान = (सं०) श्मशान। मसान जागो है = अमावस्या अथवा पौर्णमासी के दिन श्मशान में जाकर किसी मुर्दे को आधा जल में और आधा जमीन में रखते हैं। तब उस मुर्दे की छाती पर चढ़कर कोई मंत्र जपा जाता है। इसमें अनेक विघ्न-बाधाएँ आती हैं। अगर कोई साहसी उन विघ्न-बाधाओं से विचलित न होकर पुरश्चरण पूरा कर दे तो श्मशान की देवी प्रसन्न होकर मन इच्छित वरदान देती है। इसी को 'मसान जगाना' कहते हैं सारिखी = सदृशी समान —

(रावण का पुत्र) की सेना। **बिसोक**=शोकरहित । **कोकनद**=कमल। **लोक**=लोग । **कोक**=चक्रवाक । **अलंकार**—उपमा और रूपक का संकर।

भावार्थ—साहसी हनुमानजी ने समुद्र पार कर और लंका को सिद्धपीठ जानकर रात को मसान जगाया। तुलसीदास कहते हैं कि उनके बड़े साहस को देखकर सीताजी के समान देवी प्रसन्न हुई, और वह वरदान दिया जिससे हनुमान ने वाटिका उजाड़ दी और ससैन्य अक्षयकुमार को मारकर लंकागढ़ जला दिया। ऐसे हनुमान को आते देखकर जामवन्त कहता है कि सूर्यकुल के प्रकाशक सूर्य रामचन्द्रजी के प्रतापरूपी सूर्य का सूर्य हनुमान, सब मनुष्य रूपी कमलों को शोकरहित करता हुआ अर्थात खिलाता हुआ और वानररूप चकवों को प्रसन्न करता हुआ आ रहा है। (भाव यह है कि जैसे सूर्य के उदय होने पर कमल खिल जाते हैं, और चक्रवाक चक्रवाकी से संयोग होने के कारण प्रसन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार हनुमानजी को लंका से लौटते देखकर सब लोग और हनुमानजी की प्रतीक्षा में समुद्र-तट पर बैठे हुए वानर और रीछ प्रफुल्ल हुए।)

गगन निहारि, किलकारी भारी सुनि,
हनुमान पहिचानि भए सानंद सचेत हैं।
बूड़त जहाज बच्यो पथिक समाज मानो
आजु जाए जानि सब अंकमाल देत हैं।
'जै जै जानकीस जै जै लखन कपीस' कहि
कूदैं कपि कौतुकी, नचत रेत रेत हैं।
अंगद मयंद नल नील बलसील महा,
बालधी फिरावैं मुख नाना गति लेत हैं ॥२९॥

टिप्पणी—**निहारि**=देखकर। **सचेत**=सावधान (अब तक 'अचेत' थे)। **बूड़त**=बूड़ते हुए (वर्णविपर्यय से 'डूब' का 'बूड़' हो गया)। **आजु जाए जानि**=आज से नया जन्म हुआ ऐसा जानकर। **अंकमाल देना**=आलिंगन करना। **कपीस**=सुग्रीव। **रेत रेत**=समुद्र तट पर ठौर-ठौर। **मुख नाना गति लेत हैं**=मुख अनेक प्रकार से बनाते हैं। ये सब आनन्द की मुद्राएँ हैं।

भावार्थ—सब बंदरों और रीछों ने बड़ी भारी किलकार सुनकर जो आकाश की ओर देखा तो हनुमानजी को पहचान कर उनको होश आया और वे ऐसे प्रसन्न हुए जैसे डूबते हुए जहाज को बचते देखकर पथिक लोग प्रसन्न होते हैं। मानो आज से हमारा पुनर्जन्म हुआ, ऐसा विचार कर सब एक दूसरे से गले मिलने लगे। कौतुकी वानर 'जानकीपति रामचन्द्रजी की जय लक्ष्मण की जय

सुग्रीव की जय' कहते हुए कूदने लगे; और समुद्र-तट पर जगह-जगह नाचने लगे अंगद, मयंद, नल, नील आदि महाबलवान् वानर आनन्द में मग्न हो अपनी पूँछे घुमाने लगे और मुख से अनेक प्रकार की (आनन्दसूचक) आकृतियाँ बनाने लगे।

आयो हनुमान प्रान-हेतु, अंकमाल देत,
लेत पग-धूरि, एक चूमत लँगूल हैं।
एक बूझें बार बार सीय समाचार, कहे
पवन कुमार, भो बिगतश्रमसूल हैं।
एक भूखे जानि आगे आनें कंद मूल फल,
एक पूजे बाहुबल तोरि मूल फूल हैं।
एक कहैं 'तुलसी' सकल सिधि ताके जाके
कृपापाथनाथ सीतानाथ सानुकूल हैं ॥३०॥

टिप्पणी—**प्रान-हेतु**=कपियों के प्राण बचाने के कारण (अगर हनुमान-जी लंका से सीताजी का समाचार न लाते तो या तो सुग्रीव उनको मरवा देता या वे स्वयं लज्जावश प्राण त्याग कर देते)। **लँगूल**=पूँछ। **बिगतश्रमसूल**=परिश्रम के कष्ट से रहित। **पूजे बाहुबल**=वीर पुरुष की भुजाएँ पूजकर उसका सम्मान किया जाता है। **सिधि**=सिद्धि। **सकल सिधि**=अष्ट सिद्धि। **कृपा-पाथनाथ**=कृपा-रूपी जल के अधिपति अर्थात् कृपासागर (रामजी)।

भावार्थ—सब कपियों के प्राण बचाने के कारण श्री हनुमानजी सीताजी का समाचार लेकर आए। कोई उनसे भुजा भरकर भेंटता है, कोई पैरों की धूलि अपने सिर पर चढ़ाता है, कोई पूँछ चूमता है। कोई बार-बार सीताजी के समाचार पूछता है। हनुमानजी सब वर्णन करते हुए अपने परिश्रम के कष्ट को भूल जाते हैं। कोई उनको भूखा जानकर कंदमूल-फल लाकर आगे रख देता है। कोई मूल फूल तोड़कर सम्मान प्रदर्शित करने के हेतु उनकी बलशाली भुजाओं को पूजते हैं। कोई कहते हैं कि दयासागर सीतापति रामचंद्रजी जिस पर अनुग्रह करते हैं उनको अणिमादि आठों सिद्धियाँ सुलभ हैं।

सीय को सनेहसील, कथा तथा लंक की,
चले कहत चाय सों, सिरानो पथ छन में।
कह्यो युवराज बोलि बानर-समाज, आजु,
खाहु फल सुनि पेलि पैठे मधुबन में।
मारे बागवान, ते पुकारत देवान गे,
'उजारे बाग अंगद' दिखाए घाय तन में।

कहैं कपिराज 'करि काज आए कीस,
तुलसीस की सपथ महामोद मेरे मन में' ॥३१॥

टिप्पणी—चाय सों=प्रेम से, आनंद से । **सिरानो**=समाप्त हो गया । **पथ**=(सं०) मार्ग । **छन**=(सं०) क्षण । **पेलि**=बलपूर्वक । **पैठे**=(प्रविष्ट) घुस गए । **मधुबन**=सुग्रीव के वन का नाम । **बागवान**=बाग के रक्षक । **दीवान**=कचहरी । न्यायसभा । **घाय**=घाव । **तुलसीस**=तुलसीदास के स्वामी रामचन्द्रजी । **सपथ**=(सं० शपथ) सौगंद । **मोद**=आनंद ।.

भावार्थ—हनुमानजी सीताजी का स्नेहशील स्वभाव और लंका की समस्त घटना आनंद से कहते हुए चले, जिससे ऐसा प्रतीत हुआ कि मार्ग थोड़ी ही देर में तय हो गया है । तब किष्किधा में पहुँचने पर युवराज अंगद ने सब वानरों को बुलाकर कहा कि आज फल खाओ । यह वचन सुनकर सब मधुबन में बल-पूर्वक घुस गए । मना करने पर बाग के रक्षकों को पीटने लगे । वे चिल्लाते हुए सुग्रीव की कचहरी में गये और शरीर में घाव दिखाकर कहने लगे कि अंगद ने बाग उजाड़ दिया । तब सुग्रीव कहने लगा कि ज्ञात होता है कि वानर काम सफल कर लाये । रामचंद्रजी की शपथ मेरे मन में तो बड़ा आनंद हो रहा है ।

नगर कुबेर को सुमेरु की बराबरी,
बिरंचि बुद्धि को बिलास लंक निरमान भो ।
ईसहि चढ़ाय सीस बीसबाहु बीर तहाँ,
रावन सो राजा रजतेज को निधान भो ।
'तुलसी' त्रिलोक की समृद्धि सौज संपदा
सकेलि चाकि राखी रासि, जाँगर जहान भो ।
तीसरे उपास बनबास सिंधुपास सो
समाज महाराज जू को एक दिन दान भो ॥३२॥

टिप्पणी—नगर कुबेर को=लंका पहले कुबेर की पुरी थी । पीछे रावण ने कुबेर से छीन ली । **सुमेरु की बराबरी**=सुमेरु के समान स्वर्णमय । **बिरंचि**=ब्रह्मा । **बिरंचि बुद्धि को बिलास**=ब्रह्मा की बुद्धि का चमत्कार, (**बिलास**=विस्तार) मानो ब्रह्मा की बुद्धि इतनी ही थी । **निरमान भो**=(निर्माण) बनाई गई । **ईसहि**=शिवजी को । **रजतेज को निधान**=रजोगुण प्रधान । **सौज**=सामग्री । **सकेलि**=बटोरकर । **चाकि राखी**=अन्न की राशि को जैसे किसान गोबर की रेखा से घेर देते हैं (जिससे चुराने का पता चल जाय) उसी प्रकार घेर रखा । **जाँगर**=अन्न झाड़ा हुआ डंठल । **जहान**=संसार । **उपास**=(उपवास) व्रत (यहाँ) निराहार ।

भावार्थ—लंका कुबेर की पुरी थी और स्वर्णमय होने के कारण सुमेरु की बराबरी करती थी। उस लंका के बनाने से ब्रह्मा की बुद्धि का पता चलता था (अर्थात् ब्रह्मा ने अपनी संपूर्ण बुद्धि खर्च करके लंका बनाई थी)। फिर रजोगुण-प्रधान पराक्रमी बीस भुजाओंवाला रावण महादेवजी को अपने सिर काट-काट अर्पण करके (उनके वरदान से अजित हो, कुबेर को लंका से भगा कर) वहाँ का राजा हुआ। तुलसीदास कहते हैं कि उसने तीनों लोकों की समृद्धि, सामग्री और संपत्ति बटोरकर लंका में चाक दी थी। सारा संसार उजाड़ (समृद्धि-संपदा से हीन) हो गया। रावण का यह ऐश्वर्य महाराज रामचंद्रजी को वनवास में समुद्र-तट पर तीन दिन निराहार रहने के उपरांत एक दिन का दान हुआ। (अर्थात् विभीषण को लंका का राजा बना दिया)।

लंकाकांड

"बड़े बिकराल भालु, बानर बिसाल बड़े,
'तुलसी' बड़े पहार ले पयोधि तोपिहैं।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड खंडि,
मंडि मेदिनी को मंडलीक-लीक लोपिहैं।"
लंक-दाहु देखे न उछाहु रह्यो काहुन को,
कहैं सब सचिव पुकारि पाँव रोपिहैं।
"बाचिहैं न पाछे त्रिपुरारि हू मुरारि हू के,
को है रन-रारि को जौ कौसलेस कोपिहैं?" ॥१॥

टिप्पणी—**बिकराल**=भयंकर। **तोपना**=पाटना, ठसाठस भर देना। **प्रबल प्रचंड**=अत्यंत प्रतापवान। **बरिबण्ड**=बलवान। **बाहुदंड**=रावण की भुजाएँ। **खंडि**=उखाड़कर। **मंडि**=भूषित करके। **मेदिनी**=पृथ्वी। **मंडलीक-लीक**=संपूर्ण भूमंडल को जीतने वाले रावण की मर्यादा। **लोपि**=लोपकर, मिटाकर। **उछाहु**=उछाह। **काहुन का**=किसी को। **सचिव**=मंत्री। **पाँव रोपि कहैं**=दृढ़ रूप से कहते हैं, प्रतिज्ञा करके कहते हैं। **त्रिपुरारि**=त्रिपुरासुर को मारनेवाले शिवजी। **मुरारि**=मुर नामक दैत्य के शत्रु, विष्णु भगवान्। **रारि को**=जूझने को, युद्ध करने को।

भावार्थ—लंकादाह देखकर किसी राक्षस में उत्साह न रहा। सब मंत्री विश्वासपूर्वक कहने लगे कि बड़े भयंकर रीछ और बड़े डीलडौल वाले वानर बड़े-बड़े पहाड़ों से समुद्र को पाट देंगे। रावण की प्रतापवान और बड़ी बलशाली भुजाओं को उखाड़कर वा काटकर पृथ्वी भर में फैला देंगे और उस त्रिभुवन-विजयी की मर्यादा को मिटा देंगे। पीछे (रामचंद्रजी के क्रोध करने पर) वह शिव या विष्णु के बचाए भी न बच सकेगा। जब रामचंद्रजी क्रोध करेंगे तो ऐसा कौन है जो युद्ध में रामचंद्रजी से जूझने को समर्थ होगा। (भाव यह कि युद्ध में रामचंद्रजी से कोई नहीं जीत सकेगा)।

त्रिजटा कहति बार बार तुलसीस्वरी सौं,
'राघौ बान एक ही समुद्र सातौ सोखिहैं।
सकुल सँघारि जातुधान-धारि, जंबुकादि,
जोगिनी जमाति कालिका-कलाप तोखिहैं।
राज दै नेवाजिहैं बजाइ कै बिभीषनें,
बजैंगे ब्योम बाजनें बिबुध प्रेम पोखिहैं।
कौन दसकंध, कौन मेघनाद बापुरो,
को कुंभकर्न कीट जब राम रन रोखिहैं' ॥२॥

टिप्पणी—**तुलसीस्वरी** = तुलसीदास की ईश्वरी अथवा स्वामिनी सीताजी। **राघौ** = (राघव) रघु से अपत्यवाच रघुवंशी रामचंद्रजी। **सोखिहैं** = सुखा देंगे। **सँघारि** = (सं० संहारि) मारकर, नाशकर। **धारि** = समूह। **जंबुकादि** = शृगाल, गृद्ध, चील आदि। **जमाति** = समूह। **कलाप** = समूह। **तोखिहैं** = संतुष्ट होंगे, तृप्त होंगे। **नेवाजिहैं** = रक्षा करेंगे। **बजाइ कै** = डंका बजाकर, सबको जनाकर। **ब्योम** = आकाश में। **बिबुध** = देवता। **पोखिहैं** = पुष्ट होंगे। **बापुरो** = बेचारा। **रोखिहैं** = क्रोध करेंगे। **कीट** = कीड़ा (तुच्छ)।

भावार्थ—त्रिजटा सीताजी से बार-बार कहती है कि रामचंद्रजी एक ही बाण से सातों समुद्र सुखा देंगे और कुल-सहित राक्षसों के समूह का नाशकर शृगाल, गृद्ध, चील, योगिनीगण और कालिकाओं के समूह को तृप्त करेंगे (अर्थात् रणभूमि में इतने राक्षस मारे जायँगे कि उनके रक्त को पीकर, मांस को खाकर और मुंडों की माला पहनकर योगिनियाँ, शृगालादि जंतु और कालिका अघा जाएँगी)। तब डंका बजाकर विभीषण को राज्य देकर उसकी रक्षा करेंगे। इससे देवतागण प्रेम से पुष्ट हो जाएँगे और आकाश में दुंदुभी बजेगी। जब रामचंद्रजी रणभूमि में क्रोध करेंगे तब फिर कौन रावण, कौन बेचारा मेघनाद

और कौन कीट-सम कुंभकर्ण अर्थात् फिर रावण, मेघनाद और कुंभकर्ण में से किसी की सामर्थ्य नहीं जो रामचंद्रजी से युद्ध कर सके।

> बिनय सनेह सों कहति सीय त्रिजटा सों,
> 'पाए कछू समाचार आरजसुवन के ?'
> 'पाए जू ! बँधायो सेतु, उतरे कटक कुलि,
> आए देखि देखि दूत दारुन दुवन के।
> बदन मलीन बलहीन दीन देखि मानो,
> मिटै घटै तमीचर-तिमिर भुवन के।
> लोकपति-कोक-सोक, मूँदे कपि-कोकनद,
> दंड द्वै रहे हैं रघु-आदित-उवन के' ॥३॥

टिप्पणी—**बिनय** = नम्रता से। **आरजसुवन** = (सं० आर्यसूनु) रामचन्द्रजी। (श्वसुर को 'आर्य' कहकर संबोधन किया जाता है। अतः अपने पति को स्त्रियाँ 'आर्यपुत्र' कहती हैं। आर्य का अर्थ है 'श्रेष्ठ'।) **दुवन** = (सं० दुर्जन) (प्रा० दुअन)। **दारुन** = कठिन। **तमीचर-तिमिर** = राक्षसरूपी अंधकार। **लोकपति-कोक-सोक** = चकवारूपी लोकपालों का शोक। **मूँदे** = संकुचित। **कोकनद** = कमल। **रघु-आदित** = रामरूपी सूर्य। **उवन के** = उदय होने को। **अलंकार**—यथासंख्य से पुष्ट रूपक।

भावार्थ—बड़ी नम्रता और स्नेह से सीताजी त्रिजटा से पूछती हैं कि क्या तुमने मेरे पति के कुछ समाचार पाये हैं। त्रिजटा उत्तर देती है कि हाँ जी, यह समाचार है कि उन्होंने समुद्र पर पुल बाँध लिया और सब सेना लेकर इस पार उतर आये हैं, यह सब हाल अति दुष्ट (रावण) के दूत ही देख आये हैं। यह हाल देखकर उन दूतों के चेहरे फक हो गये हैं और वे बलहीन और दुखी हो गये हैं और वे इस बात को मानने लगे हैं कि अब इस भुवन के निश्चररूपी अंधकार मिट जायेंगे और लोकपालरूपी चक्रवाकों तथा वानररूपी संकुचित कमलोंका शोक घट जायगा। (हे सीता धीरज धरो) अब रामरूपी सूर्य के उदय होने को केवल दो दंड (थोड़ा समय) बाकी है।

नोट—सावधानी से समझिए कि इस छंद में 'मिटे' क्रिया 'तिमिर' के लिए और 'घटे' क्रिया 'शोक' के लिए है और 'शोक' शब्द 'कोक' और 'कोकनद' दोनो के साथ अन्वित होगा। (अर्थात कोकों का शोक और कोकनदों का शोक नष्ट होगा)।

झूलना छंद

> सुभुज मारीच खर त्रिसिर दूषन बालि
> दलत जेहि दूसरो सर न सांध्यो।
> आनि परबाम विधिबाम तेहि राम सों,
> सकत संग्राम दसकंध कांध्यो।
> समुझि तुलसीदास कपि-कर्म घर घर घैरु,
> बिकल सुनि सकल पाथोधि बांध्यो।
> बसत गढ़ लंक लंकेस-नायक अछत,
> लंक नहिं खात कोउ भात रांध्यो ॥४॥

टिप्पणी—**सुभुज** = सुबाहु, ताड़का का पुत्र और मारीच का भाई। **दलत** = मारने में। **न सांध्यो** = धनुष पर बाण नहीं चढ़ाया। **परबाम** = पर स्त्री। **बिधि-बाम** = विधि है वाम अर्थात् प्रतिकूल जिसको ऐसा रावण (बहुव्रीहि समास)। **आनि** = (सं० आनिय) लाकर। **कांध्यो** = कंधे पर रखना अर्थात् स्वीकार करना, ठानना। **घैरु** = बदनामी की चर्चा, जो दबी जबान से की जाती है। **पाथोधि** = (सं०) समुद्र (**पाथ** = जल)। **अछत** = (सं० सति) होते हुए भी। **रांध्यो** = पकाया हुआ। **अलंकार**—अर्थान्तरन्यास (पहले 'व्याकुलता' का होना कहा गया, फिर चौथे चरण में उसको विशेष रूप से पुष्ट किया)।

भावार्थ—जिन्होंने सुबाहु, मारीच, खर, त्रिशिरा, दूषण और बालि को मारने में दूसरा बाण नहीं चढ़ाया (अर्थात् एक बाण से मार लिया) उन्हीं रामचंद्रजी से यह अभागा रावण पराई (रामचंद्रजी की) स्त्री को हर लाकर लड़ाई ठानना चाहता है। क्या (वह) युद्ध कर सकता है ? (अर्थात् नहीं कर सकता)। रामचंद्रजी का प्रताप और हनुमानजी के (लंकादाहादि) कर्म का स्मरण करके घर-घर बदनामी की चर्चा हो रही है। समुद्र में पुल बाँध दिया है यह सुनकर तो सब लोग व्याकुल हैं। लंका के समान (दृढ़) किले में रहते हुए और रावण जैसे राजा के होते हुए भी कोई पका हुआ भात नहीं खाता (इतने भयभीत हो गये हैं कि खान-पान भूल गये हैं)।

उपजाति सवैया

> बिस्वजयी भृगुनायक से बिनु हाथ भए हनि हाथ-हजारी।
> बातुल मातुल को न सुनी सिख, का 'तुलसी' कपि लंक न जारी ?
> अजहूँ तो भलो रघुनाथ मिले, फिरि बूझिहै को गज कौन गजारी।
> कीर्ति बड़ो, करतूति बड़ो, जन बात बड़ो, सो बड़ोई बजारी ॥५॥

टिप्पणी—**बिस्वजयी** = संसार को जीतनेवाले । **भृगुनायक** = भृगुवंशियो मे श्रेष्ठ परशुरामजी । **बिनु हाथ भए** = पराजित हो गए । **हाथहजारी** = सहस्र-बाहु । **बातुल** = बकवादी । **मातुल** = रावण का मामा मारीच । **का** = क्या । **अजहूँ** = अब भी । **गजारी** = सिंह । **बजारी** = सच को झूठ और झूठ को सच बनानेवाला; जिसकी बात को कोई प्रामाणिक न माने ।

भावार्थ—लंकानिवासी कहते हैं कि सहस्रबाहु को मारकर संसार के क्षत्रियों को जीतने वाले परशुरामजी ऐसे वीर भी रामचंद्रजी के सामने हार मान गये । पर इस बकवादी रावण ने अपने मामा मारीच का कहना न माना (और सीताजी को हरकर रामचंद्रजी से वैर ठाना) । क्या हनुमान जी ने लंका को भस्म नहीं कर दिया ? अर्थात् कर दिया । अब भी यदि यह रामचंद्रजी से मिल जाय तो अच्छा है । नहीं तो युद्ध होने पर यह प्रकट ही हो जायगा कि कौन हाथी है, कौन सिंह है ? अर्थात् रावण हाथी के समान है तो उसे मारने को रामचन्द्र जी सिंहवत् है । यह बात प्रमाणित हो जायगी । यद्यपि (तपस्या के कारण) यह कीर्ति में बड़ा है और (देवताओं तक को जीत लेने के कारण) करतूत में श्रेष्ठ है, और जन समुदाय से वाद-विवाद करने में भी विशेष चतुर है, तब भी यह बड़ा बजारी है । इसकी कोई बात मानने योग्य नहीं ।

दुर्मिल सवैया, ८ सगण

जब पाहन भे बनबाहन से, उतरे बनरा 'जयराम' रढ़े ।
'तुलसी' लिये सैल-सिला सब सोहत सागर ज्यों बल बारि बढ़े ।
करि कोप करें रघुबीर को आयसु, कौतुक ही गढ़ कूदि चढ़े ।
चतुरंग चमू पल में दलिकै रन रावन राढ़ के हाड़ गढ़े ॥६॥

टिप्पणी—**पाहन** = (सं० पाषाण) पत्थर; यहाँ पहाड़ की ओर लक्ष्य है । **बन** = जल । **बनबाहन** = नाव । **बनरा** = वानर । **रढ़े** = रटा, बोले । **सिला** = (सं० शिला) बड़े-बड़े पाषाण । **सैल-सिला** = शैल और शिला (द्वंद्व समास) **चतुरंग** = सेना के चार अंग (१) पदाति (पैदल), (२) रथ, (३) गजारोही, (४) अश्वारोही । **चमू** = सेना । **दलि कै**—नाश करके । **रन** = (सं० रण) युद्ध में । **राढ़** = निकम्मा । **हाड़ गढ़े** = (मुहावरा) खूब मारा, कचूमर निकाल दिया ।

भावार्थ—जब पाषाण भी नाव की तरह समुद्र में तैरने लगे तो वानर उनके द्वारा समुद्र पार उतरकर रामचंद्रजी की जय बोलने लगे । सब वानर हाथो मे

बड़े-बड़े पहाड़ और पत्थर लिए शोभा दे रहे थे। जैसे समुद्र जल से बढ़ता है वैसे ही वे बल से बढ़ते थे और बड़े क्रोध से कहते थे कि रामचंद्रजी की आज्ञा का पालन करेंगे। वे लीला से ही लंकागढ़ पर चढ़ गये, और चतुरंगिणी सेना को क्षण भर में नष्ट करके लड़ाई में निकम्मे रावण का कचूमर निकाल दिया।

बिपुल बिसाल बिकराल कपि भालु मानौ,
काल बहु बेष धरे धाए किये करषा।
लिये सिला सैल, साल ताल औ तमाल तोरि,
तोपैं तोयनिधि, सुर को समाज हरषा।
डगे दिगकुंजर, कमठ कोल कलमले,
डोले धराधर-धारि धराधर धरषा।
'तुलसी' तमकि चलैं, राघौ की सपथ करैं,
को करै अटक कपि कटक अमरषा ? ॥७॥

टिप्पणी—**बिपुल** = बहुत। **बिसाल** = बड़ी। **बिकराल** = भयंकर। **करषा** = क्रोध। **तोपैं** = (पहाड़ों से) पाट दिया, भर दिया। **तोय** = जल। **तोयनिधि** = समुद्र। **हरषा** = प्रसन्न हुआ। **धरा** = पृथ्वी। **धराधर-धारि** = पहाड़ों के समूह। **धराधर** = शेषनाग। **धरषा** = धर्षित हुआ, दब गया। **तमकि** = क्रुद्ध होकर। **राघौ** = (राघव) रामचन्द्रजी। **अटक** = रोक। **कटक** = सेना। **अमरषा** = आमर्षित हुआ, क्रुद्ध हुआ।

भावार्थ—बहुत बड़े भयंकर वानर और भालु ऐसे दौड़ते हैं मानो काल बहुत वेष धारण किए हुए क्रुद्ध होकर दौड़ते हों। पाषाण और पर्वत लेकर, साल, ताड़ और तमाल आदि वृक्षों को तोड़कर समुद्र को भर देते हैं। यह सब देखकर देवता-गण प्रसन्न हुए। जब वानरों की सेना चली उस समय दिशाओं के हाथी डगमगा गये। कच्छप और वाराह कुचल गये। पर्वतों का समूह हिलने लगा और शेषनाग दब गये। तुलसीदास कहते हैं कि सब वानर क्रोध करके चलते हैं और राम-चन्द्रजी की शपथ करते हैं। उस क्रुद्ध वानर-सेना को कौन रोक सकता है ? अर्थात् कोई नहीं।

आए सुक सारन बोलाए, ते कहन लागे,
पुलक सरीर सेना करत फहम ही।
'महाबली बानर बिसाल भालु काल से,
कराल हैं, रहैं कहाँ, समाहिंगे कहाँ मही।
हँस्यो दसमाथ रघुनाथ को प्रताप सुनि,
'तुलसी' दुरावै मुख सूखत सहम ही।

राम के बिरोधे बुरो बिधि हरि हरहू को
सबको भलो है राजा राम के रहम ही ॥८॥

टिप्पणी—सुक-सारन = शुक और सारण रावण के दूत थे । **बोलाए** = बुलवाए जाने पर । **करत फहम ही** = समझकर । **समाहिंगे कहाँ मही** = पृथ्वी में कहाँ अमाएँगे, इनके रहने को पृथ्वी में स्थान नही होगा (इतने अधिक हैं) **दुरावै** = छिपाता है । **सहम ही** = डर के मारे । **रहम** = दया, कृपा ।

भावार्थ—रावण के बुलवाने पर शुक और सारण आये । (रावण के पूछने पर) सेना का स्मरण करते ही उनके शरीर में (भय के कारण) रोमांच हो गया, और कहने लगे, "बड़े बलशील वानर और बड़े भारी रीछ काल के समान भयकर हैं । वे न जाने कहाँ रहते रहे हैं ? पृथ्वी में समाएँगे कहाँ ?" (तात्पर्य यह कि वे इतने अधिक हैं कि पृथ्वी में उनके रहने को पर्याप्त स्थान नहीं है) । तुलसीदास कहते हैं कि रामचन्द्रजी का प्रताप सुनकर डर के मारे रावण का मुख सूख गया, पर वह (उस भय को) छिपाने के हेतु हँसने लगा। रामचन्द्रजी से विरोध करने से ब्रह्मा, विष्णु और शिव का भी अनिष्ट होता है और रामचन्द्रजी के अनुग्रह से ही सबका भला होता है ।

नोट—इसमें फह्म, सह्म और रह्म फारसी भाषा के शब्द हैं ।

'आयो आयो आयो सोई बानर बहोरि', भयो
सोर चहुँ ओर, लंक आए जुबराज के ।
एक काढ़ै सौज, एक धौंज करै कहा ह्वै है,
पोच भई महा सोच सुभट समाज के ।
गाज्यो कपिराज रघुराज की सपथ करि,
मूँदे कान जातुधान मानो गाजे गाज के ।
सहमि सुखात बातजात की सुरति करि,
लवा ज्यों लुकात 'तुलसी' झपेटे बाज के ॥९॥

टिप्पणी—**जुबराज** = अंगद । **सौज** = घर का सामान । **धौंज** = दौड़-धूप । **पोच भई महा** = बड़ा बुरा हुआ । **गाज्यो** = गरजा । **कपिराज** = (यहाँ पर) अंगद । **गाजे** = गरजने पर, कड़कने पर । **गाज** = बिजली । **बातजात** = हनुमान । **सुरति करि** = याद करके । **लवा** = बटेर पक्षी । **लुकात** = छिपता है । **अलंकार**—उदाहरण

भावार्थ—रामचन्द्रजी की आज्ञा से अंगदजी के लंका में पहुँचते ही वहाँ चारों ओर कोलाहल होने लगा कि वही (लंका जलानेवाला) बानर फिर आ गया है। कोई घर का सामान बाहर निकालने लगे, कोई न जाने फिर क्या होगा यह सोचकर दौड़-धूप करते हैं। योद्धाओं को इस बात का सोच है कि यह तो बड़ा बुरा हुआ। अंगद रामचन्द्रजी की शपथ कर गरजने लगा, जिससे राक्षसो ने ऐसे कान मूँद लिये जैसे बिजली के कड़कने (पर लोग कान मूँद लेते हैं)। सब राक्षस हनुमान की याद करके डर के मारे सूख गये और ऐसे छिपने लगे जैसे बाज के झपेटे के डर से बटेर छिप जाते हैं।

तुलसीस-बल रघुबीर जू के बालि सुत
वाहि न गनत, बात कहत करेरी सी।
'बखसीस ईस जू की खीस होत देखियत,
रिस काहे लागति कहत हौं तो तेरी सी।
चढ़ि गढ़ मढ़ दृढ़ कोट के कंगूरे कोपि,
नेकु धका देहैं ढैहैं ढेलन की ढेरी सी।
सुनु दसमाथ! नाथ साथ के हमारे कपि,
हाथ लंका लाइहैं तो रहैगी हथेरी सी'॥१०॥

टिप्पणी—**बालिसुत** = यह शब्द साभिप्राय है। उसी बालि के समान बालि का बेटा है जिसने रावण को काँख में चाँप लिया था। **करेरी** = कड़ी। **बखसीस** = प्रसाद, पारितोषिक (धन-संपदा)। **ईस** = महादेवजी। **खीस होत** = नष्ट होत। **तेरी सी**—तेरे हित की (जिससे यह संपदा नष्ट न हो)। **मढ़** = मंदिर। **नेकु** = जरा सा। **ढैहैं** = गिरा देंगे। **ढेलन की ढेरी सी** = मिट्टी के ढेलों के ढेर की तरह। **हाथ लाइहैं** = हाथ लगावेंगे। **हाथ की हथेरी सी** = समथल, सपाट। **अलंकार**—उपमाएँ (विविध)।

भावार्थ—रामचंद्रजी के प्रताप के बल से बालिपुत्र अंगद रावण को कुछ नहीं समझता है, और कठोर बातें कहता है कि अब (रामचन्द्रजी से विरोध करने के कारण) महादेवजी के प्रसाद से प्राप्त यह समृद्धि नष्ट होती दिखलाई देती है। (अतः जिससे तेरी संपत्ति नष्ट न हो ऐसी) तेरे लाभ की बात (रामचन्द्रजी से मिलने को) कहता हूँ तो तू क्रोध क्यों करता है? हे रावण, सुन, रामचन्द्रजी के साथ हमारे जो बानर हैं वे तुम्हारे गढ़ पर चढ़ कर मंदिर और दृढ़ किले के

कँगूरों को क्रोध करके मिट्टी के ढेलों के ढेर की तरह जरा सा धक्का देकर गिरा देंगे और लंका में हाथ लगावेंगे तो लंका चौपट हो जायगी।

दूषन बिराध खर त्रिसिर कबंध बधे,
तालऊ बिसाल बेधे, कौतुक है कालि को।
एक ही बिसिख बस भयो बीर बाँकुरो जो,
तोहू है बिदित बल महाबली बालि को।
'तुलसी' कहत हित, मानतो न नेकु संक,
मेरो कहा जैहै, फल पैहै तू कुचालि को।
बीर-करि-केसरी कुठारपानि मानी हारि,
तेरी कहा चली, बिड़! तो सो गनै घालि को॥११॥

टिप्पणी—दूषन खर त्रिसिर = रावण के भाई। बिराध = एक राक्षस। कबंध = एक गंधर्व जो शाप से कबंध हो गया था। पीछे रामचन्द्रजी के अनुग्रह से उसका शापोद्धार हुआ। तालऊ = सात ताड़ के वृक्ष जिनको रामचन्द्रजी ने सुग्रीव के परीक्षा लेने पर एक ही बाण से गिरा दिया था। कौतुक है कालि को = कल का ही अर्थात् थोड़े दिन का खेल है। बिसिख = (सं० विशिख) बाण। हित—लाभ की बातें। संक = शंका, डर। मेरो कहा जैहै = (मुहावरा) मेरा क्या बिगड़ेगा, अर्थात् कुछ भी नहीं। कुचालि = दुष्कर्म। बीर-करि-केसरी = क्षत्रिय बीर ही मानो हाथी हैं उनके नाश करने के लिए सिंह-स्वरूप। कुठारपानि = परशुराम। बिड़ = (सं० विट) नीच, धूर्त। घालि = घलुआ, खिलौना। गनै घालि को ? = कोई कुछ नहीं समझता। (घलुए के बराबर भी नहीं है)।

भावार्थ—खर, दूषण, त्रिसिरा, बिराध, कबंध आदि को मार दिया, और बड़े भारी सातों ताल वृक्षों को भी (एक ही बाण से) गिरा दिया, ये तो रामचन्द्रजी के थोड़े ही दिन पहले के खेल हैं। एक ही बाण से वीरों में श्रेष्ठ महाबलशाली बालि के बल की जो दशा हुई वह तुझ पर प्रकट ही है। मैं तेरे लाभ की बातें कहता हूँ और तू जरा भी रामचन्द्रजी का डर नहीं मानता। मेरा क्या बिगड़ता है, अपने दुष्कर्म का फल तू पाएगा। जिन रामचन्द्रजी से वीर रूपी हाथियों के लिए सिंह के समान परशुरामजी ने भी हार मान ली, उनके सामने तेरी क्या बात है ? रे नीच, तेरे सरीखों को (राम के मुकाबले में) कोई घलुए भर भी नहीं समझता।

मत्तगयंद सवैया

तो सो कहौं दसकंधर रे, रघुनाथ-बिरोध न कीजिये बौरे।
बालि बली खर-दूषन और अनेक गिरे जे जे भीति में दौरे।

ऐसिय हाल भई तोहि धौं, नतु लै मिलु सीय चहै सुख जौ रे।
राम के रोष न राखि सकैं 'तुलसी' बिधि, श्रीपति, संकर सौ रे ॥१२॥

टिप्पणी—बौरे = बावले। भीति में बौरे = दीवार पर दौड़े (अयुक्त काम किए)। गिरे = असफल हुए। ऐसिय = ऐसी ही। हाल = दशा। धौं = जोर देने के लिए प्रयुक्त शब्द, तो।

भावार्थ—अंगद कहते हैं कि अरे बावले रावण, मैं तुजसे कहता हूँ कि रामचन्द्रजी से विरोध न कर। महाबली बालि, खरदूषणादि अनेक बली जो दीवार पर दौड़े वे गिर ही गये। अगर तू सुख चाहता है तो सीता को लेकर रामचन्द्रजी से जा मिल। नहीं तो तेरी भी ऐसी ही दशा होगी। रामचन्द्रजी के क्रोध करने पर अनेक ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी रक्षा नहीं कर सकते।

उपजाति सवैया

तू रजनीचर नाथ महा, रघुनाथ के सेवक को जन हौं हौं।
बलवान है स्वान गली अपनी, तोहि लाज न, गाल बजावत सौहौं।
बीस भुजा दससीस हरौं न डरौं प्रभु-आयसु-भंग ते जौ हौं।
खेत में केहरि ज्यों गजराज दलौं दल बालि को बालक तौ हौं ॥१३॥

टिप्पणी—जन = सेवक, दास। बलवान है स्वान गली अपनी = अपने घर में सभी बड़े बन जाते हैं। स्वान = (सं० श्वान) कुत्ता। गाल बजाना = डींग मारना। सौहौं = सामने। जौ = यदि। हौं = मै। खेत में = रणक्षेत्र में। केहरि = सिंह। ज्यों = तरह, जैसे। दलौं = मार डालूँगा। दल = सेना।

भावार्थ—हे रावण, तू तो राक्षसों के राजाओं का भी महाराज है और मैं रामचन्द्रजी के सेवक (सुग्रीव) का सेवक हूँ। जैसे कुत्ता अपनी गली में बरियार होता है वैसे ही तू मेरे सामने अपने घर बैठे डींग मारता है, तुझे लज्जा नहीं आती? (रामचन्द्रजी ने मुझे मारने की आज्ञा नहीं दी है)। यदि मैं स्वामी रामचन्द्रजी की आज्ञा के भंग होने से न डरता होता, तो तेरे बीसों हाथों और दसों सिरों को उतार लेता। यदि मैं बालि का बच्चा हूँ, तो जैसे सिंह हाथी को मार देता है, वैसे ही रणक्षेत्र में तेरी सेना को दलूँगा।

कोसलराज के काज हौं आज त्रिकूट उपारि लै बारिधि बोरौं।
महाभुजदंड द्वै अंडकटाह चपेट की चोट चटाक दै फोरौं।
आयसु-भंग ते जौ न डरौं सब मींजि सभासद सोनित घोरौं।
बालि को बालक जौ 'तुलसी' दसहू मुख के रन में रद तोरौं ॥१४॥

टिप्पणी—त्रिकूट = लंका का पर्वत। बोरौं = डुबा दूँ। महाभुजदंड = अपनी बलशील भुजाओं से। अंडकटाह = ब्रह्मांड। चपेट = थप्पड़। मींजि =

मलकर, कुचलकर। सोनित = (सं० शोणित) रक्त। खोरौं = स्नान करूँ, नहाऊँ। दसहू = दसों। रद = दाँत।

भावार्थ—यदि मैं रामचन्द्रजी की आज्ञा भंग से न डरूँ, (भाव यह कि रामचन्द्रजी की आज्ञा ऐसा करने की नहीं है, इसी से डरता हूँ) तो रामचन्द्रजी के कारण (उनकी कार्य-सिद्धि के लिए) आज ही इस त्रिकूट पर्वत (जिसमें लंका बसी हुई है) को उपारकर समुद्र में डुबा दूँ; लंका क्या चीज है मैं अपने दोनों हाथों की चपेटों की चोट से ब्रह्मांड को भी चटाक से फोड़ दूँ; और सब सभासदों को कुचलकर उनके रक्त में नहा लूँ। हे रावण! अगर मैं बालि का बच्चा हूँ तो रणभूमि में, तेरे दसों मुखों के दाँत तोड़ डालूँगा।

दुमिल सवैया, ८ सगण

> **अति कोप सों रोप्यो है पाँव सभा, सब लंक-ससंकित सोर मचा।**
> **तमके घननाद से बीर पचारि कै, हारि निसाचर-सैन पचा।**
> **न टरै पग मेरुहु तें गरु भो, सो मनों महि संग बिरंचि रचा।**
> **'तुलसी' सब सूर सराहत हैं 'जग में बलसालि है बालि-बचा' ॥१५॥**

टिप्पणी—**लंक** = लंका के राक्षस। **ससंकित** = भय-सहित। **तमके** = वेग से झपटे। **घननाद** = मेघनाद। **पचारि** = (प्रचारि) ललकारकर। **हारि-पचा** = हार गए, थक गए। **मेरुहु** = सुमेरु पर्वत से भी। **गरु** = भारी। **भो** = हुआ।

भावार्थ—जब अंगद ने अत्यंत क्रोध करके सभा में अपना पाँव रोपा तो लंका के सब राक्षस डर के मारे कोलाहल मचाने लगे। उस पैर को हटाने के लिए मेघनाद के समान वीर ललकारकर वेग से झपटे। पर राक्षसों की सेना पराक्रम कर-करके हार गई, पैर जरा भी न हिला, सुमेरु पर्वत से भी भारी हो गया। पृथ्वी से ऐसा चिपट गया मानो ब्रह्मा ने उस पैर को पृथ्वी के साथ ही रचा हो। तुलसीदास कहते हैं कि यह देखकर शूर लोग सराहना करने लगे कि संसार में बालि का बच्चा ही बड़ा बलवान है।

> **रोप्यो पाँव पैज कै बिचारि रघुबीर-बल,**
> **लागे भट सिमिटि न नेकु टसकतु है।**
> **तज्यो धीर धरनि, धरनिधर धसकत,**
> **धराधर धीर भार सहि न सकतु है।**
> **महाबली बालिको, दबत दलकति भूमि,**
> **'तुलसी' उछरि सिंधु मेरु मसकतु है।**
> **कमठ कठिन पीठि, घट्ठा परो मंदर को,**
> **आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है। १६।**

टिप्पणी—**पैज कै**=(सं० प्रतिज्ञा, प्रा० पाइज्जा) प्रतिज्ञा करके। **मिलिटि**=एकत्र होकर, एक साथ। **नेकु**=जरा भी। **टसकतु है**=पृथ्वी को नहीं छोड़ता, टस से मस नहीं होता। **धरनि**=पृथ्वी। **धरनिधर**=पर्वत (त्रिकूट)। **धराधर**=शेषनाग। **बालि को**=बालि का लड़का। **दलकतु**= पानी में दबती है। **उछरि**=उछलकर। **सिंधु**=समुद्र का जल। **मेरु**=सुमेरु पर्वत। **मसकतु है**=फट जाता है, दरकता है। **घट्ठा**=लगातार बहुत दिनों तक दाब पड़ते रहने से कड़ा पड़ा हुआ चमड़ा, जिसमें वेदना कम होती है। **मंदर**=मंदराचल पर्वत। **घट्ठा परो मंदर को**=समुद्र मथते समय कच्छप की पीठ पर मंदराचल पर्वत मथनी की तरह घुमाया गया था जिससे कच्छप की पीठ पर घट्ठा पड़ गया था। **सोई**=वही घट्ठा। **करेजो**=कलेजा। **कसकतु है**=पीड़ा करता है।

भावार्थ—अंगद ने रामचन्द्रजी के बल का स्मरण करके प्रतिज्ञा करके सभा में अपना पाँव रोपा। सब योद्धा लोग एक साथ उठाने लगे, पर वह टस से मस नहीं हुआ। यहाँ तक कि (भार न सह सकने के कारण) पृथ्वी तक ने धैर्य छोड़ दिया (जो धैर्य-धारण के लिए प्रख्यात थी)। त्रिकूट पर्वत भी पैर के भार से पृथ्वी में धँसने लगा। धैर्यवान् शेषनाग भी भार को न सह सके। महाबली बालि-पुत्र के दबाने से पृथ्वी दलक गई, अर्थात् पानी में दब गयी, जिससे समुद्र का जल ऊपर उछल आया, पर्वत में दरारें पड़ने लगी। कच्छप की कठोर पीठ पर (समुद्र-मंथन के समय) मंदराचल की रगड़ से जो घट्ठा पड़ गया था वही काम आया (जिससे वेदना कम हुई, पीठ न फटी), पर भार के कारण कलेजे में पीड़ा होने लगी।

झूलना छंद—१०+१०+१०+७=३७ मात्रा

कनकगिरिसृंग चढ़ि, देखि मर्कट-कटक,
बदति मंदोदरी, परम भीता।
सहसभुज-मत्त-गजराज-रन-केसरी,
परसुधर-गर्व जेहि देखि बीता।
'दास तुलसी' समरसूर कोसलधनी,
ख्याल ही बालि बलसालि जीता।
कंत! तृन दंत गहि सरन 'श्रीराम' कहि,
अजहुँ यहि भाँति लै सौंपु सीता॥१७॥

टिप्पणी—**कनक-गिरि-सृंग**=(लंका के) स्वर्ण-पर्वत की चोटी पर। **मर्कट कटक**=वानरों की सेना। **बदति**=(सं०) बोलती है। **परम**=अत्यंत। **भीता**=डरी हुई **सहसभुज-मत्त गजराज-रन-केसरी** मस्त

हाथी को रणभूमि में सिंह की तरह मारनेवाले परशुराम । **बीता** = नाश हो गया । **कोसलधनी** = रामचन्द्र । **ख्याल ही** = खेल ही में अर्थात् एक ही बाण से । **कंत** = स्वामी, पति के लिए स्त्री का संबोधन । **तृन दंत गहि** = दाँतों में तिनका दबाकर, अति दीनता से । **अजहुँ** = अब भी । **सौंपु** = समर्पण कर दे ।

भावार्थ—स्वर्ण-पर्वत के शिखर पर चढ़कर मंदोदरी ने वानरों की सेना देखी । अतः अत्यन्त भयभीत होकर रावण से कहने लगी कि हे स्वामी, जिन रामचन्द्रजी को देखते ही सहस्रबाहुरूपी मस्त हाथी को मारने के लिए रण-भूमि में सिंह के समान परशुरामजी का गर्व नष्ट हो गया, जिन्होंने खेल ही में बड़े बल-वान् बालि को जीत लिया, ऐसे समर में शूर और कोशल देश के अधिपति राम-चन्द्रजी को, दाँतों में तिनका दबाकर अति दीनता से "श्रीरामचन्द्र की शरण हूँ" ऐसा कहकर, सीता को साथ लेकर आज ही सौंप दो ।

रे नीच ! मारीच बिचलाइ, हति ताड़का,
भंजि सिवचाप सुख सबहि दीन्ह्यो ।
सहस दसचारि खल सहित खरदूषनहि,
पठै जमधाम, तैं तउ न चीन्ह्यो ।
मैं जो कहौं कंत सुनु संत भगवंत सों,
बिमुख ह्वै बालि फल कौन लीन्ह्यो ?
बीस भुज, सीस दस, खीस गे तबहि,
जब ईस के ईस सों बैर कीन्ह्यो ॥१८॥

टिप्पणी—**बिचलाइ** = बिचलाकर, स्थान से हटाकर (रामचन्द्रजी ने कौशिक मखरक्षण के समय मारीच को बाण द्वारा समुद्र पार फेंक दिया था) । **हति** = मारकर । **भंजि** = तोड़कर । **सहस दस चारि** = चौदह सहस्र । **पठै** = पठए, भेज दिये । **तैं** = तुमने । **तऊ** = तो भी । **खीसो गए** = नष्ट हो गए । **ईस के ईस सों** = शिवजी के इष्टदेव रामचन्द्रजी से ।

भावार्थ—मंदोदरी रावण से कहती है कि रे नीच, रामचन्द्रजी ने मारीच को बाण से समुद्र पार उड़ा दिया, ताड़का को मारकर और शिवधनुष तोड़ कर सब को सुख दिया, चौदह हजार दुष्टों सहित खरदूषण को यमलोक भेज दिया । पर तुमने उनको तब भी नहीं पहचाना (कि रामचन्द्रजी ईश्वर हैं) । हे स्वामी, जो मैं कहती हूँ सुनो ! संत और भगवान् से विमुख होकर बालि ने कौन फल लिया ? (तुरंत प्राण गँवाने पड़े) । तुम्हारे बीसों हाथ, दसों सिर उसी दिन नष्ट हो गए जिस दिन से तुमने शिवजी के स्वामी से विरोध आरंभ किया

बालि दलि, काल्हि जलजान पाषान किय,
कंत ! भगवंत तें तउ न चीन्हें।
बिपुल बिकराल भट भालु कपि काल से,
संग तरु तुंग गिरिसृंग लीन्हें।
आइगो कोसलाधीश तुलसीस जेहि,
छत्र मिस मौलि दस दूरि कीन्हें।
ईस-बकसीस जनि-खीस करु ईस ! सुनु,
अजहुँ कुल कुसल बैदेहि दीन्हें ॥१९॥

टिप्पणी—दलि = मारकर । काल्हि = कल, थोड़े ही दिन पहले । जलजान = (सं० जलयान) नाव आदि । पाषान = पत्थर । बिपुल = बहुत । तुंग = ऊँचे । गिरिसृंग = पहाड़ के शिखर । छत्र मिस = राजछत्र गिराने के बहाने से । मौलि = सिर । ईस-बकसीस = शिवजी के वरदान को । जनि = मत । खीस करु = नष्ट कर । ईस = (ईश) पति ।

भावार्थ—हे कंत ! जिन्होंने हाल ही में बालि को मारकर पाषाणों को समुद्र में नाव की तरह तैरा दिया, उन भगवान् को तुमने अब तक नहीं पहचाना । साथ में ऊँचे-ऊँचे पेड़ और पहाड़ लिये हुए कोशल (अयोध्या) के राजा रामचन्द्र आ पहुँचे है, जिन्होंने राजछत्र के गिरने के बहाने तुम्हारे दसों सिर गिरा दिए । हे स्वामी, सुनो, शिवजी का प्रसाद अर्थात् धन-संपत्ति, कुल आदि को मत गँवाओ, सीताजी को लौटा देने में अब भी कुल का कुशल है ।

सैन के कपिन को को गनै अर्बुदै,
महाबलबीर हनुमान जानी।
भूलिहै दस दिसा, सेस पुनि डोलिहै,
कोपि रघुनाथ जब बान तानी।
बालि हू गर्ब जिय माहि ऐसो कियो,
मारि दहपट कियो जम की घानी।
कहति मंदोदरी, सुनहि रावन ! मतो,
बेगि लै देहि बैदेहि रानी ॥२०॥

टिप्पणी—जानी = जानो । ऐसो = तुम्हारी तरह (रामचन्द्रजी को जीतने का) । दहपट कियो = ध्वस्त कर दिया, कुचल दिया । घानी = उतने तिल जितने एक बार में कोल्हू में पेरे जाते हैं । मतो = मत, सम्मति ।

भावार्थ—रामचन्द्रजी की सेना के वानरों को कौन गिन सकता है ? उसमें एक हनुमान को तुम जानते हो उनके समान बलवान् वीर अरबों हैं । जब रामचन्द्रजी क्रोध करके बाण तानेंगे तब तुम दसों दिशाओं को भूल जाओगे

(किसी ओर भाग भी न सकोगे)। शेषनाग भी डोलने लगेंगे। बालि ने भी अपने मन में तुम्हारी ही तरह जीतने का गर्व किया था। उसको रामचन्द्रजी ने मारकर यमराज के कोल्हू में एक ही बार में पेर डाला। मंदोदरी कहती है कि हे रावण ! मेरी सलाह सुनो। शीघ्र ही महारानी सीताजी को लेकर रामचन्द्रजी को सौंप दो।

गहन उज्जारि, पुर जारि, सुत मारि तव,
कुसल गो कीस बर बेर जाको।
दूसरो दूत पन रोपि कोप्यो सभा,
खर्ब कियो सर्ब को गर्ब थाको।
दास 'तुलसी' अभय बदति मयनंदिनी,
मन्दमति कंत ! सुनु मंत म्हाको।
तौ लौं मिलु बेगि नहिं जौ लौं रन रोष भयो,
दासरथि बीर बिरुदैत बाँको ॥२१॥

टिप्पणी—**गहन**=वन। **कुसल गो**=कुशल-पूर्वक चला गया। **कीस**=बानर (यहाँ 'हनुमान' से तात्पर्य है)। **बर बेर**=श्रेष्ठ शरीर वाला अर्थात् बडे डीलडौल वाला। **बेर**=(सं०) शरीर। **दूसरो दूत**=अंगद। **खर्ब**=छोटा। **मयनंदिनी**=मय दानव की पुत्री मंदोदरी। **मंत**=मंत्र, सलाह। **म्हाको** (मारवाड़ी)=मेरा। **तौ लौं**=तब तक। **जौ लौं**=जब तक। **बिरुदैत**—विरुदवाला, यशस्वी।

भावार्थ—पहला वानर जिसका डीलडौल बड़ा भारी था, तुम्हारे वन को उजाड़कर, नगर जलाकर और तुम्हारे पुत्र को मारकर सकुशल लौट गया (तुम उसको कुछ भी दंड न दे सके)। रामचन्द्रजी के दूसरे दूत अंगद ने क्रोध कर प्रण करके सभा में पाँव रोपा और (अपने बल के आगे) सब का घमंड नष्ट करके सबको नीचा दिखलाया। तुलसीदास कहते हैं कि मंदोदरी डरती हुई कहती है, हे मंदबुद्धि स्वामी, मेरी सम्मति सुनो ! जब तक वीर और बडे यशस्वी रामचन्द्रजी को रणभूमि में क्रोध नहीं होता, तब तक (उसके पहले ही) शीघ्र उनसे संधि कर लो, अर्थात् सीताजी को लेकर रामचन्द्रजी की शरण जाओ। इसी में तुम्हारा कल्याण होगा।

मनहरण

कानन उजारि, अच्छ मारि, धारि धूरि कीन्हीं,
नगर प्रजार्‌यो सो बिलोक्यो बल कीस को

तुम्हें विद्यमान जातुधान-मंडली में कपि,
कोपि रोप्यो पाँव, सो प्रभाव तुलसीस को।
कंत! सुनु मंत, कुल अंत किये अंत हानि,
हातो कीजै हीय तें भरोसो भुज बीस को।
तौ लौं मिलु बेगि जौ लौं चाप न चढ़ायो राम,
रोषि बान काढ़्यो न, दलैया दससीस को ॥२२॥

टिप्पणी---**अच्छ** = अक्षयकुमार नामक रावण का पुत्र। **धारि** = सेना। **धूरि कीन्हीं** = धूलि में मिला दिया, नष्ट कर दिया। **अजारयो** = प्रकृष्ट रूप से जला दिया अर्थात् खाक कर दिया। **तुम्हें बिद्यमान** = तुम्हारे होते हुए भी। **हातो कीजै** = दूर कीजिए, छोड़ दीजिए। **काढ़्यो** = निकाला। **दलैया** = काटनेवाले।

भावार्थ---एक बंदर ने तुम्हारी वाटिका उजाड़कर, अक्षयकुमार को मारकर राक्षसों की सेना को नष्ट कर दिया, सो उसका बल देख ही लिया। दूसरे वानर (अंगद) ने तुम्हारे रहते हुए राक्षस-मंडली में क्रोध करके अपना पाँव रोप दिया (जो किसी से न हिला)। यह सब रामचन्द्रजी का प्रताप है। अतः हे स्वामिन्, अपने हृदय से बीस भुजाओं द्वारा अर्थात् भुजबल द्वारा रामचन्द्रजी को जीतने का भरोसा छोड़ दो। कुल का नाश कराने से अन्त में हानि होगी। जब तक रामचन्द्रजी ने क्रोध कर तुम्हारे दसों सिरों को काटनेवाला बाण नहीं निकाला, और जब तक उसे धनुष पर नहीं चढ़ाया तब तक शीघ्र ही रामचन्द्रजी की शरण जाकर उनसे सन्धि कर लो। इसी में तुम्हारा भला है।

पवन को पूत देखौ दूत बीर बाँकुरो जो,
बंक गढ़ लंक सो ढका ढकेलि ढाहिगो।
बालि बलसालि को, सो काल्हि दाप दलि, कोपि,
रोप्यो पाँउ, चपरि चमू को चाउ चाहिगो।
सोई रघुनाथ कपि साथ, पाथनाथ बाँधि,
आए नाथ! भागे तें खिरिरि खेह खाहिगो।
'तुलसी' गरब तजि, मिलिबे को साज सजि,
देहि सीय न तौ, पिय! पाइमाल जाहिगो ॥२३॥

टिप्पणी---**पूत** = पुत्र। **ढका ढकेलि** = धक्कों से ढकेलकर। **ढाहिगो** = गिरा दिया। **बालि को** = बालि का पुत्र। **काल्हि** = काल ही, हाल ही में। **दाप** = (सं० दर्प) अहंकार, अभिमान। **दलि** = नाश कर। **चपरि** = फुरती से। **चमू** = सेना। **चाउ** = चाव, उत्साह, उमंग। **चाहिगो** = देख गया। **पाथ** = जल।

पाथनाथ = समुद्र। भागे तें = भागने से। खिरिरि = खरोच कर। खेह = धूल। तजि = तजो। सजि = साजो। पाइमाल जाहिगो = नष्ट हो जाओगे।

भावार्थ—जरा विचारो तो बड़े बाँके वीर रामचन्द्रजी के दूत पवनपुत्र हनुमान ने लंका के समान दृढ़ गढ़ को धक्कों से ढकेल कर गिरा दिया। हाल ही मे बली वालि के पुत्र ने सब का घमण्ड चूर कर क्रोधित होकर सभा में पाव रोपा, जिसे कोई न हटा सका। इस तरह फुर्ती से तुम्हारी सेना का उत्साह देख गया। जिसके ऐसे दूत है वही रामचन्द्रजी समुद्र में सेतु बाँधकर आ पहुँचे है। हे स्वामिन्, अब भागने से खरोच कर धूल फाँकनी पड़ेगी। इसलिए गर्व को छोड़ो, मिलने की तैयारी करो, सीताजी को दे दो, नही तो हे प्यारे, नष्ट हो जाओगे।

उदधि अपार उतरत नहि लागी बार,
केसरी-कुमार सो अदंड कैसो डाँड़ि गो।
बाटिका उजारि अच्छ रच्छकनि मारि, भट
भारी भारी रावरे के चाउर से काँड़ि गो।
'तुलसी' तिहारे विद्यमान जुवराज आजु,
कोपि पाँव रोपि, बस कै छोहाइ छाँड़ि गो।
कहे को न लाज, पिय! अजहूँ न आए बाज,
सहित समाज गढ़ राँड़ कैसो भाँड़ि गो॥२४॥

टिप्पणी—**उदधि** = समुद्र। **बार** = देर। **केसरी कुमार** = हनुमान। **अदंड** = (**अदंड्य**) दंड न दे सकने के योग्य, जिनको दंड न दिया जा सके। **कैसो** = का सा। **डाँड़िगो** = दंड दे गया। **अच्छ** = अक्षयकुमार। **रच्छक** = रक्षक। **रावरे के** = तुम्हारे। **चाउर से** = चावल की तरह। **काँड़िगो** = कूट गया। **आजु** = हाल ही। **बस कै** = वश में करके। **छोहाइ** = स्नेह करके, कृपापूर्वक। **बाज आना** = (मुहावरा) छोड़ना। **राँड़ कैसो गढ़** = किसी विवशा अर्थात् सामर्थ्यहीन के गढ़ की तरह। **भाँड़ि गो** = घूम घूम कर देख गया। ('भाँड जाना' बुन्देलखंडी मुहावरा है। 'भँड़या' बुन्देलखंड में 'चोर' को कहते हैं)।

भावार्थ—जिसको अपार समुद्र उतरते देर न लगी वह हनुमान तुझ समान अदंड को दंड दे गया अर्थात् वाटिका उजाड़कर और अक्षयकुमार तथा रक्षकों को मारकर तुम्हारे बड़े-बड़े योद्धाओं को चावल की तरह कूट गया। हाल ही मे तुम्हारे देखते-देखते युवराज अंगद ने क्रोध कर पाँव रोपा (जिसे कोई न हिला सका) और तुमको अपने वश में करके भी अनुग्रह करके छोड़ गया चाहता तो मार भी देना हे प्यारे मेरे कहने से भी तुम्हें कुछ लाज नहीं

है। सब सामग्री के होते हुए भी अंगद लंका को किसी अबला के गढ़ की तरह घूम-घूमकर देख गया (तुम उसका कुछ भी न कर सके)। तुम अब भी अपनी करनी से बाज नहीं आए, अर्थात् अपनी करनी को तुमने अब भी नहीं छोड़ा।

जाके रोष दुसह त्रिदोष दाह दूरि कीन्हें,
पैयत नछत्री खोज खोजत खलक में।
माहिषमती को नाथ साहसी सहसबाहु,
समर समर्थ नाथ! हेरिये हलक में।
सहित समाज महाराज सो जहाजराज,
बूड़ि गयो जाके बल बारिधि-छलक में।
टूटत पिनाक के मनाक बाम राम से, ते
नाक बिनु भए भृगुनायक पलक में॥२५॥

टिप्पणी—**दुसह** = (सं० दुःसह) न सहे जाने योग्य, जिसका सहना दुष्कर हो। **त्रिदोष** = वात, पित्त, कफ; सन्निपात। **दाह** = जलन। **दूरि कीन्हे** = तिरस्कार कर दिया, बढ़ गया। **छत्री-खोज** = क्षत्रियों का चिह्न। **खोजत** = खोजने में। **खलक में** = संसार में। **हेरिए** = विचारिए, देखिए। **हलक** = (अरबी हलक) कंठ; यहाँ पर तुलसीदास ने यह शब्द 'हृदय' के अर्थ में प्रयुक्त किया है। **जहाजराज** = बड़ा भारी जहाज। **बल-बारिधि-छलक मे** = बलरूपी समुद्र की छलक में। **मनाक** = थोड़ा। **बाम** = टेढ़े, क्रुद्ध। **नाक** = प्रतिष्ठा। **पलक** = क्षण।

भावार्थ—जिनका क्रोध असह्य सन्निपात के दाह से भी बढ़ गया था, और (उस क्रोध के कारण) संसार में कहीं खोजने पर भी क्षत्रियों का चिह्न नहीं पाया जाता था, और जिनके बल रूपी सागर की तरंग में बड़े भारी जहाज रूपी महाराज माहिष्मती के राजा, युद्ध करने में समर्थ, साहसी सहस्रबाहु अपने समाज (क्षत्रिय जाति) सहित डूब गया (अर्थात् जिनके बल के सामने सहस्रबाहु तक की कुछ नहीं चली), हे नाथ, जरा हृदय में विचारिए तो सही, उन्हीं परशुरामजी को जो धनुष टूटने से रामचन्द्रजी से तनिक क्रुद्ध हुए थे, क्षण भर में ही प्रतिष्ठा खोनी पड़ी।

कीन्हीं छोनी छत्री बिनु, छोनिप-छपनहार,
कठिन कुठार-पानि बीर-बानि जानि कै।
नाक में पिनाक मिस बामता बिलोकि राम,
रोक्यो परलोक, लोक भारी भ्रम मानि कै।
परम कृपाल जो नृपाल लोक पालन पै,
जब धनु हाई ह्वै है मन अनुमानि कै।

नाइ दस माथ महि, जोरि बीस हाथ, पिय !
मिलिये पै नाथ रघुनाथ पहिचानि कै ।।२६।।

टिप्पणी—छोनी = भूमि । छोनिप = राजा, क्षत्री । छपनहार = विनाशक । बीर बानि = वीरता का स्वभाव । पिनाक मिस = शिव धनुष तोड़ने पर । बामता = टेढ़ापन, विरोध । नाक में बामता बिलोकि = नाक सिकोड़ना देख कर, तनिक क्रोध देखकर । परलोक रोक्यो = परशुरामजी की स्वर्ग जाने की सामर्थ्य को रोक दिया (परशुरामजी अमर हैं, पर वे स्वर्गलोक नहीं जा सकते, पृथ्वी में ही घूमते हैं) । भानि कै = भंग करके । लोक भारी भ्रम भानि कै = लोगों के बड़े भारी भ्रम को भंग करके । धनु हाई = धनुष टूटने पर । हैहै = हयहयराज सहस्रबाहु । मन अनुमानि कै = मन से अपनी हार अनुमान कर चला गया ।

भावार्थ—जिस राम ने परशुराम ऐसे वीर की (जिसने पृथ्वी के क्षत्रियों को मारकर भूमि को क्षत्रियरहित कर दिया था) नाक में जरा सा क्रोध देखकर (धनुषभंग के समय) लोगों का भारी भ्रम तोड़कर उनकी स्वर्गगामिनी गति को रोक दिया, और जो रामजी राजाओं और लोकपालों पर परम कृपालु हैं और धनुष तोड़ने पर हयहयराज भी जिनसे हार मान गया, उन्हीं रघुनाथ को ईश्वर पहचान कर, हे प्रियतम ! दसों सिर नवा कर और बीसों हाथ जोड़कर उनसे मेल कर लीजिए (विरोध छोड़ दीजिए)।

नोट—सभी प्रतियों में लेखकों के भ्रम से दूसरे चरण के स्थान पर तीसरा चरण लिखा पाया जाता है । इस क्रम से अर्थ में असंगति आती है अतः हमने चरणों का क्रम बदल दिया है । कई प्रतियों में 'हैहै' (हयहय) की जगह 'ह्वै है' पाठ मिलता है, जो बिलकुल गलत है । हरिहरप्रसाद की टीका में शुद्ध 'हैहै' पाठ है ।

कह्यो मत मातुल बिभीषनहू बार बार,
आँचर पसारि, पिय, पाँइ लै लै हौं परी ।
बिदित बिदेहपुर, नाथ ! भृगुनाथ-गति,
समय-सयानी कीन्हीं जैसी आइ गौं परी ।
बायस, बिराध, खर, दूषन, कबंध, बालि,
बैर रघुबीर के न पूरी काहु की परी ।
कंत बीस लोचन बिलोकिए कुमंत फल,
ख्याल लंका लाई कपि राँड़ की सी झोपरी ।।२७।।

टिप्पणी—मत = मंत्रणा, सलाह । मातुल = मामा (मारीच) । आँचर = (सं०) अंचल । आँचर पसारि = बहुत विनती के साथ (कुछ माँगते के लिए

आँचल फैलाया जाता है)। पसारि=(सं० प्रसार्य) फैलाकर। हौं=मैं। पाइ लै लै परी=बार-बार पाँवों में गिरी। बिदित=प्रकट है, सब जानते हैं। समय-सयानी=समयानुकूल। गौं=अवसर। जैसो गौं आइ परी=जैसा अवसर आ पड़ा। बायस=काक-वेषधारी इंद्रपुत्र जयंत। काहू की पूरी न परी=किसी के मन की न हो सकी। कुमंत फल=(मंत्रियों की) कुमंत्रणा अर्थात् बुरी सलाह का फल। ख्याल=खेल ही में। लाई=आग लगा दी। राँड़ की सी छोपरी=सामर्थ्यहीन की झोपड़ी की तरह अर्थात् बिना किसी रुकावट के अत्यंत सरलता के साथ।

भावार्थ—मारीच और विभीषण ने भी बार-बार आपको यही (इस छंद में वर्णन की गई) सलाह दी, और हे प्यारे मैंने भी बार-बार पैरों में पड़कर और अंचल फैलाकर यही कहा है। हे नाथ, जनकपुर में परशुरामजी की जो दशा हुई वह सब पर प्रकट है, उन्होंने जैसा अवसर पड़ा था उसी के अनुकूल काम किया अर्थात् रामचन्द्रजी की शरण हुए। इसके विपरीत रामचन्द्रजी से बैर करने से जयन्त, बिराध, खर, दूषन, कबन्ध और बालि किसी का भी भला न हुआ। हे स्वामिन्, कुसंगत का फल अपनी बीसों आँखों से देख लीजिए। हनुमान ने खेल ही में लंका को राँड़ की झोपड़ी की तरह जला दिया।

राम सों साम किए नित है हित, कोमल काज न कीजिये टाँठे।
आपनि सूझि कहौं, पिय! बूझिये, जूझिबे जोग न ठाहरु नाँठे।
नाथ! सुनी भृगुनाथ कथा, बलि बालि गयो चलि बात के साँठे।
भाइ बिभीषन जाइ मिल्यो प्रभु आइ परे सुनि सायर-काँठे ॥२८॥

टिप्पणी—साम=संधि, मेल। टाँठे=कठोरता। सूझि=समझ। बूझिये=समझ लीजिये। जूझिबे=युद्ध करने के योग्य, (सं० युद्ध से प्राकृत में 'जुज्झ' इससे 'जूझ-जूझना')। ठाहरु=स्थान। नाँठे=नष्ट होना। साँठे=पकड़े रहने से। बात के साँठे=हठ पकड़ने से। सायर=(सं०) सागर, (प्रा० सअर)। काँठे=(उपकंठ) किनारे पर, तट पर।

भावार्थ—रामचन्द्रजी से तो मेल ही करने में नित्य भला है। ऐसे कोमल कार्य में कठोरता मत कीजिए। हे प्यारे, मैं अपना विचार कहती हूँ, समझ जाइए। युद्ध करना योग्य नहीं, युद्ध करने से हमारा स्थान ही नष्ट हो जायगा। अतः रामचन्द्रजी से युद्ध करना उचित नहीं है। हे नाथ, आपने परशुरामजी की कथा सुनी है (रामचन्द्रजी के शरणागत होने से बच गए) और (अभिमान के कारण) हठ पकड़ने से बली बालि मारा गया। आपका भाई विभीषण

भी रामचन्द्रजी से जा मिला है और सुना जाता है कि रामचन्द्रजी समुद्र के किनारे पर आ गए हैं।

पालिबे को कपि भालू-चमू जम-काल करालहु को पहरी है।
लंक से बंक महागढ़ दुर्गम ढाहिबे दाहिबे को कहरी है।
तीतर-तोम तमीचर सेन समीर को सूनु बड़ो बहरी है।
नाथ भलो रघुनाथ मिले, रजनीचर-सेन हिये हहरी है ॥२९॥

टिप्पणी—चमू=सेना। **जम-काल**=यम और काल। **पहरी**=पहरुआ। **बंक**=टेढ़ा। **ढाहिबे**=गिराने को। **दाहिबे को**=जलाने को। **कहरी**=(अ० कहर) क्रोधी, आफत ढालेवाला। **तीतर तोम**=तीतर पक्षी का समूह। **तमीचर-सेन**=राक्षसों की सेना। **बहरी**=एक प्रकार का शिकारी पक्षी। **हहरी है**=डर गई है। **अलंकार**—उल्लेख।

भावार्थ—हनुमान भयंकर यम और काल से वानर और भालुओं की सेना की रक्षा करने हेतु पहरुवा के समान हैं; लंका के सदृश टेढ़े और महादुर्गम गढ को गिराने और जलाने को अतिशय क्रोधी हैं और राक्षसों की सेना रूपी तीतर-समूह को नाश करने के लिए शिकारी बाज की तरह हैं। हे नाथ, (यह सब विचार कर) राक्षसों की सेना मन ही मन डर गई है, अतः रामचन्द्रजी से मेल करने में ही भला है।

रोष्यो रन रावन, बोलाए बीर बानइत,
जानत जे रीति सब संजुग-समाज की।
चली चतुरंग चमू, चपरि हने निसान,
सेना सराहन जोग रातिचर-राज की।
'तुलसी' बिलोकि कपि भालु किलकत,
ललकत लखि ज्यों कंगाल पातरी सुनाज की।
राम रुख निरखि हरषे होय हनुमान,
मानों खेलवार खोली सीसताज बाज की ॥३०॥

टिप्पणी—रोष्यो=क्रुद्ध हुआ। **बानइत**=युद्ध का बाना बाँधे हुए। **संजुग**=(सं० संयुग) युद्ध। **चतुरंग चमू**=चतुरंगिणी सेना (पैदल, रथी, अश्वारोही, गजारोही=ये सेना के चार मुख्य अंग हैं)। **चपरि**=फुरती से। **हने निसान**=नगाड़े बजाए। **सराहन जोग**=प्रशंसा-योग्य। **रातिचर-राज**=राक्षसों का राजा रावण। **रातिचर**=(सं०) रात्रिचर। **ललकत**=लालायित होते हैं। **कंगाल**=दरिद्र। **पातरी**=पत्तल। **सुनाज**=सुन्दर अन्न, खाद्य पदार्थ। **खेलवार**=शिकारी। **सीसताज**=कुलह, सिर की टोपी (शिकारी बाज की आँखें उसके सिर में टोपी बंद की जाती हैं शिकार के दिखाई देने

पर बाज का मुँह शिकार की ओर करके टोपी उतार ली जाती है जिससे बाज की नजर में पहले शिकार ही आता है और वह उसको झपटकर पकड़ लेता है)। **अलंकार**—उदाहरण (तीसरे चरण में), उत्प्रेक्षा (चौथे चरण में)।

भावार्थ—मंदोदरी से रामचन्द्रजी का प्रताप सुनकर रावण को अति क्रोध हुआ। उसने अपने वीर योद्धाओं को बुलाया, जो युद्ध का बाना बाँधे हुए थे और जो युद्ध की सामग्री की सब रीतियों को, अर्थात् सब प्रकार से अस्त्र-शस्त्र चलाने की रीतियों को जानते थे। जल्दी से नगाड़ों पर चोटें पड़ने लगीं। चतुरंगिणी सेना युद्ध को चली। उस समय रावण की सेना प्रशंसा के योग्य थी। तुलसीदास कहते हैं कि उस सेना को देखकर वानर और रीछ (आनंद के कारण) किलकारी मारने लगे और उनको मारने के लिए ऐसे लालायित हुए जैसे सुन्दर भोजन का पत्तल देखकर कंगाल खाने के लिए आतुर होता है। उस समय रामचन्द्रजी की युद्ध करने की इच्छा देखकर हनुमानजी हृदय मे ऐसे प्रसन्न हुए मानो शिकारी ने बाज के कुलह (सिर ढकने की टोपी) को खोल दिया हो (और बाज शिकार को देखकर प्रसन्न हुआ हो)।

साज कै सनाह, गजगाह सउछाह दल,
महाबली धाए बीर जातुधान धीर के।
इहाँ भालु बंदर बिसाल मेरु मंदर से,
लिये सैल साल तोरि नीरनिधि-तीर के।
'तुलसी' तमकि ताकि भिरे भारी जुद्ध क्रुद्ध,
सेनप सराहैं निज निज भट भीर के।
रुंडन के झुंड झूमि झूमि झुकरे से नाचैं
समर सुमार सूर मारे रघुबीर के ॥३१॥

टिप्पणी—**सनाह**=(सं० सन्नाह) कवच। **गजगाह**=हाथी के ऊपर की झूल, पाखर। **सउछाह**=(स+उत्साह) उत्साह से। **दल**=सेना। **धाए**= दौड़े। **सैल**=शैल, पर्वत। **साल**=शाल, एक वृक्ष विशेष, यहाँ वृक्षमात्र से तात्पर्य है। **तमकि**=जोर से। **ताकि**=किसी को लक्ष्य में रखकर। **सेनप**= सेनापति। **निज निज भीर के भट**=अपने-अपने समूह के योद्धाओं को। **रुंड**=शिररहित धड़। **झूमि-झूमि**=बड़े झोंक से। **झुकरे से**=झुंझलाए हुए से। **समर**=रणभूमि में। **सुमार**=अच्छी मार, कराल आघात। **अलंकार**— उत्प्रेक्षा।

भावार्थ—धैर्यशाली रावण के बड़े बली वीरों का दल कवच सजाकर, हाथी घोड़ों पर पाखरें उत्साह से रणभूमि की ओर दौड़ा। इधर सुमेरु

और मंदराचल पर्वत के समान बड़े-बड़े बंदर समुद्र के किनारे के पर्वत और वृक्ष उखाड़कर लिए हुए थे। तुलसीदास कहते हैं कि (दोनों ओर के योद्धा) क्रुद्ध होकर वेग से एक दूसरे से भिड़ गए, और बड़ा भारी युद्ध हुआ। सेनापति लोग अपने-अपने समूह के योद्धाओं की प्रशंसा करने लगे। रामचन्द्रजी की अच्छी मार से (कराल आघात से) वीरों के रुंडों के समूह मतवालों की तरह झूम-झूमकर झुँझलाए हुए से नाचने लगे।

> तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छँटि छैल छबीले।
> भारी गुमान जिन्हें मन में, कबहूँ न भए रन में तनु ढीले।
> 'तुलसी' गज से लखि केहरि लौं झपटे पटके सब सूर सलीले।
> भूमि परे भट घूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीले ॥३२॥

टिप्पणी—**तीखे**=तीक्ष्ण, तेज दौड़ने वाले। **गुमान**=(वीरता का) गर्व। **तनु ढीले न भए**=भय के मारे शिथिल न हुए। **केहरि**=सिंह। **लौं**=सदृश। **सलीले**=लीला से, खेल में। **कराहत**=पीड़ा के कारण चिल्लाते हैं। **हाँकि**=ललकार कर। **हने**=मारे। **हठीले**=धैर्यवान।

भावार्थ—जिन राक्षसों के मन में अपने बल का बड़ा भारी गर्व था, जिनके शरीर रणक्षेत्र में कभी शिथिल न हुए, ऐसे चुने हुए सुन्दर छैल छबीले, हिरन के समान तीक्ष्ण वेगवाले और सुन्दर रंग के घोड़ों को सजाकर उन पर सवार हुए। तुलसीदास कहते हैं कि हठीले हनुमान ने (रावण के पक्ष के) उन सब शूरों को हाथी की तरह विचार कर स्वयं सिंह की तरह ललकार कर उनको झपटकर पटक दिया और मार डाला। ये योद्धा चक्कर खा कराहते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े।

> सूर सँजोइल साजि सुबाजि, सुसेल धरे बगमेल चले हैं।
> भारी भुजा भरी, भारी सरीर, बली बिजयी सब भाँति भले हैं।
> 'तुलसी' जिन्हें धाए धुकै धरनीधर, धौर धकानि सों मेरु हले हैं।
> ते रन-तीर्थनि लक्खन लाखन-दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं ॥३३॥

टिप्पणी—**सँजोइल**=अस्त्र-शस्त्रादि युद्ध की आवश्यक सामग्री से युक्त। यह शब्द 'सँजोक' से बना है। (इसका अर्थ है 'किसी भी कार्य के लिए आवश्यक सामग्री')। **सुबाजि**=सुन्दर घोड़े। **सुसेल**=सुन्दर साँग (अस्त्र विशेष)। **बगमेल**=पंक्ति बाँधे हुए, एक कतार में। **जिन्हें धाए**=जिनके दौड़ने से। **धुकै**=धुकधुक करती है, काँपती है। **धरनीधर**=शेषनाग। **धौर धकानि**=दौड़ के धक्कों से। **मेरु**=सुमेरु पर्वत। यहाँ पर पर्वत मात्र का बोधक है

लाखन-दानि = लाखों रुपयों का दान देनेवाला । दारिद = (सं०) दरिद्र । अलंकार—रूपक से पुष्ट उदाहरण ।

भावार्थ—रावण-पक्ष के योद्धा सब अस्त्र-शस्त्रादि आवश्यक युद्ध सामग्री से युक्त होकर, सुन्दर घोड़ों को सजाकर साँग को (हाथ में) लिये हुए पंक्ति बाँधकर चले । उनकी भुजाएँ बड़ी लंबी और भरी हुई थीं, शरीर खूब भारी था । सब बली और जय प्राप्त करनेवाले थे और सब प्रकार से अच्छे थे । तुलसीदास कहते हैं कि जिनके दौड़ने से शेषनाग काँपते थे, और जिनकी दौड़ के धक्कों से पर्वत भी हिल जाते थे, उन राक्षसों को लक्ष्मण ने रणभूमि में ऐसे मार डाला जैसे लाखों रुपयों का दान देनेवाला कोई दानी किसी तीर्थ में (दान दे-देकर) दरिद्रता को दबा देता है ।

गहि मंदर बन्दर भालु चले सो मनों उनए घन सावन के ।
'तुलसी' उत झुंड प्रचंड झुके, झपटे भट जे सुरदावन के ।
बिरुझे बिरुदैत जे खेत अरे, न टरै हठि बैर बढ़ावन के ।
रन मारि मची उपरी-उपरा, भले बीर रघुप्पति रावन के ।।३४।।

टिप्पणी—**गहि** = पकड़कर । **मंदर** = मंदराचल पर्वत; यहाँ पर्वत मात्र का बोधक है । **उनए** = उमड़ आए, छा गए । **सावन** = (सं०) श्रावण । **झुके** = क्रुद्ध हुए । **सुरदावन** = (सुरदमन) देवताओं को दमन (वश में) करने वाला, रावण । **बिरुझे** = भिड़ गए । **बिरुदैत** = वीरता का बाना बाँधे हुए । **उपरी-उपरा** = परस्पर प्रतिस्पर्द्धा करते हुए एक दूसरे को जीतने का प्रयत्न करते हुये ।

भावार्थ—एक ओर से बंदर और भालू पर्वतों को ले-लेकर इस प्रकार चले मानो श्रावण के बादल आकाश में उमड़ आए हों । दूसरी ओर से रावण के योद्धाओं का झुंड अत्यन्त क्रुद्ध होकर झपटा । जबर्दस्ती शत्रुता बढ़ानेवाले और वीरता का बाना बाँधे हुए दोनों पक्षों के वीर जो रणभूमि में अड़े थे, एक दूसरे से भिड़ गए और कोई भी रणभूमि से न हटा । रामचंद्रजी और रावण के अच्छे और वीर योद्धाओं में परस्पर जीतने का प्रयत्न करते हुए रणक्षेत्र में खूब गुत्थमगुत्था हुई ।

सर तोमर सेल समूह पवारत, मारत बीर निसाचर के ।
इत तें तरु ताल तमाल चले, खर खंड प्रचंड महीधर के ।
'तुलसी' करि केहरि-नाद भिरे भट खग्ग खगे, खपुवा खरके ।
नख दंतन सों भुजदंड बिहंडत, रुंड सों मुंड परे झरके ।।३५।।

टिप्पणी—**सर** = बाण । **तोमर** = बरछा । **सेल** = साँग । **पवारत** फेंकते

है। **महीधर के प्रबंड खर खड**=पहाड़ के बड़े-बड़े तीखे टुकड़े। **केहरिनाद**= सिंहनाद, सिंह की तरह गरजकर। **भिरे**=भिड़ गए। **खग्ग**=(सं० खग) तलवार। **खगे**=(खड्ग से क्रिया बना ली है)। **बिध गए**=धँस गए। **खपुष**=कायर, भगोड़े। **खरके**=खिसक गए, भग गए। **बिहंडत**=(बिखंडत) काट देते थे। **झर के**=झड़कर, टूटकर।

भावार्थ—उधर से रावण के वीर बाण, बरछा और साँगों के समूह फेंक-फेंककर मारते थे, इधर से (रामचंद्रजी की ओर से) ताल, तमाल आदि के वृक्ष और पहाड़ों के बड़े तीक्ष्ण खंड चलते थे। तुलसीदास कहते हैं कि योद्धा लोग सिंहनाद करके भिड़ गए, और तलवारों के बीच में धँस गए, पर कायर लोग खिसक गये। (योद्धा) नखों और दाँतों से हाथी को काट देते थे और रुंड से मुंड झड़कर गिरते जाते थे।

रजनीचर मत्त गयंद-घटा बिघटै मृगराज के साज लरै।
झटकै, भट कोटि मही पटकै, गरजै रघुबीर की सौंह करै।
'तुलसी' उत हाँक दसानन देत, अचेत भे बीर, को धीर धरै?
बिरुझो रन मारुत को बिरुदैत, जो कालहु काल सो बूझि परै॥३६॥

टिप्पणी—**रजनी**=रात। **रजनीचर**=राक्षस। **मत्तगयंद-घटा**=मत्त हाथियों के समूह। **गयंद**=(सं० गजेन्द्र, प्रा० गएंद) बड़ा हाथी। **बिघटै**= नाश करने को। **मृगराज के साज**=सिंह की तरह। **सौंह**=सौगंद। **हाँक देत**=ललकारता है। **अचेत**=चेतनारहित, बेसुध। **बिरुझो**=क्रुद्ध हुआ। **कालहु काल सो बूझि परै**=काल का भी नाशक समझ पड़ता है।

भावार्थ—राक्षसरूपी मस्त हाथियों के समूह को नाश करने के लिए हनुमानजी सिंह के समान लड़ते हैं। रामचंद्रजी की सौगंद करके गरजते हैं और झपटकर करोड़ों योद्धाओं को पृथ्वी पर पटक देते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उधर से रावण ललकारता है जिसे सुनकर (रामचंद्रजी के पक्ष के) वीर बेसुध हो जाते हैं। उस ललकार को सुनकर कौन ऐसा है जो धैर्य धारण कर सके? (अर्थात् कोई नहीं) वायु का वीर पुत्र हनुमान जो काल को भी काल की तरह जान पड़ता था, युद्ध में भिड़ गया।

जे रजनीचर बीर बिसाल कराल बिलोकत काल न खाए।
ते रनरौर कपीस-किसोर बड़े बरजोर, परे फँग पाए।
लूम लपेटि अकास निहारि कै हाँकि हठी हनुमान चलाए।
सूखि गे गात चले नभ जात, परे भ्रम-बात न भूतल आए॥३७॥

टिप्पणी—**रन-रौर**=कठिन युद्ध में। **कपीस-किसोर**=हनुमान ने। **फँग**=

फंदा, पंजा। परे फँग पाए = फंदे में फँसा हुआ पाया। बड़े बरजोर = बड़े बलवान। लूम = पूँछ। अकास निहारि = आकाश की ओर देखकर (आकाश की ओर इसलिए देखा कि कहीं युद्ध-दर्शनार्थ आये हुए देवताओं के विमान से न टकरा जायँ)। हाँकि = ललकार कर। गे = गये। भ्रमबात = वायु के बवंडर में। गात = (सं० गात्र) शरीर।

भावार्थ—जिन वीर और बड़े राक्षसों को काल ने भी भयकर समझकर नही खाया, उनको बड़े बलवान हनुमान ने बड़े कठिन युद्ध में अपने पंजे में फँसा हुआ पाया, और उनको पूँछ में लपेटकर, आकाश की ओर देखकर, ललकारते हुए हठी हनुमान ने (आकाश की ओर) फेंक दिया। आकाश मे जाते हुए उनके शरीर सूख गए और बवंडर में पड़कर (घूमते हुए) फिर पृथ्वी पर न आए।

नोट—७० किलो मीटर के ऊपर जो चीज फेंक दी जाय, वह फिर जमीन मे न आ सकेगी।

जो दससीस महीधर ईस को, बीस भुजा खुलि खेलन हारो।
लोकप दिग्गज दानव देव सबै सहमैं सुनि साहस भारो।
बीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो।
सो हनुमान हनी मुठिका गिरि गो गिरिराज ज्यों गाज को मारो॥३८॥

टिप्पणी—**महीधर** = पर्वत। **ईस** = शिवजी। **ईस को महीधर** = कैलास। **सहमैं** = डर जाते हैं। **पँवारो** = वीरगाथा। **अजहुँ जग जागत जासु पँवारो** = अब भी (इस कलिकाल में भी) जिसकी वीरगाथा प्रकाशमान है। **गाज को मारो** = वज्र का मारा हुआ। **अलंकार**—उदाहरण।

भावार्थ—जिस रावण ने कैलास पर्वत से अपने बीसों हाथों से खुलकर खेल किया अर्थात् खेल ही में उठा लिया, जिसके बड़े भारी पराक्रम को सुनकर लोकपाल, दिक्पाल, दानव, देवता, सब ही डर जाते थे, जिसके पराक्रम की कथा अब भी संसार में प्रकाशमान है, ऐसे वीर, बली और बड़े विरुदवा रावण को हनुमान ने मुष्टिका से प्रहार किया तो वह इस प्रकार गिर पडा जैसे वज्र का मारा हुआ बडा पर्वत गिर जाय।

दुर्गम दुर्ग, पहार तें भारे, प्रचंड महा भुजदंड बने हैं।
लक्ख में पक्खर तिक्खन तेज जे सूर-समाज में गाज गने हैं।
ते बिरुदैत बली रन-बाँकुरे हाँकि हठी हनुमान हने हैं।
नाम लै राम दिखावत बंधु को, घूमत घायल घाय घने हैं॥३९॥

टिप्पणी—**दुर्गम** = अगम्य। **दुर्ग** = कोट किला। **पक्खर** = कवच लडाई

की भूल । लच्छ में पच्छर = लाखों सैनिकों के बीच में कवच-स्वरूप, सैनिकों की रक्षा करनेवाले, अर्थात् बड़े वीर । तिच्छन तेज = तेज में अति तीक्ष्ण अर्थात् अत्यंत तेजस्वी । जे सूर-समाज में गाज गने हैं = जो योद्धाओं के समूह में वज्रवत् माने जाते हैं अर्थात् वज्र की तरह योद्धाओं के समूह को नष्ट कर देते हैं । घाय = घाव । घने = बहुत ।

भावार्थ—जो किले के समान अगम्य अर्थात् अजित हैं, जो पहाड़ से भी भारी हैं, जिनकी भुजाएँ बड़ी प्रचंड हैं, जो लाखों की रक्षा करने को कवच-स्वरूप हैं, जो अत्यंत तेजस्वी हैं, और जो योद्धाओं के समूह का नाश करने के लिए वज्र के समान हैं, उन्हीं वीर, बली और रण में बाँके राक्षसों को ललकार कर हनुमान ने मार दिया । रामचंद्रजी उनका नाम लेकर लक्ष्मण को दिखाते हैं कि ये जो बहुत घावों से युक्त घायल घूमते हैं वे हनुमानजी के मारे हुए हैं ।

हाथिन सों हाथी मारे, घोरे घोरे सों सँहारे,
रथनि सों रथ बिदरनि, बलवान की ।
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहें,
हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की ।
बार बार सेवक-सराहना करत राम,
'तुलसी' सराहै रीति साहेब सुजान की ।
लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट,
देखौ देखौ, लखन ! लरनि हनुमान की ॥४०॥

टिप्पणी—सँहारे = मारे, नाश किए । बिदरनि = विदारना, तोड़ना । चपेट = थप्पड़ । चकोट = नोचना । चाहें = देखकर । हहरानी = डरी हुई । भहरानी = भग गई । सराहै = प्रशंसा करता है । साहेब = स्वामी । सुजान = सज्ञान । लूम = पूँछ । लसत = शोभित होती है । लरनि = लड़ना, युद्ध-कौशल ।

भावार्थ—हनुमानजी हाथियों को हाथी पर पटक कर मारते हैं, घोड़ों को घोड़ों से नाश करते हैं, रथों से रथों को टकराकर तोड़ देते हैं । बलवान हनुमान के चंचल हाथों के थप्पड़ों की चोट और पैरों से मांस का नोचना देखकर रावण की डरी हुई फौजें भग गई हैं । रामचंद्रजी बार-बार सेवक हनुमान की सराहना करते हुए कहते हैं (क्योंकि सुजान साहेब सेवक की सराहना करता है) कि हे लक्ष्मण, हनुमान का युद्ध-कौशल देखो । जिस समय वे अपनी लंबी पूँछ से योद्धाओं को लपेट कर पटकते हैं उस समय उनकी पूँछ बहुत शोभित

होती है (रामजी सदा सेवक के गुणग्राहक हैं)। अपने चतुर स्वामी की रीति की तुलसीदास भी सराहना करते हैं।

> दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक,
> मगन मही में एक गगन उड़ात हैं।
> पकरि पछारे कर, चरन उखारे एक,
> चीरि फारि डारे, एक मीँजि मारे लात हैं।
> 'तुलसी' लखत राम-रावन, बिबुध, बिधि,
> चक्रपानि, चंडीपति, चंडिका सिहात हैं।
> बड़े बड़े बानइत बीर बलवान बड़े,
> जातुधान जूथप निपाते बात-जात हैं ॥४१॥

टिप्पणी—दबकि = झपट कर। दबोरे = दबा दिया। एक = किसी को। बोरे = डुबा दिया। मगन मही में = पृथ्वी में गिर गए। गगन = आकाश। मीँजि = मर्दन कर दिया, मसल दिया। बिबुध = देवता। चक्रपानि = विष्णु। चंडीपति = शिवजी। सिहात हैं = ईर्ष्या करते हैं। जूथप = (सं० यूथप) सेनापति। यूथ = झुंड। निपाते = गिरा दिए, मार डाले। बात-जात = वायु-पुत्र हनुमान।

भावार्थ—किसी को हनुमानजी ने झपट कर दबा दिया, किसी को समुद्र में डुबा दिया, किसी को पृथ्वी पर गिरा दिया, किसी को आकाश में उड़ा दिया, किसी के हाथ पकड़ कर पछाड़ दिया, किसी के पैर उखाड़ दिये, किसी को चीर-फाड़ डाला, और किसी को लातों से मार कर कुचल दिया। तुलसीदास कहते हैं कि हनुमानजी ने वीरता का बाना बाँधे हुए बड़े-बड़े वीरों और बडे-बडे बलवान राक्षस सेनापतियों को मार डाला। यह देख कर राम, रावण, देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और चंडिका हनुमानजी के बल की ईर्ष्या करते हैं (कि हम में ऐसी फुरती होती तो अच्छा होता)।

> प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड बीर,
> धाए जातुधान हनुमान लियो घेरि कै।
> महाबल-पुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट,
> जहाँ-तहाँ पटके लँगूर फेरि फेरि कै।
> मारे लात, तोरे गात, भागे जात, हाहा खात,
> कहैं 'तुलसीस' राखि राम की सौं टेरि कै।
> ठहर ठहर परे कहरि कहरि उठैं,
> हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि कै ॥४२॥

प्रचंड = अत्यन्त प्रतापी। बरिबंड = । हनुमा

लियो घेरि कै=हनुमान जी को घेर लिया । पुंज=समूह । महाबल पुंज= अत्यत बलशाली । कुंजरारि= (कुंजर=हाथी + अरि) सिह । गात=(सं० गात्र) शरीर । हाहा खात=विनती करते हुए । तुलसीस=हे हनुमान ! राखि=रक्षा करो । सौं=शपथ । टेरि कै=चिल्ला चिल्लाकर । ठहर= स्थान । परे=गिरे हुए । कहरि कहरि उठैं=कराहते है, आर्तनाद करते है । हहरि हहरि=खिलखिलाकर । हर=शिवजी । हेरि कै=देखकर ।

भावार्थ—अति प्रतापी शक्तिशाली भुजाओं वाले वीर राक्षस दौड़े और हनुमान को घेर लिया । उनको देखकर बड़े बलशील हनुमानजी सिह की तरह गरजे और पूँछ घुमाकर योद्धाओं को इधर-उधर पटक दिया । लातों से मार-मार कर शरीर चूर कर दिया । सब हा-हा करते हुए भागने लगे और चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे कि हे हनुमान, तुमको राम की शपथ है हमारी रक्षा करो । स्थान-स्थान पर घायल लोग पड़े हुए कराहते थे, जिसे देख-देख कर महादेवजी और सिद्धगण (देवयोनि विशेष) खिलखिला कर हँसने लगे ।

जाकी बाँकी बीरता सुनत सहमत सूर,
जाकी आँच अजहूँ लसत लंक लाह सी ।
सोई हनुमान बलवान बाँके बानइत,
जोहि जातुधान सेना चले लेत थाह सी ।
कंपन अकंपन, सुखाय अतिकाय काय,
कुंभऊकरन आइ रह्यो पाइ आह सी ।
देखे गजराज मृगराज ज्यों गरजि धायो,
बीर रघुबीर को समीरसूनु साहसी ॥४३॥

टिप्पणी—सहमत=डर जाते हैं । आँच=प्रताप की आँच (ताप) से । लंक लाह सी लसत=लंका पिघली लाह की तरह दिखलाई देती है । जोहि= देखकर । थाह लेना=परिणाम जानना । काय=शरीर । कुंभऊकरन= कुभकर्ण भी । आह सी पाइ रह्यो=आह करके रह गया, कुछ न कर सका । अलंकार—अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा (दूसरे चरण में) । उदाहरण (चौथे चरण में) ।

भावार्थ—जिसकी अद्वितीय वीरता को सुनकर सुर लोग डर जाते है, जिसके प्रताप की गरमी से लंका अब भी लाह की तरह पिघली दिखाई पड़ती है, वही बलवान और बाँके विरुद वाले हनुमान राक्षसों की सेना को देखकर बीच में इस प्रकार घुस गए मानो वे उस सेना की थाह-सी ले रहे हों उनको

देखकर अकंपन (रावण का पुत्र) भी काँपने लगा, अतिकाय (रावणपुत्र) का शरीर भी सूख गया और कुंभकर्ण भी आकर कुछ न कर सका। रामचंद्रजी का वीर और वायु का साहसी पुत्र हनुमान गरज कर राक्षसों पर ऐसे दौड़ा जैसे हाथी को देखकर सिंह।

झूलना छंद

मत्तभट - मुकुट - दसकंध - साहस - सइल,
सृंग-बिद्दरनि जनु बज्र-टाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ,
सेष संकुचित, संकित पिनाकी।
चलति महि मेरु, उच्छलित सायर सकल,
बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी।
रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत,
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी ॥४४॥

टिप्पणी—मत्तभट-मुकुट-दसकंध-साहस-सइल सृंग बिद्दरनि = बल से उन्मत्त योद्धाओं में शिरोमणि रावण के साहसरूपी पर्वत की चोटी को विदारण करने को (फाड़ने को) अर्थात् अति बलवान् रावण के साहस को चूर-चूर करने को। बज्र-टाँकी = वज्र की बनी छेनी। दसन धरि धरनि = पृथ्वी को दाँतों से दबाकर। चिक्करत = चिघाड़ते हैं। पिनाकी = शिवजी। मेरु = पर्वत। सायर = (सं० सागर, प्रा० साअर) समुद्र। घरनि = गृहिणियाँ, स्त्रियाँ। अर्भक = बालक। स्रवत = गिर जाते हैं।

भावार्थ—हनुमानजी की भयंकर ललकार, बल से उन्मत्त योद्धाओं में श्रेष्ठ रावण के साहसरूपी पर्वत के शिखर को चूर-चूर करने के लिए मानो वज्र की टाँकी थी। उस ललकार को सुनकर दिशाओं के हाथी पृथ्वी को दाँतों से दबाकर चिंघाड़ने लगे। कच्छप और शेषनाग भय के मारे सिकुड़ने लगे। महादेवजी भी डर गए। पृथ्वी और पर्वत हिलने लगे, सब समुद्र उछलने लगे। व्याकुल और बधिर होकर ब्रह्मा भी दिशा-विदिशाओं में (इधर-उधर) ताकने लगे। घरों में राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ के बच्चे गिरने लगे।

कौन की हाँक पर चौंक चंडीस, बिधि,
चंडकर थकित फिरि तुरँग हाँके।
कौन के तेज बलसीम भट भीम से,
भीमता निरखि कर नयन ढाँके।
दास तुलसी के बिरुद बरनत बिदुष,
बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके।

नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन,
कहाँ हनुमान से बीर बाँके ॥४५॥

टिप्पणी—हाँक = ललकार । चंडीस = शिवजी । चंडकर = चंड (तेज) हैं कर (किरणें) जिसकी (वहुव्रीहि समास) सूर्य । थकित = स्थिर होकर । तुरग = घोड़े । बलसीम = बल की सीमा, असीम बलशाली । भीमता = भयंकरता । निरखि = देखकर । बिरुद = वीरता का यश । बिबुध = विद्वान् लोग । बर बैरि = श्रेष्ठ वैरियों में । थाकि = धाक जमा दी । नाक = स्वर्ग । नरलोक = मृत्युलोक, पृथ्वी । बाँके = टेढ़े ।

भावार्थ—किसकी ललकार सुनकर शिव और ब्रह्मा चौंक पड़े और सूर्य के घोड़े स्थिर हो गए, अतः उन्हें फिर से हाँकना पड़ा। किसके तेज की भयंकरता को देखकर भीम के सदृश बलवान योद्धा ने भी आँखें मूँद ली थीं ? तुलसीदास कहते हैं कि हनुमान की वीरता के यश को विद्वान् लोग इस प्रकार वर्णन करते हैं कि हनुमान ने विरुदावली वाले श्रेष्ठ वीरों में अपनी धाक जमा दी । कहते क्यों नहीं ? हनुमान के समान बाँके वीर स्वर्लोक, मर्त्यलोक और पाताल लोक अर्थात् तीनों लोकों में कहाँ हैं ? (भाव कहीं नहीं) ।

जातुधानावली - मत्त - कुंजर - घटा,
निरखि मृगराज जनु गिरि तें टूट्यो ।
बिकट चटकन चपट, चरन गहि पटकि महि,
निघटि गए सुभट, सत सबको छूट्यो ।
दास तुलसी परत धरनि, धरकत झुकत,
हाट सी उठति जंबुकनि लूट्यो ।
धीर रघुबीर को बीर रनबाँकुरो,
हाँकि हनुमान कुलि कटक 'टूट्यो ॥४६॥

टिप्पणी—जातुधानावली-मत्त-कुंजर-घटा = राक्षसों की पंक्ति मानो मत्त हाथियों का समूह है । निघटि गए = नाश हो गए । सत = (सं० सत्व) प्राण । धरकत = धड़कते हैं । झुकत = झुक जाते हैं । हाट सी उठति = उठते हुए बाजार की तरह । जम्बुक = गीदड़ । कुलि कटक = सब सेना ।

भावार्थ—हनुमानजी राक्षसों की सेना पर इस प्रकार टूट पड़े मानो मत्त हाथियों के समूह को देखकर पहाड़ से सिंह झपट पड़ा हो । कठिन थप्पड़ों की चोटों से और पैर पकड़कर पृथ्वी पर पटकने से उनके प्राण छूट गये और

सब योद्धा नष्ट हो गए । तुलसीदास कहते हैं कि सब राक्षस पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं, और करते हुए झुक जाते हैं। शृंगाल उनके मांस को इस प्रकार लूटते हैं जैसे सायंकाल के समय उठते हुए बाजार को लुटेरे लूट लेते हैं। धैर्यवान रामचंद्रजी के वीर और रणकुशल हनुमानजी ने ललकारकर कुल सेना को कूट दिया अर्थात् मार डाला ।

छप्पय

कतहुँ बिटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत ।
कतहुँ बाजि सों बाजि मर्दि, गजराज करक्खत ।
चरन चोट चटकन चकोट अरि-उरसिर बज्जत ।
बिकट कटक बिद्दरत, बीर बारिद जिमि गज्जत ।
लंगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम जय' उच्चरत ।
तुलसीस पवन-नंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत ॥४७॥

टिप्पणी—कतहुँ = कहीं । बिटप = वृक्ष । भूधर = पर्वत । पर-सेन = शत्रु की सेना । बरक्खत = वर्षा करते हैं । बाजि = घोड़ा । मर्दि = मर्दन कर, मींज-कर । करक्खत = (सं० कर्षत) खींचते हैं । बज्जत = लगते हैं । बिद्दरत = विदारण करते हैं, नाश करते हैं । कौतुक = तमाशा ।

भावार्थ—हनुमानजी कहीं तो पेड़ और पहाड़ उखाड़कर शत्रु सेना पर बरसाते हैं, कहीं घोड़े से घोड़े को मसल देते हैं, और हाथियों को खींच ले जाते हैं। कहीं शत्रु की छाती और सिर पर चरणों की चोट और थप्पड़ों की चकोट लगती है, कहीं बादल के समान गर्जन करते हुए वीर हनुमानजी राक्षसों की भयंकर सेना का नाश करते हैं, कहीं योद्धाओं को पूँछ में लपेट कर पटक देते हैं, और कहीं रामचन्द्रजी का जय-जयकार उच्चारण करते हैं। तुलसीदास के स्वामी, वायुपुत्र हनुमानजी युद्ध में अटल होकर क्रोध से तमाशा करते हैं ।

कवित्त मनहरण

अंग अंग दलित ललित फूले किंसुक से,
हने भट लाखन लखन जातुधान के ।
मारि कै पछारि कै उपारि भुजदंड चंड,
खंड खंड डारे ते बिदारि हनुमान के ।
कूदत कबंध के कदंब बंब सी करत,
धावत दिखावत हैं लाघौ राघौ बान के ।
'तुलसी' महेस, बिधि, लोकपाल, देवगन,
देखत बिमान चढ़े कौतुक मसान के ॥४८॥

टिप्पणी—**दलित** = घायल । **ललित** = रक्त से भरे हुए, अतः ललाई से युक्त । **किंसुक** = ढाक, पलाश (यह फूल लाल होता है) । **लाखन** = लाखों । **कबंध** = बिना शिर के धड़ । **कदंब** = समूह । **बंब सी करत** = बं बं शब्द करते हुए । **लाघौ** = (सं० लाघव) फुरती, शीघ्रता, चातुर्य । **मसान** = (सं० श्मशान) रणभूमि ।

भावार्थ—रावण के लाखों योद्धा जिनके प्रत्येक अंग पर घाव है, जो रक्तरंजित होने के कारण फूले हुए पलाश की तरह लाल दिखाई देते है, वे लक्ष्मण के मारे हुए हैं । किसी को मारकर, किसी को पछाड़कर और किसी की प्रचंड भुजाओं को उखाड़कर खंड-खंड करके मार डाला है । वे हनुमान के मारे हुए हैं । जो कबंधों के समूह बं बं करते हुए और कूदते हुए दौड़ते हैं वे रामचन्द्रजी के बाणों का चातुर्य प्रकट करते हैं (अर्थात् जो शिर कटने पर भी कूदते और दौड़ते हैं वे रामचन्द्रजी के मारे हुए हैं) । तुलसीदास कहते है कि महादेव, ब्रह्मा, लोकपाल और देवगण व्योमयानों में चढ़कर रणभूमि रूपी श्मशान का कौतुक देखते हैं ।

लोथिन सों लोहू के प्रबाह चले जहाँ तहाँ,
मानहुँ गिरिन गेरु झरना झरत हैं ।
सोनित-सरित घोर, कुंजर करारे भारे,
कूल तें समूल बाजि-बिटप परत हैं ।
सुभट-सरीर नीरचारी भारी भारी तहाँ,
सूरनि उछाहु, कूर, कादर डरत हैं ।
फेकरि फेकरि फेरु फारि फारि पेट खात,
काक कंक बकुल कोलाहल करत हैं ॥४९॥

टिप्पणी—**लोथिन सों** = मृत शरीरों से । **सोनित** = (शोणित) रक्त की । **करारे** = किनारे । **बाजि बिटप** = घोड़े ही मानो वृक्ष हैं । **नीरचारी** = जलजंतु । **कूर** = कपटी । **कादर** = डरपोक, भीरु । **फेकरि** = चिल्लाकर । **फेरु** = गीदड़ । **बकुल** = बगुले । **कंक** = गिद्ध, इसके पर बाणों के सिरों पर लगाए जाते है । जिससे बाणों को 'कंक पत्र' भी कहते हैं ।

भावार्थ—इधर-उधर लोथों से जो रक्त के प्रवाह बह चले हैं वे मानो पहाड़ों से गेरू के झरने झरते हैं । रुधिर की इस भयंकर नदी के बड़े-बड़े हाथी ही किनारे हैं और किनारों से घोड़ेरूपी वृक्ष जड़सहित उखड़कर (नदी में) गिरते हैं । योद्धाओं के शरीर ही इस नदी के भारी-भारी जलजंतु हैं । इस भयंकर नदी को देखकर शूर लोगों का उत्साह बढ़ता है और कपटी और कायर डरते हैं

शृगाल चिल्लाते हुए (लोथों के) पेट फाड़कर खाते हैं। कौवे और गिद्ध पक्षी बगुलों की तरह कोलाहल करते हैं।

ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे,
मूँड़ के कमंडलु, खपर किए कोरि कैं।
जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापसी सी,
तीर तीर बैठीं सो समर-सरि खोरि कैं।
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कैं।
'तुलसी' बैताल भूत साथ लिए भूतनाथ,
हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि कैं॥५०॥

टिप्पणी—**ओझरी**=पेट का वह भाग जिसमें आँतें भरी रहती हैं। **सेल्ही**=गंडा। **मूँड़**=खोपड़ी। **खपर**=खप्पर। **कोरि कैं**=कोल कर, खुरच कर, गड्ढा बना करके। **झुटुंग**=योगिनी विशेष। **भूतनाथ**=शिवजी। **हाथ हाथ जोरि कैं**=एक दूसरे के हाथ पकड़कर।

भावार्थ—[गंगा-दशहरा (जेठ मास में) के दिन लोग पास की नदी के किनारे सतुआ बाँधकर ले जाते हैं और नदी में स्नान करके शर्बत में सान-कर खाते हैं अथवा शर्बत बनाकर पी जाते हैं। इसी प्रकार प्रथम छंद में वर्णित शोणित-सरिता के तट पर यह मेला लगा हुआ है।] कंधे पर ओझरी की झोली की तरह लटकाए हुए, आँतों के गंडे बाँधे हुए और शिरों के कमंडल और उन्हीं की कोल कर खप्पर लिए योगिनी और झुटुंग के झुंड के झुंड युद्ध की नदी में स्नान करके तपस्विनी सी बनी हुई किनारे-किनारे बैठी हुई हैं, कोई रक्त गुद्दी को सान-सानकर सत्तू की तरह खाते हैं, कोई प्रेतगण घोल-घोलकर पीते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि शिवजी वैताल और भूतों को साथ लिये फिरते हैं और यह तमाशा देख-देखकर एक-दूसरे के हाथ पकड़कर हँसते हैं।

नोट—वीभत्स रस।

मत्तगयंद सवैया

राम-सरासन तें चले तीर रहे न सरीर, हड़ावरि फूटी।
रावन धीर न पीर गनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटी।
सोनित छींट-छटानि-जटे 'तुलसी' प्रभु सोहैं, महाछबि छूटी।
मानो मरक्कत-सैल बिसाल में फैलि चलीं बर बीरबहूटी॥५१॥

टिप्पणी—हड़बारि = हाड़ावली । हड़ावर फूटी = हाड़ फोड़ कर निकल गये । जूटी = जुड़ गईं । सोनित = (शोणित) रक्त । छींट-छटानि-जटे = बूँदों की शोभा से जड़े हुए अथवा युक्त । मरकत-सैल = नील मणि के पर्वत पर बीरबहूटी = एक प्रकार के लाल-लाल कीड़े जो वर्षाकाल में होते हैं । अलंकार—उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा ।

भावार्थ—रामचंद्रजी के धनुष से बाण इतने वेग से चले कि वे शरीर में न रहे और हाड़ फोड़कर निकल गए । पर धैर्यवान् रावण ने इस पीड़ा को भी कुछ न समझा । उसके शरीर से रुधिर की धारा बहती हुई देखकर हाथों में खप्पर लेकर (रक्तपानार्थ) योगिनियाँ जुड़ गईं । तुलसीदास कहते हैं कि रामचंद्रजी रक्त की बूँदों की छटा से युक्त शोभायमान हुए । अद्भुत छवि ऐसी मालूम होती थी मानो बड़े भारी नीलमणि के पर्वत पर बीरबधूटियाँ फैल गई हों ।

मानी मेघनाद सों प्रचारि भारी भिरे भट,
आपने अपन पुरुषारथ न ढील की ।
घायल लखन-लाल लखि बिलखाने राम,
भई आस सिथिल जगन्निवास-दील की ।
भाई को न मोहु, छोहु सीय को न, तुलसीस,
कहैं "मैं बिभीषन की कछु न सबील की ।"
लाज बाँह बोले की, नेवाजे की सँभार सार,
साहेब न राम से, बलैया लेउँ सील की ॥५२॥

टिप्पणी—मानी = अभिमानी । प्रचारि = ललकारकर । जगन्निवास-दील की = रामचंद्रजी के मन की; यहाँ 'दिल' शब्द को तुकांत के लिए 'दील' किया गया है । छोहु = दुःख । तुलसीस = राम । सबील = प्रबंध । बाँह बोले की = शरण में लेने की । नेवाजे = शरणागत । साहेब = स्वामी । सील = शील-स्वभाव ।

भावार्थ—बड़े-बड़े योद्धा ललकारकर अभिमानी मेघनाद से भिड़ गए । अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार सब कोई लड़े । मेघनाद द्वारा घायल किए हुए प्यारे लक्ष्मण को देखकर रामचन्द्रजी बिलख-बिलख कर रोने लगे और उनके मन की (रावण को जीतना, सीता को लाना इत्यादि) आशाएँ शिथिल हो गईं । रामचन्द्रजी को न भाई का ही विशेष मोह हुआ, न सीताजी के विषय में ही कुछ दुःख हुआ । वे कहने लगे कि मैं विभीषण का कुछ प्रबंध न कर सका (राज्य न दिला सका) । (तुलसीदास कहते हैं कि) जिनको अपने शरण

में लेने की और अपने शरणागत की सार-सँभार करने की इतनी लज्जा है ऐसे
रामचन्द्रजी के समान कोई भी स्वामी नहीं, ऐसे शीलस्वभाव की मैं बलि जाऊँ।
मत्तगयंद

कानन बास, दसानन सो रिपु, आनन श्री ससि जीति लियो है।
बालि महाबलिसालि दल्यो, कपि पालि, बिभीषन भूप कियो है।
तीय हरी, रन बन्धु पर्‌यो, पै भर्‌यो सरनागत सोच हियो है।
बाँह-पगार उदार कृपालु, कहाँ रघुबीर सो बीर बियो है? ॥५३॥

टिप्पणी—आनन श्री ससि जीति लियो है = इतने प्रसन्न हैं कि इनकी
मुख की कांति ने चंद्रमा को जीत लिया है। बाँह-पगार = जिनकी भुजाएँ शरणा-
गत की रक्षा करने को चहारदीवारी की तरह हैं। शरणागत = शरण में आया
हुआ भक्त। पगार = (प्रकार) चहारदीवारी। बियो = दूसरा। अलंकार—
काकुवक्रोक्ति।

भावार्थ—एक तो वन में रहना, दूसरे रावण के समान शत्रु होना, इतने
पर भी रामचन्द्रजी के मुख की कांति ने चंद्रमा को जीत लिया। बड़े बलशाली
बालि को मारा, सुग्रीव की रक्षा की और विभीषण को राजा बनाया। सीता
हरी गई और भाई रणभूमि में पड़ा हुआ था। पर इनकी विशेष चिंता न कर
उनके हृदय में शरणागत का ही सोच है। ऐसे शरणागत प्रतिपालक, उदार
और कृपालु रामचन्द्रजी के समान दूसरा वीर कहाँ है? (कहीं नहीं)।

लीन्हों उखारि पहार बिसाल, चल्यो तेहि काल, बिलंब न लायो।
मारुतनंदन मारुत को, मन को, खगराज को बेग लजायो।
तीखी तुरा 'तुलसी' कहतो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो ॥५४॥

टिप्पणी—खगराज = गरुड़। तीखी = तीक्ष्ण, अत्यंत। तुरा = (त्वरा) वेग। पै = पर। समाउ = समता। प्रतच्छ = प्रत्यक्ष। परब्बत = पर्वत। नभ = आकाश में। लीक = लकीर। लसी = शोभित हुई। धुकि = झपटकर झोंके से चलकर, वेग से। अलंकार—उत्प्रेक्षा।

भावार्थ—हनुमानजी संजीवनी बूटी लेने गए, पर बूटी को न पहचान
सकने के कारण बड़े भारी (द्रोण) पर्वत को उखाड़ लिया। उसी समय
बिना विलंब के इतने वेग से चले कि उन्होंने वायु के, मन के और गरुड़ के
भी वेग को लज्जित कर दिया। तुलसीदास अत्यंत वेग का वर्णन करते, पर मन
में कोई समता की उपमा ही न सूझी। (अतः उत्प्रेक्षा करते हैं कि) हनुमानजी

इस वेग से दौड़े मानो आकाश में (दिव्यौषधियों से प्रकाशमान) पर्वत की लकीर सी शोभायमान प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हुई।

चल्यो हनुमान सुनि जातुधान कालनेमि,
पठयो, सो मुनि भयो, पायौ फल छलि कै।
सहसा उखारो है पहार बहु जोजन को,
रखवारे मारे भारे भूरि भट दलि कै।
बेग बल साहस सराहत कृपानिधान,
भरत की कुसल अचल ल्यायो चलि कै।
हाथ हरिनाथ के बिकाने रघुनाथ जनु,
सीलसिंधु तुलसीस भलो मान्यो भलि कै ॥५५॥

टिप्पणी—**जातुधान** = रावण ने। **पठयो** = भेजा। **जोजन** = (स० योजन)। चार कोश का एक योजन। **भूरि** = बहुत। **हरिनाथ** = कपिनाथ, हनुमान।

भावार्थ—हनुमानजी संजीवनी बूटी लाने गए हैं यह सुनकर रावण ने कालनेमि को भेजा। कालनेमि ने मुनिवेष धारणकर हनुमान को छलने का प्रयत्न किया और हाथों-हाथ कपट का फल पा गया। फिर द्रोणगिरि के रक्षकों को मारकर बहुत से योद्धाओं का संहार कर कई योजन के पर्वत को एकदम उखाड़ लिया। कृपालु रामचन्द्रजी हनुमान के वेग, बल और साहस की सराहना करने लगे। हनुमानजी दौड़कर भरत की कुशल और द्रोण पर्वत ले आए, अतः मानो रामजी हनुमानजी के हाथ बिक गये। सुशीलता के समुद्र रामचंद्रजी ने सब प्रकार से हनुमान का भला माना (कृतज्ञ हुए)।

बापु दियो कानन, भो आनन सुभानन सो,
बैरी भो दसानन सो, तीय को हरन भो।
बालि बलसालि दलि, पालि कपिराज को,
बिभीषन नेवाजि, सेतुसागर तरन भो।
घोर रारि हेरि त्रिपुरारि बिधि हारे हिये,
घायल लखन बीर बानर-बरन भो।
ऐसे सोक में तिलोक कै बिसोक पल ही में,
सबही को 'तुलसी' को साहिब सरन भो ॥५६॥

टिप्पणी—**बापु** = पिता ने। **कानन** = वन। **सुभानन** = चंद्रमा। **तीय** = स्त्री। **नेवाजि** = रक्षा करके। **रारि** = युद्ध। **बानरबरन** = रक्त वर्ण। **तिलोक** = त्रिलोक। **बिसोक कै** = शोकरहित करके। **पल ही में** = क्षणभर में। **साहिब** = स्वामी। **भो** = हुए।

भावार्थ—पिता ने वनवास दिया तब भी मुख चंद्र सम प्रसन्न ही बना

रहा। वन में रावण के समान बैरी हुआ, जिससे सीताजी हरी गईं (ऐसे शोक मे धैर्य न छोड़ा)। बलशाली बालि को मारकर सुग्रीव की रक्षा की और बिभीषण को शरण देकर सेतु द्वारा सागर को पार किया। राम-रावण के भयकर युद्ध को देखकर शिव और ब्रह्मा भी हृदय में (रावण का वध दुर्घट समझकर) घबड़ा गए। वीर लक्ष्मण भी घायल होकर रक्त से लाल वर्ण हो गए। ऐसे शोक में भी तीनों लोकों को (रावण को मारकर) पल में ही शोक से छुड़ाकर रामचंद्रजी सब को शरणप्रद हुए।

कुंभकरन्न हन्यो रन राम, दल्यो दसकंधर, कंधर तोरे।
पूषन-बंस-बिभूषन-पूषन तेज प्रताप गरे अरि-ओरे।
देव निसान बजावत गावत, साँवत गो, मन भावत भोरे।
नाचत बानर भालु सबै 'तुलसी' कहि हा रे! हहा भैया हो रे ॥५७॥

टिप्पणी—**कंधर** = ग्रीवा। **पूषन बंस बिभूषन** = सूर्य-वंश के भूषण। **पूषन-तेज** = सूर्य के तेज से। **गरे** = गल गए। **अरि-ओरे** = शत्रु रूप ओले। **साँवत** = सामतपना (अधीनता)। **गो** = नष्ट हुआ।

भावार्थ—रामचन्द्रजी ने युद्ध में कुम्भकर्ण को मार दिया। गर्दन तोड़कर रावण को भी मार दिया। सूर्यवंश के भूषण और सूर्य के समान तेजस्वी रामचन्द्रजी के प्रताप से शत्रुरूपी ओले गल गए। देवगण बाजे बजाते हुए गाते हैं कि अब हमारा सामंतपना गया अर्थात् स्वाधीन हुए, और हमारे मन की अभिलाषा पूरी हुई। तुलसीदास कहते हैं कि बानर, भालू सब नाचते हैं और हारे हारे कहकर हँसते हैं।

मारे रन रातिचर, रावन सकुल दल,
अनुकूल देव मुनि फूल बरसतु हैं।
नाग नर किन्नर बिरंचि हरि हर हेरि,
पुलक सरीर, हिये हेतु हरसतु है।
बाम ओर जानकी कृपानिधान के बिराजें,
देखत बिषाद मिटे मोद करसतु हैं।
आयसु भो लोकनि सिधारे लोकपाल सबै,
'तुलसी' निहाल कै कै दिये सरखतु हैं ॥५८॥

टिप्पणी—**हेतु** = प्रेम। **मोद करसतु हैं** = आनंद बढ़ता है। **निहाल कैकै** = परिपूर्ण कर करके। **सरखतु** = परवाना।

भावार्थ—रामचंद्रजी ने युद्ध में राक्षसों को मार दिया। रावण को भी कुलसहित और सेनासहित मार डाला। अत देवगण और मुनिजन अनुकूल

होकर फूल बरसाने लगे। नाग नर किन्नर ब्रह्मा विष्णु और महादेव को शरीर में यह देखकर पुलकावली छा गई, हृदय में प्रेम बढ़ा और बड़े ही आनंदित हुए। रामचंद्रजी की बाईं ओर सीताजी विराजमान थीं, यह देख कर सबके दु:ख मिट गए और आनंद बढ़ा। आज्ञा पाकर सब लोकपाल अपने-अपने लोकों को चले। तुलसीदास कहते हैं कि रामचंद्रजी ने सब (लोकपालों) को पूर्णकाम करके (अपने पद पर फिर नियुक्त किए जाने का) परवाना दिया।

उत्तरकांड

उपजाति सवैया

> बालि से बीर बिदारि सुकंठ थप्यो, हरसे सुर बाजने बाजे।
> पल में दल्यो दासरथी दसकंधर, लंक बिभीषन राज बिराजे।
> राम-सुभाव सुनें 'तुलसी' हुलसे अलसी हम से गलगाजे।
> कायर कूर कपूतन की हद तेउ गरीबनेवाज नेवाजे ॥१॥

टिप्पणी—बिदारि = मारकर। सुकंठ = सुग्रीव। थप्यो = स्थापित किया, राज्य दिया। दासरथी = (दशरथ का अपत्यवाची) राम। हुलसे = आनंदित हुए। हम से = मेरे समान पापी। गलगाजे = बड़ी-बड़ी बातें करने लगे, डींगें मारने लगे; 'गलगंजे उड़ाना' यह मुहावरा है। कूर = (सं० क्रूर) निष्ठुर। हद = सीमा। तेउ = वे भी। गरीबनेवाज = दीनदयालु। नेवाजे = कृपा की।

भावार्थ—रामचंद्रजी ने वालि के समान वीर को मारकर सुग्रीव को राज्य दिया। यह जानकर देवता प्रसन्न होकर बाजे बजाने लगे; क्षण भर में रावण को मारकर लंका में विभीषण का राज्य सुशोभित कर दिया। तुलसीदास कहते हैं कि राम का स्वभाव सुनकर हमारे समान आलसी आनंदित होकर डींगें मारने लगते हैं। जो कायर, क्रूर और कुपुत्रों की सीमा हैं अर्थात् जिनसे बढ़-कर डरपोक, क्रूर और कुपुत्र कोई है ही नहीं, उन पर भी दीनदयालु रामचंद्रजी ने कृपा की है।

मत्तगयंद सवैया—७ भगण + २ गुरु

> बेद पढ़ैं बिधि, संभु सभीत पुजावन रावन सों नित आवैं।
> दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि ते सिर नावैं।
> ऐसेउ भाग भगे दसभाल तें जो प्रभुता कबि कोबिद गावैं।
> राम से बाम भए तेहि बामहि बाम सबै सुख संपति लावैं ॥२॥

टिप्पणी—दयावने = दया के पात्र । दिन = प्रतिदिन । कोबिद = ज्ञानी, पंडित । बाम = विमुख । बामहि = कुटिल को । बाम लावें = बायाँ दे जाते हैं, दूर हटते हैं ।

भावार्थ—जिस रावण के घर में ब्रह्मा नित्य वेदपाठ करते थे, शिवजी डर के मारे स्वयं ही अपने को रावण से पुजवाने को आते थे, दया के पात्र देवता और दानव अति दीन और दुःखी होकर प्रतिदिन रावण को दूर ही से सिर झुकाते थे । रावण का ऐसा सौभाग्य भी उसे छोड़कर भाग गया । रामचन्द्रजी की जिस प्रभुता को कवि-कोविद गाते हैं वह यही है कि राम से विमुख होने से उस कुटिल व्यक्ति से सब सुख-संपत्तियाँ विमुख हो जाती हैं ।

बेद बिरुद्ध, मही मुनि साधु ससोक किए, सुरलोक उजारो ।
और कहा कहीं तीय हरी, तबहूँ करुनाकर कोप न धारो ।
सेवक-छोह ते छाँड़ी छमा, 'तुलसी' लख्यो राम-सुभाव तिहारो ।
तौं लौं न दाप दल्यो दसकंधर, जौ लौं बिभीषन लात न मारो ॥३॥

टिप्पणी—छोह = कृपा । छमा = क्षमा । तौ लौं = तब तक । दाप दल्यो = गर्व चूर्ण किया । जौ लौं = जब तक ।

भावार्थ—रावण ने पृथ्वी, मुनि और साधुओं को दुःख देकर वेद के विरुद्ध काम किया और स्वर्गलोक को उजाड़ दिया । और कहाँ तक रावण के अवगुण कहूँ, उसने रामचंद्रजी की पत्नी तक को हर लिया; तब भी दयालु रामचन्द्रजी ने क्रोध न किया । तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचन्द्रजी मैंने आपका स्वभाव जान लिया कि आपने केवल सेवक (विभीषण) के ऊपर कृपा करके अपनी स्वाभाविक क्षमा को छोड़कर क्रोध किया था । जब तक रावण ने विभीषण को लात न मारी तब तक आपने रावण का घमंड चूर-चूर नहीं किया ।

सोक-समुद्र निमज्जत काढ़ि कपीस कियो जग जानत जैसो ।
नीच निसाचर बैरी को बन्धु बिभीषन कीन्ह पुरंदर कैसो ।
नाम लियो अपनाइ लियो, 'तुलसी' सो कहौ जग कौन अनैसो ।
आरत-आरति-भंजन राम, गरीबनिवाज न दूसरो ऐसो ॥४॥

टिप्पणी—निमज्जत = डूबते हुए । काढ़ि = निकालकर । पुरंदर = इन्द्र । कैसो = की तरह । सो = सम । अनैसो = (अनिष्ट) बुरा । आरत-आरति-भंजन = (आर्तार्ति-भंजन) दुःखी के दुःख को मिटानेवाले ।

भावार्थ—रामचन्द्रजी ने बालि के डर से शोक में डूबते हुए सुग्रीव को जैसा किया (राज्य दिया) उसे सारा संसार जानता है । नीच स्वभाव

और राक्षस जाति तिस पर भी वैरी रावण के भाई विभीषण को इन्द्र के सदृश ऐश्वर्यशाली बना दिया। संसार में तुलसीदास के समान बुरा कौन था, उसको भी रामचन्द्र ने केवल 'राम' नाम लेने से ही अपना लिया (अपने भक्तों में गिन लिया) दुःखियों को दुःख से छुड़ाने वाले और दीनों के रक्षक रामचन्द्रजी के समान और कोई नहीं।

मीत पुनीत कियो कपि भालु को, पाल्यो ज्यों काहु न बाल तनूजो।
सज्जन-सींव बिभीषन भो, अजहूँ बिलसै बर-बन्धु-बधू जो।
कोसलपाल बिना 'तुलसी' सरनागतपाल कृपालु न दूजो।
कूर कुजाति कुपूत अघी सबकी सुधरै जो करै नर पूजो॥५॥

टिप्पणी—तनूजो बाल=अपने ही शरीर से उत्पन्न बालक को। **सज्जन सींव**=सज्जनता की मर्यादा, जिससे अधिक सज्जन कोई न हो। **बिलसै**=विलास करता है। **अघी**=पापी।

भावार्थ—रामचन्द्रजी ने वानर और भालुओं तक से पवित्र (निष्कपट) मित्रता की। उनकी इस प्रकार रक्षा की जिस प्रकार कोई आत्मज बालक की भी नहीं करता। जो विभीषण अपने ज्येष्ठ भाई रावण की पत्नी मंदोदरी से अब भी (विभीषण अमर माना जाता है) विलास करता है वह सज्जनता की सीमा माना गया। तुलसीदास कहते हैं कि अयोध्याधिपति रामचन्द्रजी के अतिरिक्त दयालु और शरणागत का रक्षक दूसरा कोई नहीं है। चाहे क्रूर हो, चाहे नीच जाति का हो, चाहे कुपुत्र हो, चाहे पापी हो, जो मनुष्य रामचन्द्रजी की पूजा करेंगे उनके मनोरथ पूरे होंगे।

तीय-सिरोमनि सीय तजी जेहि पावक की कलुषाई दही है।
धर्मधुरंधर बन्धु तज्यो, पुरलोगनि की बिधि बोलि कही है।
कीस निसाचर की करनी न सुनी, न बिलोकी, न चित्त रही है।
राम सदा सरनागत की अनखौंही अनैसी सुभाव सही है॥६॥

टिप्पणी—कलुषाई=मलिनता। **दही है**=जला दी है। **पावक की कलुषाई दही है**=अग्नि की मलिनता दाहकता है, अतः दाहकता को भी जला दिया अर्थात् शीतल कर दिया। **धर्मधुरंधर**=धर्म के धुर (बोझ) को धारण करने-वाले, अर्थात् धर्मात्मा। **बिधि कही है**=उपदेश दिया है। **बोलि**=बुलाकर। **कीस**=सुग्रीव। **निशाचर**=विभीषण। **करनी**=भ्रातृवधू को पत्नीवत भोगना। **अनखौंही**=अप्रसन्न होने योग्य। **अनैसी**=(अनिष्ट) बुरा।

भावार्थ—जिन्होंने अग्नि की दाहकता को शांत कर दिया ऐसी स्त्रियों

से श्रेष्ठ सीताजी को (लोकापवाद सुनकर) त्याग दिया। धर्मात्मा भाई (लक्ष्मण) को भी छोड़ दिया और नगरनिवासियों को बुलाकर नागरिक नियम समझाए। पर सुग्रीव और विभीषण के दुष्कर्मों (भ्रातृवधू से भोग करना) को न सुना, न देखा और न उन पर कुछ ध्यान ही दिया। क्योंकि रामचन्द्रजी सदा से शरणागत के अप्रसन्न होने योग्य और बुरे कृत्यों को भी स्वभाव से ही सहते चले आये हैं।

दुर्मिल सवैया—= सगण

अपराध अगाध भए जन तें अपने उर आनत नाहिन जू।
गनिका गज गीध अजामिल के गनि पातक-पुंज सिराहिं न जू।
लिए बारक नाम सुधाम दियो जिहि धाम महामुनि जाहिं न जू।
'तुलसी' भजु दीनदयालुहि रे, रघुनाथ अनाथहि दाहिन जू ॥७॥

टिप्पणी—**जन** = भक्त, दास। **पुंज** = समूह। **सिराहिं** = समाप्त होते हैं। **बारक** = (बार एक) एक बार भी। **सुधाम** = (स्वधाम) वैकुंठ। **दाहिन** = अनुकूल।

भावार्थ—यदि भक्तों से बड़े भारी अपराध भी हो जायँ तो रामचन्द्रजी उन पर कुछ ध्यान नहीं देते। क्योंकि गणिका, हाथी, गृद्ध और अजामिल के असंख्य पाप गिनते-गिनते समाप्त नहीं होते (गिने नहीं जा सकते) हैं, उनको भी एक बार नाम लेने से अपना (बैकुंठ) लोक दिया जहाँ बड़े-बड़े मुनिजन नहीं जा सकते। इसलिये तुलसीदास कहते हैं कि अनाथों के लिए सदा अनुकूल दीनदयालु रामचन्द्रजी को भजो।

प्रभु सत्य करी प्रहलाद-गिरा, प्रगटे नरकेहरि खंभ महाँ।
झखराज ग्रस्यो गजराज, कृपा ततकाल, बिलंब कियो न तहाँ।
सुर साखी दै राखी है पांडु-बधू पट लूटत, कोटिक भूप जहाँ।
'तुलसी' भजु सोच-बिमोचन को, जन को पन राम न राख्यो कहाँ ॥८॥

टिप्पणी—**गिरा** = वाणी, वचन। **नरकेहरि** = नरसिंह। **महाँ** = मध्य से **झखराज** = ग्राह। **ततकाल** = (तत्काल) उसी क्षण। **साखी** = (साक्षी) गवाही। **राखी है** = रक्षा की है। **पांडु-बधू** = द्रौपदी। **पन** = प्रण।

भावार्थ—रामचंद्रजी ने प्रह्लाद के वचनों को सत्य किया, और खंभ के बीच से नृसिंह रूप में प्रगट हुए। जब ग्राह ने हाथी को पकड़ लिया तो उसी समय उस पर कृपा करके उसे बचाया, उस काम में जरा भी देर न की। करोड़ों राजाओं के बीच में दुःशासन द्वारा वस्त्र खींचकर नंगी की जाने से द्रौपदी की

रक्षा की, इस बात की देवता साक्षी देते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि शोक से छुडानेवाले रामचंद्रजी को भजो। रामचंद्रजी ने कब भक्त के प्रण को नहीं निबाहा (अर्थात् सदा पूरा किया है)?

नर-नारि उघारि सभा महँ होत दियो पट, सोच हर्‌यो मन को।
प्रहलाद बिषाद-निवारन, बारन-तारन, मीत अकारन को।
जो कहायत दीनदयालु सही, जेहिं भार सदा अपने पन को।
'तुलसी' तजि आन भरोस, भजे भगवान, भलो करिहैं जन को॥९॥

टिप्पणी—नर-नारि=अर्जुन की स्त्री, द्रौपदी। **बिषाद**=दुःख। **निवारन**=दूर करनेवाले। **बारन**=(वारण) हाथी। **तारन**=उद्धार करनेवाले। **मीत अकारन को**=बिना कारण अर्थात् निःस्वार्थ मित्र। **सही**=ठीक, सच्चे। **आन**=अन्य, दूसरे को। **भरोस**=विश्वासपूर्वक।

भावार्थ—जिन्होंने सभा में नंगी की जाती हुई द्रौपदी को वस्त्र देकर उसके मन का सोच दूर किया, जो प्रह्लाद के दुःख को मिटानेवाले, हाथी को बचानेवाले, निःस्वार्थ मित्र और सच्चे दीनदयालु कहलाते हैं, और जिनको सदा अपने प्रण पूरा करने का बोझ रहता है (ध्यान रहता है), तुलसीदास कहते हैं कि जो औरों को छोड़कर ऐसे भगवान् को विश्वासपूर्वक भजता है उस भक्त का भगवान् अवश्य भला करेंगे।

ऋषिनारि उधारि, कियो सठ केवट मीत, पुनीत सुकीर्ति लही।
निज लोक दियो सबरी खग को, कपि थाप्यो सो मालुम है सब ही।
दससीस-बिरोध सभीत बिभीषन भूप कियो जग लीक रही।
करुनानिधि को भजु रे 'तुलसी' रघुनाथ अनाथ के नाथ सही॥१०॥

टिप्पणी—ऋषिनारि=गौतम की पत्नी, अहल्या। **सठ**=नीच। **मीत**=मित्र। **पुनीत**=पवित्र। **लही**=पाई। **निज लोक**=बैकुंठ। **खग**=जटायु। **लीक**=रेखा।

भावार्थ—अहल्या को शाप से उद्धार कर और नीच जाति केवट को मित्र बनाकर पवित्र कीर्ति पायी। शबरी और जटायु को बैकुंठ लोक में भेजा, सुग्रीव को राजा बनाया, यह सबको ही मालूम है। रावण के विरोध से डरे हुए विभीषण को राजा बनाया, संसार में यह बात लकीर सी रह गई (अर्थात् निशानी रह गई)। तुलसीदास कहते हैं कि अनाथों के सच्चे स्वामी दयालु रामचंद्रजी को भजो।

मत्तगयंद सवैया

कौसिक, बिप्रबधू, मिथिलाधिप के सब सोच दले पल माँ हैं।
बालि-दसानन-बंधु-कथा सुनि सत्रु सुसाहिब-सील सराहैं।
ऐसी अनूप कहैं 'तुलसी' रघुनायक की अगनी गुन-गाहैं।
आरत दीन अनाथन को रघुनाथ करैं निज हाथन छाहैं ॥११॥

टिप्पणी—बालि-दसानन-बंधु-कथा = बालि के भाई सुग्रीव और रावण के भाई बिभीषण की कथाएँ। **अगनी** = असंख्य। **गुन-गाहैं** = गुणगाथाएँ। **आरत** = (आर्त) दुःखी। **करैं निज हाथन छाहैं** = स्वयं रक्षा करते हैं।

भावार्थ—विश्वामित्र, अहल्या और जनक के सब सोच क्षण भर में दूर कर दिये। सुग्रीव और विभीषण की कथा सुनकर शत्रु भी सुस्वामी रामचन्द्रजी के शीलस्वभाव की प्रशंसा करते हैं (कि शत्रुओं के भाइयों पर भी इतनी कृपा की)। तुलसीदास कहते हैं कि रामचंद्रजी की असंख्य गुण-गाथाएँ ऐसी ही अद्‌भुत हैं। दीन, दुखी और अनाथों की रामचंद्रजी स्वयं रक्षा करते हैं।

तेरे बेसाहे बेसाहत औरनि, और बेसाहि कै बेचनहारे।
ब्योम रसातल भूमि भरे नृप क्रूर कुसाहिब सेंतिहुँ खारे।
'तुलसी' तेहि सेवत कौन मरै ? रज तें लघु को करै मेरु तें भारे।
स्वामि सुसील समर्थ सुजान सो तो सो तुही दसरत्थ-दुलारे ॥१२॥

टिप्पणी—बेसाहे = मोल लेने से। **बिसाहना** = द्रव्यादि देकर मोल लेना। **औरनि** = और देवताओं को। **ब्योम** = आकाश। **रसातल** = पाताल। **सेंतिहुँ खारे** = मुफ्त भी मिलें तब भी बुरे। **तेहि** = कुस्वामियों को। **रज तें** = धूल से। **अलंकार**—अनन्वय।

भावार्थ—हे रामजी ! जिसको तुम खरीद लेते हो अर्थात् अपना भक्त बना लेते हो वह और देवताओं को मोल ले लेता है अर्थात् सब देवता उसके गुलाम बन जाते हैं और अन्य देवता जिसको मोल लेते है अर्थात् भक्त बनाते हैं, वे उसको (भक्त को) औरों के हाथ बेच देते हैं। यों तो आकाश, पाताल और भूमि में अनेक क्रूर और कुस्वामी भरे पड़े हैं, पर वे मुफ्त भी मिले तो भी बुरे है। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे कुस्वामियों की सेवा करके कौन मरता फिरे ? किसने धूल समान लघु सेवक को सुमेरु से भी बड़ा बनाया है ? हे दशरथ के प्यारे रामचन्द्रजी, तुम्हारे समान सुशील, समर्थ और चतुर स्वामी तुम्हीं हो।

कवित्त

जातुधान भालु कपि केवट बिहंग जो जो,
पाल्यो नाथ सद्य सो सो भयो काम-काज को।
आरत अनाथ दीन मलिन सरन आए,
राखे अपनाइ, सो सुभाउ महाराज को।
नाम 'तुलसी' पै भोंड़ो भाँग ते कहायो दास,
कियो अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को।
साहेब समरत्थ दसरत्थ के दयालु देव,
दूसरो न तो सो, तुही आपने की लाज को ॥१३॥

टिप्पणी—जातुधान = विभीषण । भालु = जामवंत । कपि = सुग्रीव । **केवट** = गुह-राज । **बिहंग** = जटायु । **सद्य** = तत्काल, उसी समय । **भयो काम-काज को** = प्रतिष्ठा के योग्य हो गया । **सरन आए** = शरण में आने पर । **पै** = पर । **भोंड़ो** = बुरा । **अलंकार**—उपमानलुप्ता ।

भावार्थ—हे नाथ ! विभीषण, जामवंत, सुग्रीव, निषाद, जटायु जिन-जिन को आपने पाला वे सब तुरन्त ही प्रतिष्ठा करने योग्य हो गये । दुःखी, अनाथ, दीन और पापियों को भी शरण में आने पर आपने अपना भक्त बना लिया, ऐसा तो आपका स्वभाव है । यद्यपि मेरा नाम (पवित्र और पूज्य) 'तुलसी' है, पर मैं भाँग से भी बुरा हूँ । आपने मेरे समान धोखेबाज को भी अपना भक्त स्वीकार कर लिया, इसी से मैं आपका (अथवा तुलसी का) दास कहलाया । हे दशरथ के पुत्र, आपके समान समर्थ और दयालु स्वामी दूसरा कोई नहीं है । अपने शरणागत की लज्जा की रक्षा करनेवाला आपके समान दूसरा नहीं है ।

महाबली बालि दलि, कायर सुकंठ कपि,
सखा किए, महाराज हौं न काहू काम को।
भ्रात-घात-पातकी निसाचर सरन आये,
कियो अंगीकार नाथ एते बड़े बाम को।
राय दसरत्थ के समत्थ तेरे नाम लिये,
'तुलसी' से कूर को कहत जग राम को।
आपने निवाजे की तौ लाज महाराज को,
सुभाय समुझत मन मुदित गुलाम को ॥१४॥

टिप्पणी—**भ्रात-घात-पातकी** = भाई को मारने की इच्छा के कारण पापी। **बाम** = कुटिल, दुष्ट । **गुलाम** = दास (तुलसीदास) ।

भावार्थ—हे नाथ महाबली बालि को मारकर कायर सुग्रीव वानर को

सखा बनाया जो किसी काम का न था। भाई के घात की इच्छा के कारण पापी विभीषण के समान बड़े कुटिल राक्षस को भी शरण आने पर आपने अंगीकार कर लिया। हे राजा दशरथ के सामर्थ्यवान् पुत्र, आपका नाम लेने से तुलसीदास के समान कपटी को भी संसार राम का दास कहता है। रामचन्द्रजी को अपने शरणागत की लज्जा है, यह स्वभाव समझ कर तुलसीदास का मन प्रसन्न होता है।

रूप-सील-सिंधु गुनसिंधु, बंधु दीन को,
दयानिधान, जान-मनि, बीर बाहु-बोल को।
श्राद्ध कियो गीध को, सराहे फल सबरी के,
सिलासाप-समन, निबाह्यो नेह कोल को।
'तुलसी' उराउ होत राम को सुभाव सुनि,
को न बलि जाइ न बिकाइ बिन मोल को?
ऐसेहु सुसाहेब सों जाको अनुराग न सो,
बड़ोई अभागो, भाग भागो लोभ-लोल को॥१५॥

टिप्पणी—जान-मनि = (ज्ञान-मणि) सुजानों में श्रेष्ठ। **बीर बाहु-बोल को** = बाहु के वीर अर्थात् शरणागत-प्रतिपालक और बोल को वीर अर्थात् दृढ़प्रतिज्ञ। **उराउ** = उत्साह, हौसला। **लोभ लोल को** = लोभ के कारण चंचल मन वाला। **अलंकार**—गम्योत्प्रेक्षा।

भावार्थ—रामचन्द्रजी रूपवान्, शीलवान् और गुणवान् हैं, दीनों के बन्धु, दयालु और सुजानशिरोमणि हैं, शरणागत-रक्षक और दृढ़-प्रतिज्ञ हैं। गृध्रराज जटायु का अपने हाथ से श्राद्ध किया, शबरी के दिये हुए फलों की सराहना की, शिला बनी हुई अहल्या के शाप का नाश किया और कोल-भीलों के स्नेह को निबाहा। तुलसीदास कहते हैं कि रामचन्द्रजी के ऐसे स्वभाव को सुनकर उत्साह बढ़ता है। ऐसे रामचन्द्रजी पर कौन न्यौछावर नहीं होगा और बिना मोल के उनके हाथ न बिकेगा (अर्थात् बिना कुछ लिए ही उनका दास न हो जायगा)? ऐसे सुन्दर स्वामी से जिसका प्रेम नहीं है, वह बड़ा अभागा है। ऐसा समझना चाहिए कि लोभ से चलायमान मनुष्य का सौभाग्य ही उससे दूर भाग गया है।

सूर-सिरताज महाराजनि के महाराज,
जाको नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो।
साहब कहाँ जहान जानकीस सो सुजान,
सुमिरे कृपालु के मराल होत खूसरो।

केवट पखान जातुधान कपि भालु तारे,
अपनायो 'तुलसी' सों धींग धमधूसरो।
बोल को अटल, बाँह को पगार, दीनबन्धु,
दूबरे को दानी, को दयानिधान दूसरो ॥१६॥

टिप्पणी—**सूर-सिरताज**=शूरों के शिरोमणि। **सुखेत**=(सुक्षेत्र) अच्छा खेत। **ऊसरो**=उजाड़, जो उपजाऊ न हो। **साहब**=स्वामी। **जहान**=संसार में। **मराल**=हंस, (यहाँ) 'हंस' की तरह विवेकी। **खूसरो**=निर्बुद्धि, मूर्ख। **पखान**=(पाषाण) पत्थर। **धींग**=निकम्मा, असभ्य। **धमधूसरो**=मूर्ख। **बोल को अटल**=दृढ़प्रतिज्ञ। **बाँह को पगार**=शरण देने के लिए अपनी भुजाओं को फैलाये हुए, शरणदाता। **पगार**=(प्राकार) चारदिवारी। **अलंकार**—काकुवक्रोक्ति।

भावार्थ—शूरों में श्रेष्ठ महाराजाओं के भी महाराज और जिसका नाम लेते ही बंजर खेत भी सुन्दर उपजाऊ हो जाते हैं, ऐसे सुजान रामचन्द्रजी के समान स्वामी संसार में कहाँ हैं (अर्थात् कहीं नहीं)? ऐसे कृपालु के स्मरण करने से मूर्ख भी हंस की तरह विवेकी हो जाता है। रामचन्द्रजी ने केवट, पाषाण, राक्षस, वानर और भालुओं को तारा और तुलसीदास के समान असभ्य और महामूर्खों को अपनाया। अतः रामचंद्रजी के समान दृढ़प्रतिज्ञ, शरणागत-पालक, दीनबन्धु, दरिद्र को दान देनेवाला और दयालु दूसरा कौन है (कोई नहीं)?

कीबे को बिसोक लोक, लोकपाल हुते सब,
कहूँ कोऊ भो न चरवाहो कपि भालु को।
पबि को पहार कियो ख्याल ही कृपालु राम,
बापुरो बिभीषन घरौंधा हुतो बालु को।
नाम ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल,
चोट बिनु मोट पाइ भयो न निहाल को?
'तुलसी' की बार बड़ी ढील होत, सीलसिंधु,
बिगरी सुधारिबे को दूसरो दयाल को?॥१७॥

टिप्पणी—**कीबे को बिसोक**=शोक-रहित करने को। **चरवाहा**=चरानेवाला, सुमार्ग पर लानेवाला। **पबि**=वज्र। **ख्याल ही**=खेल ही में। **बापुरो**=बेचारा। **घरौंधा हुतो बालु को**=बालू के घरौंधे की तरह (अर्थात् क्षणस्थायी, निर्बल) था। **नाम-ओट लेत ही**=नाम की शरण लेते ही। **निखोट**=निर्दोष। **खोटे**=दोषी पापी। **मोट**=मठरी। **चोट बिनु मोट पाइ**=बिना कष्ट या श्रम के मठरी पाकर **निहाल**=प्रसन्न [illegible] विलंब अलंकार।

भावार्थ—अनेक लोकपाल थे परन्तु लोगों को (रावण-प्रदत्त) शोक से छुड़ाने को कोई बानर और रीछों का चरवाहा न बना। कृपालु रामचन्द्रजी ने बिचारे विभीषण को जो बालू की भीत की तरह निर्बल था खेल-ही-खेल में वज्र के पहाड़ की तरह अर्थात् अखण्ड शक्तिमान् बना दिया। केवल नाम ही की शरण में जाने से पापीजन भी निष्पाप हो जाते हैं। अत: बिना प्रयत्न के गठरी पाकर (अर्थात् जपतपादि साधन किये बिना ही मुक्ति पाकर) कौन प्रसन्न न होगा ? हे सुशील रामचन्द्रजी, बिगड़ी बात को सुधारने के लिए आपके अतिरिक्त दूसरा दयालु कौन है ? परन्तु तुलसीदास को अपनाने में बड़ी देर हो रही है (अत: शीघ्र ही मुझे अपनी शरण में लीजिए)।

नाम लिये पूत को पुनीत कियो पातकीस,
आरति निवारी प्रभु पाहि कहे पील की।
छलिन को छौंड़ो सो निगोड़ो छोटो जाति पाँति,
कीन्हीं लीन आपु में सुनारी भोंड़े भील की।
तुलसीओ तारिबो बिसारिबो न अंत मोहि,
नीके है प्रतीति रावरे सुभाव सील की।
देव तो दयानिकेत, देत दादि दीनन को,
मेरी बार मेरे ही अभाग नाथ ढील की ॥१८॥

टिप्पणी—**पूत**=पुत्र। **पुनीत**=पवित्र। **पातकीस**=अजामिल। **आरति**=(आर्ति) दुःख। **निवारी**=दूर किया। **पाहि**=रक्षा करो। **पील**=हाथी। **छौंड़ी**=लड़की। **निगोड़ी**=निकम्मी। **किन्हीं लीन आपु में**=मोक्ष-पद दिया। **भोंड़े**=भद्दे, असभ्य। **तुलसीओ**=तुलसीदास को भी। **बिसारिबो**=भुलाएँगे। **नीके**=अच्छी तरह। **रावरे**=आपके। **दयानिकेत**=दया के घर। **दादि देत**=न्याय करते हैं, फरियाद सुनते हैं। **अलंकार**—अनुपलब्धि प्रमाण।

भावार्थ—हे स्वामिन्, पापियों में श्रेष्ठ अजामिल को अपने पुत्र "नारायण" का नाम लेने से ही आपने उसको पवित्र कर दिया; और 'मेरी रक्षा करो' ऐसा कहते हुए हाथी का (ग्राह के फंदे से छुड़ाकर) दुःख दूर किया। छलियों की लड़की, निकम्मी, जाति-पाँति में भी नीच और असभ्य भील जाति की स्त्री शबरी को भी मोक्ष-पद दिया। मुझे आपके शील-स्वभाव का पूर्ण विश्वास है कि आप मुझे (तुलसीदास को) भी तारेंगे। अंत में भुलाएँगे नहीं। हे देव, आप तो दया के घर हैं और दीनों पर न्याय करते हैं, पर मेरे ही अभाग्य से मेरे ऊपर दया करने में स्वामी ने देर की है (मैं ऐसा ही हूँ।

आगे परे पाहन कृपा, किरात, कोलनी,
कपीस, निसिचर अपनाए नाए माथ जू।
साँची सेवकाई हनुमान की सुजानराय,
ऋनियाँ कहाये हौ बिकाने ताके हाथ जू।
'तुलसी' से खोटे खरे होत ओट नाम ही की,
तेजी माटी मगहू की मृगमद साथ जू।
बात चले बात को न मानिबो बिलग बलि,
काकी सेवा रीझि कै नेवाजो रघुनाथ जू ॥१९॥

टिप्पणी—पाहन = (पाषाण) पत्थर पर। **कृपा** = कृपा की। **कोलनी** = शबरी। **कपीस** = सुग्रीव। **निशिचर** = बिभीषण। **माथ नाए** = माथा झुकाने पर, नम्र होने पर। **सुजानराय** = ज्ञानियों मे श्रेष्ठ। **खोटे खरे होत** = पापी भी निष्पाप हो जाते हैं। **तेजी** = महँगी। **माटी मगहू की** = मार्ग की धूल भी। (अगर कस्तूरी मार्ग में गिर पड़े तो कस्तूरी के साथ उसके संसर्ग से सुगंधित मिट्टी को भी लोग उठा लेते हैं। यह मिट्टी महँगी बिकती है)। **मृगमद** = कस्तूरी। **बात चले बात को** = प्रसंग आने पर कहने का। **बिलग** = बुरा। **काकी**—किसकी। **रीझि कै** = प्रसन्न होकर।

भावार्थ—जनकपुर जाते हुए मार्ग में पत्थर मिला, उस पर कृपा की। किरात शबरी पर भी कृपा की। शरण में आने पर सुग्रीव और बिभीषण को अपना लिया। हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ रामचन्द्रजी, सच्ची सेवा तो हनुमान ने की। (उसको कुछ न देकर) उसके ऋणी कहलाये, और उसी के हाथ बिक गये। आपके नाम की शरण लेने से तुलसीदास के समान पापी भी शुद्ध हो जाते हैं, क्योंकि कस्तूरी के संसर्ग से राह में पड़ी हुई मिट्टी भी महँगी बिकती है। हे रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलि जाऊँ, इसी प्रसंग पर अगर मैं कुछ पूछूँ तो बुरा न मानिएगा। आपने किसकी सेवा से प्रसन्न होकर उस पर कृपा की है ? (भाव यह कि स्वयं बिना सेवा के तो आप कृपा करते हैं और जो आपकी सच्ची सेवा करता है, उसके हाथ बिक जाते हैं।)

कौसिक की चलत, पखान की परस पायँ,
टूटत धनुष बनि गई है जनक की।
कोल पसु सबरी बिहंग भालु रातिचर,
रतिन के लालचिन प्रापति मनक की।
कोटि-कला-कुसल कृपालु नतपाल, बलि,
बातहू कितिक तिन 'तुलसी' तनक की

राय दशरत्थ के समत्थ राम राजमनि,
तेरे हेरे लोपैं लिपि बिधिहू गनक को ॥२०॥

टिप्पणी—**परस**-स्पर्श। **बन गई**=कार्यसिद्धि हुई। **रतिन के**=रत्तियों के। **प्रापति**=प्राप्ति। **मनक की**=एक मन की। **रतिन के लालचिन प्रापति मनक की**=जो थोड़े से पदार्थ के लिए लालायित रहते थे उनको आवश्यकता से अधिक की प्राप्ति हुई। **नतपाल**=नम्र अर्थात् शरण में आये हुए को पालने वाले। **बातहू कितिक**=बात ही कितनी अर्थात् सरल है। **तिन**=तृणसम। **तनक**=छोटे से। **राजमनि**=राजाओं के शिरोमणि। **हेरे**=देखने से। **लोपैं**=मिट जाती है। **लिपि**=लेख। **बिधिहू गनक की**= ब्रह्मा के समान गणक की भी। **अलंकार**—अत्युक्ति।

भावार्थ—रामचन्द्रजी को अपने साथ ले चलने से ही विश्वामित्र की, पैरों के स्पर्श से पत्थर अर्थात् अहल्या की और धनुष टूटने से जनक की कार्य-सिद्धि हो गई। कोल (शबरी), पशु (मृग-वेषधारी मारीच), पक्षी (जटायु), भालू (जामवंत) और राक्षस (विभीषण) आदि रत्ती के लालचियों को (रामचन्द्रजी की कृपा से) एक मन की प्राप्ति हुई (अर्थात् जो केवल थोड़े से सांसारिक सुख के लिए लालायित रहते थे उनको परम पद तक मिल गया)। हे करोड़ों कलाओं में निपुण, कृपालु तथा शरणागतों के रक्षक रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलैया लूं। तृण के समान तुलसीदास को जरा-सी भक्ति के प्राप्त होने की बात ही कितनी कठिन है (अर्थात् सरल है)? हे राजा दशरथ के समर्थ पुत्र, राजाओं में श्रेष्ठ रामचन्द्रजी आपकी कृपादृष्टि मात्र से ब्रह्मा के समान ज्योतिषी का लिखा हुआ भाग्याभाग्य-निर्णय का लेख भी मिट जाता है।

सिला-साप-पाप, गुह गीध को मिलाप,
सबरी के पास आप चलि गए हौ सो सुनी मैं।
सेवक सराहे कपिनायक बिभीषन,
भरत-सभा सादर सनेह-सुरधुनी-मैं।
आलसी-अभागी-अघी-आरत-अनाथपाल;
साहेब समत्थ एक नीके मन गुनी मैं।
दोष-दुख-दारिद-दलैया दीनबंधु राम,
'तुलसी' न दूसरो दयानिधान दुनी मैं ॥२१॥

टिप्पणी—**सुरधुनी**= (सुरों की धुनी अर्थात् नदी) गंगा। **सुरधुनी मैं**= गंगामय अर्थात् गंगा की भाँति पवित्र। **नीके**= अच्छी तरह। **गुनी**= विचार कर लिया है। **दुनी**= दुनिया संसार

भावार्थ—पाप से शापित शिला (अहल्या) का उद्धार किया, गुह और गृद्ध (जटायु) से मिले, स्वयं बिना बुलाये शबरी के पास चले गये और राज-सभा में भरत से अपने सेवक सुग्रीव और विभीषण के पवित्र स्नेह की अत्यंत आदरपूर्वक सराहना की। मैंने यह सब सुना और मन में अच्छे प्रकार विचार कर लिया कि आलसी, अभागी, पापी, दुखी और अनाथों की रक्षा करने में एक स्वामी रामचन्द्रजी ही समर्थ हैं। हे रामजी, संसार में दोष, दुःख और दरिद्र को दूर करनेवाला, दीनों का बंधु और दया का घर आपके अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है।

मीत बालि-बन्धु, पूत दूत, दसकंध-बन्धु
सचिव, सराध कियो सबरी जटाइ को।
लंक जरी जोहे जिय सोच सो विभीषन को,
कहौ ऐसे साहेब की सेवा न खटाइ को?
बड़े एक एक तें अनेक लोक लोकपाल,
अपने अपने को तौ कहैगो घटाइ को?
साँकरे के सेइबे सराहिबे सुमिरिबे को,
राम सो न साहिब, न कुमति-कटाइको ॥२२॥

टिप्पणी—**मीत**=मित्र। **सचिव**=मंत्री। **जोहे**=देखकर। **न खटाइ को**=कौन नहीं निबाह सकेगा। **कहौ ऐसे को**=कहिए तो ऐसे स्वामी की सेवा मे कौन न स्थिर रहेगा। **कहैगो घटाइ को**=छोटा कौन कहेगा? अर्थात् सब कोई अपने को बड़ा ही कहते हैं, छोटा कोई नहीं कहता। **साँकरे के**=संकट में। **कुमति-कटाइ को**=कुमति का कटायक अर्थात् काटनेवाला।

भावार्थ—रामचंद्रजी ने अपने शत्रु बालि के भाई सुग्रीव को मित्र बनाया, पुत्र अंगद को दूत बनाया, और दूसरे शत्रु रावण के भाई विभीषण को मंत्री बनाया। शबरी और जटायु का भी श्राद्ध किया। लंका को जली देखकर मन मे सोच हुआ कि जली लंका मैंने विभीषण को दी। ऐसे (शत्रु से भी प्रेम व्यवहार करनेवाले, नीचों के ऊपर अनुग्रह करनेवाले और अपनी दी हुई अमूल्य वस्तु को भी कुछ न समझनेवाले) स्वामी की सेवा में कौन नहीं रह सकेगा (सभी रह सकेंगे)? अनेक लोकों के लोकपाल एक से एक बड़े हैं। अपने-अपने को छोटा कोई नहीं कहता। परंतु संकट के समय सेवा करने के योग्य, सराहने योग्य और स्मरण करने के योग्य राम के सदृश न तो दूसरा स्वामी है, न कोई कुमति काटने वाला ही है।

भूमिपाल, ब्यालपाल, नाकपाल, लोकपाल,
कारन-कृपालु मैं सबै के जी की थाह ली।
कादर को आदर काहू के नाहिं देखियत,
सबनि सोहात है सेवा-सुजान टाहली।
'तुलसी' सुभाय कहैं नाहीं कछु पच्छपात,
कौन ईस किये कीस भालू खास माहली।
राम ही के द्वारे पै बोलाइ सनमानियत,
मो सो दीन दूबरे कुपूत कूर काहली ॥२३॥

टिप्पणी—**ब्यालपाल** = सर्पों के राजा शेषनाग, वासुकी आदि। **नाकपाल** = स्वर्ग के राजा इंद्रादि। **कारन-कृपालु** = कारणवश अर्थात् भक्ति करने के कारण कृपा करनेवाले। **कादर** = डरपोक। **सेवा-सुजान** = सेवा करने में चतुर। **टाहली** = टहलुवा, सेवक। **खास** = मुख्य। **माहली** = महल। (रनिवास) के सेवक। **काहली** = सुस्त, आलसी।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैंने सब के मन की थाह ले ली है, पृथ्वी के राजा, पाताल के शेषनाग आदि, स्वर्ग के इंद्रादि और लोकपाल ये सब कारणवश कृपा करते हैं। सबको सेवा करने में चतुर सेवक की सेवकाई अच्छी लगती है; पर डरपोक का आदर करनेवाला कोई भी नहीं दिखलाई देता। मैं सच कहता हूँ, किसी का पक्षपात नहीं करता। किसी स्वामी ने भालू और वानरों को अपने अंतःपुर का सेवक बनाया है? मेरे समान दीन, दुर्बल, कुपुत्र, क्रूर और आलसी जीव का रामचंद्रजी के ही द्वार पर बुलाकर सम्मान किया जाता है। (अन्यत्र ऐसे जीवों का आदर नहीं होता)।

सेवा-अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यों,
बिहूने गुन पथिक पियासे जात पथ के।
लेखे जोखे चित 'तुलसी' स्वारथ हित,
नीके देखे देवता देवैया घने गथ के।
गीध मानो गुरु, कपि भालु मानो मीत कै,
पुनीत गीत साके सब साहेब समत्थ के।
और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत,
लसम के खसम तुही पै दसरत्थ के ॥२४॥

टिप्पणी—**सेवा-अनुरूप** = सेवा के ही योग्य, जितनी सेवा करो उतनी ही। **बिहूने** = बिना। **गुन** = (१) गुण, (२) रस्सी। **पथ** = मार्ग। **लेखे जोखे** = (मुहावरा) विचार कर लिया। **चोखे** = निष्कपट। **नीके** = अच्छी तरह। **देवैया** देने वाले। **घने** बहुत **गथ** द्रव्य धन। **गुरु** पिता सम पूज्य।

पुनीत=पवित्र। **साक**=विरुदावली। **परखि सुलाखि तौल ताइ लत**=सोने की परीक्षा चार प्रकार से होती है —(१) पहले उसके बाहरी रंग की परीक्षा करते हैं, (२) फिर सूराख करके यह देखा जाता है कि इसके भीतर दूसरी धातु तो नहीं मिली है, (३) फिर उसको तौल लेते हैं कि इसका वजन तो ठीक है, (४) अंत में उसको तपाकर उसके खरे-खोटे की पहचान की जाती है। अच्छी तरह परीक्षा कर लेते हैं। **खसम**=खोटा, निकम्मा। **खसम**=स्वामी।

भावार्थ—संसार के और राजा कुएँ की तरह सेवा के अनुकूल ही फल देते हैं। जैसे मार्ग के पथिक रस्सी पास में न होने से कुएँ से प्यासे जाते हैं, वैसे ही बिना सद्‌गुणों के याचक लोग राजा के पास से भी विमुख जाते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि मैंने निष्कपट चित्त से विचार कर अच्छी तरह देख लिया है कि अपने स्वार्थ के लिए (अर्थात् सेवा करने के लिए) धन देनेवाले देवता तो बहुत से हैं, पर जटायु को पिता के सदृश माननेवाले और वानरों तथा भालुओं को मित्र करके माननेवाले पवित्र गीत और विरुदावली वाले सामर्थ्यवान् स्वामी रामचंद्रजी ही है। और राजा तो अच्छी तरह जाँचकर अपना सेवक छाँटते हैं, पर हे दशरथ के पुत्र रामचन्द्रजी, निकम्मे आदमी के स्वामी केवल तुम्हीं हो।

रीति महाराज की नेवाजिये जो माँगनो सो,
दोष-दुख-दारिद-दरिद्र कै कै छोड़िये।
नाम जाको कामतरु देत फल चारि, ताहि,
'तुलसी' बिहाइ कै बबूर रेंड़ गोड़िये।
जाँचै को नरेस, देस-देस को कलेस करै,
देहै तो प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौड़िये।
कृपापाथनाथ लोकनाथनाथ सीतानाथ,
तजि रघुनाथ-हाथ और काहि ओड़िये?॥२५॥

टिप्पणी—**दोष-दुखदारिद-दरिद्र कै कै छोड़िए**=दोष, दुख और दारिद्र्य को भी दरिद्र करके छोड़ते हैं, अर्थात् नाश कर देते हैं। **कामतरु**=कल्पवृक्ष। **फल चारि**=धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। **बिहाइ**=(सं० विहाय) छोड़कर। **गोड़िए**=सेवा करिए। **जाँचै**=(याचै) माँगै। **बड़ी बड़ाई**=बहुत बढ़कर। **बौड़ी**=दमड़ी की कौड़ी। **पाथ**=जल। **पाथनाथ**=समुद्र। **काहि हाथ ओड़िये?**=किसके सामने हाथ पसारें? **अलंकार**=अत्युक्ति ('दोष-दुख-दारिद-दरिद्र कै कै छोड़िये' में) और ललित ('बबूर रेंड़ गोड़िए' में)

भावार्थ—रामचन्द्रजी की रीति ऐसी है कि जो माँगता है उसको दोष, दुख और दारिद्र्य को दरिद्र करके छोड़ते हैं अर्थात् ये सब मिटा देते हैं

जिन रामचन्द्रजी का नाम चारों फलों का दाता कल्पवृक्ष है, उनको छोड़कर कँटीले बबूल और रेंड़ के समान वृक्षों की सेवा कौन करेगा ? कौन राजाओं से माँगे और कौन देश-देश मे घूमने का कष्ट करे ? क्योंकि वे प्रसन्न होकर बहुत बढ़कर देंगे भी तो दमड़ी की कौड़ी ही देंगे । कृपालु, संसार के स्वामी, सीतापति रामचन्द्र जी को छोड़कर और किसके सामने हाथ फैलावें ?

किरीट सवैया—८ भगण

> **जाके बिलोकत लोकप होत बिसोक लहैं सुर लोग सुठौरहि ।**
> **सो कमला तजि चंचलता करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि ।**
> **ताको कहाय, कहै 'तुलसी' तू लजाहि न माँगत कूकुर-कौरहि ।**
> **जानकि-जीवन को जन ह्वै जरि जाउ सो जीह जो जाँचत औरहि ।।२६।।**

टिप्पणी—**कमला**=लक्ष्मी । **रिझवै**=प्रसन्न करती है । **सुरमौरहि**=विष्णु भगवान् को । **कूकुर-कौरहि**=और देवताओं से कुत्ते के ग्रास के समान तुच्छ सुखभोग । **जानकि-जीवन**=जानकी के प्राण, रामचन्द्रजी । **जन**=भक्त, दास । **जरि जाउ**=जल जावे । **जीह**=जिह्वा ।

भावार्थ—जिस लक्ष्मी की सुदृष्टि मात्र से लोकपाल शोक-रहित होते हैं और देवता सुन्दर स्थान प्राप्त करते हैं, वह लक्ष्मी अपनी स्वाभाविक चंचलता को छोड़कर करोड़ों उपाय करके विष्णुरूप (रामजी) को प्रसन्न करती है। तुलसीदास कहते हैं कि उन्हीं विष्णु भगवान् (रामचन्द्रजी) का सेवक होकर तुझे और देवताओं से तुच्छ पदार्थ माँगते लज्जा नहीं आती ? रामचन्द्रजी का भक्त होकर जो औरों से माँगता है, उसकी जीभ जल जाय तो अच्छा ।

दुर्मिल सवैया—८ सगण

> **जड़पंच मिलै जेहि देह करी, करनी लखु धौं धरनीधर की ।**
> **जनकी कहु क्यों करिहै न सँभार, जो सार करै सचराचर की ।**
> **'तुलसी' कहु राम समान को आन है सेवकि जासु रमा घर की ।**
> **जग में गति जाहि जगत्पति की परवाह है ताहि कहा नर की ।।२७।।**

टिप्पणी—**जड़**=अचैतन्य । **पंच**=पंचतत्व; पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश । **धरणीधर**=(यहाँ पर) रामचंद्रजी । **सार करना**=सँभाल करना । **आन**=(अन्य) दूसरा । **रमा**=लक्ष्मी । **गति**=शरण ।

भावार्थ—श्रीरामजी की करतूत तो देखो, पाँच तत्वों को मिलाकर यह देह बना दी । जो समग्र जड़ और चैतन्यों की सँभाल करता है वह क्या अपने भक्त की सँभाल न करेगा ? तुलसीदास कहते हैं कि लक्ष्मी जिसके घर की

सेवकिनी है उसके समान दूसरा कौन होगा ? संसार में जिस मनुष्य का आश्रय राम भगवान् हैं, उसे क्या परवाह है ?

जग जाँचिये कोऊ न, जाँचिये जौ, जिय जाँचिये जानकी-जानहि रे।
जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ, जो जारति जोर जहानहि रे।
गति देखु विचारि बिभीषन की, अरु आनु हिये हनुमानहि रे।
'तुलसी' भजु दारिद-दोष-दवानल, संकट-कोटि कृपानहि रे ॥२८॥

टिप्पणी—**जानकी-जान**=जानकी-जानि (स्त्री); अर्थात् जिनकी स्त्री जानकी हैं, रामचंद्र। **जारति**=जलाती है। **आनु हिये**=हृदय में ध्यान कर। **दारिद-दोष-दवानल**=दरिद्रता रूपी दोष को नष्ट करने के लिए दावाग्नि के समान। **दवानल**=वन की अग्नि। **संकट-कोटि-कृपानु**=करोड़ों संकटों को काटने के लिए तलवार के समान।

भावार्थ—संसार में किसी से भी नहीं माँगना चाहिए। यदि मन में माँगने की ही ठानी हो तो रामचन्द्रजी से माँगो, जिससे माँगने से याचकता (दरिद्रता) भी जल जाती है, जो (याचकता) अपने बल से संसार को भी जला देती है। विभीषण की दशा को विचारो (रामचन्द्रजी से राज्य पाया) और हनुमान की दशा का ध्यान करो (रामचन्द्रजी ने उसे अपना भक्त बनाया)। अतएव तुलसी-दास कहते हैं कि दरिद्रता को दूर करनेवाले और करोड़ों संकटों से छुटकारा देने वाले रामचन्द्रजी को भजो।

सुनु कान दिये नित नेम लिए रघुनाथहि के गुनगाथहि रे।
सुख-मंदिर सुन्दर रूप सदा उर आनि धरे धनु-भाथहि रे।
रसना निसिबासर सादर सो 'तुलसी' जपु जानकी-नाथहि रे।
करु संग सुसील सुसंतन सों, तजि कूर कुपंथ कुसाथहि रे ॥२९॥

टिप्पणी—**नेम लिए**=नियमपूर्वक। **गुनगाथहि**=गुणों की कथा। **धरे धनु-भाथहि**=धनुष और तरकस धारण किए हुए को। **रसना**=जिह्वा। **कूर**=कपटी।

भावार्थ—तुलसीदास कहते है कि कानों से नित्य नैमित्तिक रूप से राम-चन्द्रजी की गुणगाथाओं को ध्यान देकर सुनो, आँखों से धनुष और तरकस धारण किए हुए सुन्दर रूप को हृदय में लाओ, जिह्वा से रात-दिन आदरपूर्वक रामचन्द्रजी को जपो, और कपटी कुमार्गियों के कुसंग को छोड़कर सुशील और सज्जनों की संगति करो।

सुत, दार, अगार, सखा, परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे।
सबकी ममता तजि कै, समता सजि संत-सभा न बिराजहि रे?

नर-देह कहा करि देखु बिचार, बिगारु गँवार न काजहि रे।
जनि डोलहि लोलुप कूकर ज्यों, 'तुलसी' भजु कोसलराजहि रे ॥३०॥

टिप्पणी—दार = (दारा) स्त्री। अगार = (आगार) घर। कुसमाजहि = बुरी सामग्री, दुखदायी संग। ममता = 'यह मेरा है' ऐसा भाव, मोह। डोलहु = भ्रमण करो। लोलुप = लालची।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि पुत्र, स्त्री, घर, मित्र आदि परिवार को बड़ा दुःखदायी समझो। सबकी ममता छोड़कर और समदर्शी बनकर सज्जनों की सगति में क्यों नहीं बैठते ? जरा विचार करके इस नर-शरीर के माहात्म्य को तो देखो। ऐ गँवार (मूर्ख) अपने काम को मत बिगाड़। लालची कुत्ते की तरह दर-दर मारे-मारे फिरो, श्रीरामचन्द्रजी का भजन करो।

बिषया परनारि, निसा-तरुनाइ, सु पाइ पर्‌यौ अनुरागहि रे।
जम के पहरू दुख रोग वियोग, बिलोकत हू न बिरागहि रे।
ममता बस तें सब भूलि गयो, भयो भोर, महाभय भागहि रे।
जरठाई दिसा, रबिकाल उग्यो, अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे ॥३१॥

टिप्पणी—बिषय = सांसारिक विषय-भोग। तरुनाई = यौवन। भोर = प्रातःकाल। जरठाई = बुढ़ापा। दिसा = पूर्व दिशा। अलंकार—रूपक।

भावार्थ—विषय-सुख-भोग मानो पर-स्त्री है और यौवन रात्रि है। यौवन काल में विषय-सुखों को पाकर जड़ जीव आसक्त हो जाता है। रोग और वियोग के दुःख मानो यमराज के पहरुवे हैं (अर्थात् विषयों के भोग से अनेक रोगादि उत्पन्न होते हैं जिनसे मृत्यु होती है)। इनको देखकर भी सांसारिक सुखों से विरक्ति नहीं होती। हे जड़-जीव, ममता के कारण तू ज्ञान-वैराग्य सब भूल गया है। अब प्रातःकाल हो गया है, महाभय भाग गया है! बुढ़ापा रूपी पूर्व दिशा से काल रूपी सूर्य उदय हो गया है (अर्थात् मरण-काल समीप आ पहुँचा है)। पर हे जड़ प्राणी, तू अब भी सचेत नहीं होता है।

जनम्यो जेहि जोनि अनेक क्रिया सुख लागि करी, न परै बरनी।
जननी जनकादि हितू भए भूरि, बहोरि भई उर की जरनी।
'तुलसी' अब राम को दास कहाइ हिए धरु चातक की धरनी।
करि हंस को बेष बड़ो सबसों, तजि दे बक-बायस की करनी ॥३२॥

टिप्पणी—हितू = हित चाहनेवाले। भूरि = बहुत। बहोरि = फिर। धरनी = टेक, प्रतिज्ञा। चातक की धरनी = चातक की तरह अपने स्वामी की दृढ़ भक्ति। करि हंस को बेष = भक्तों का सा वेष बनाकर। बक की करनी =

छल-कपट करना। बायस की करनी = चंचलता और अविश्वास। अलंकार —ललित।

भावार्थ—तुलसीदास संसारिक लोगों से कहते हैं कि जिस योनि में जन्म लिया उसमें सुख-भोग के लिए अनेक कर्तव्य किए जिनका वर्णन नहीं हो सकता। उस योनि में माता-पिता आदि अनेक हित चाहनेवाले हुए, फिर भी हृदय की जलन बनी ही रही। अतएव अब रामचन्द्रजी का भक्त कहला कर चातक की तरह अपने स्वामी की दृढ़ भक्ति करो और भक्तों का वेष बनाकर छल करना और किसी पर विश्वास न करना छोड़ दो।

भलि भारतभूमि, भले कुल जन्म, समाज सरीर भलो लहि कै।
करषा तजिकै, परुषा बरषा हिम मारुत घाम सदा सहि कै।
जो भजै भगवान सयान सोई 'तुलसी' हठ चातक ज्यों गहि कै।
नतु और सबै बिष बीज बए हर हाटक कामदुहा नहि कै॥३३॥

टिप्पणी—भलो समाज = सत्संगति। भलो सरीर = नर-देह। **लहि कै** = पाकर। **करषा** = क्रोध। **परुषा** = कठोर। **सयान** = (सज्ञान) चतुर। **हठ गहि कै** = हठ पकड़ कर। **नतु** = नहीं तो (अर्थात् नर-शरीर पाकर भगवान का भजन न करने से)। **बए** = बोए। **हर हाटक** = सोने का हल। **हाटक** = सोना। **कामदुहा** = कामधेनु गाय को। **नहि कै** = जोत कर। अलंकार—ललित।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सुन्दर भारतभूमि में, अच्छे कुल में जन्म, सुसंगति और सुन्दर नर-शरीर पाकर, क्रोध छोड़कर सदा कठोर वर्षा, कठोर जाड़ा, कठोर लू और कड़ी धूप सहकर जो चातक की तरह अनन्य प्रेम से भगवान् का भजन करे वही चतुर है। नहीं तो मनुष्य-शरीर पाकर भी भगवद्-भजन छोड़कर सांसारिक विषयों के सुख-भोग से ऐसा दुःखप्रद फल होगा, जैसा सोने के हल में कामधेनु गाय को जोत कर विष का बीज बोने से होता है।

उपजाति सवैया

सो सुकृती, सुचिमंत, सुसंत, सुजान, सुसील सिरोमनि स्वै।
सुर तीरथ तासु मनावत आवत, पावन होत हैं ता तन छ्वै।
गुनगेह, सनेह को भाजन सो, सब ही सों उठाइ कहौं भुज द्वै।
सतिभाय सदा छल छाँड़ि सबै 'तुलसी' जो रहै रघुबीर को ह्वै॥३४॥

टिप्पणी—**सुकृती** = पुण्यात्मा। **सुचिमंत** = पवित्र। **स्वै** = (सोई, सं० स एव) वही। **पावन** = पवित्र। **ता तन** = उसका शरीर। **छ्वै** = छूकर। **गुन-गेह** = गुणों का गृह, गुणवान्। **सनेह को भाजन** = स्नेहपात्र, स्नेह करने के

योग्य । उठाइ कहौं भुज है = घोषणा करके कहता हूँ । सतिभाव = सद्भाव से, प्रेम या भक्तिपूर्वक । अलंकार—निदर्शना ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैं भुजा उठाकर सबको सूचित करके कहता हूँ कि जो सब प्रकार के छल-कपट छोड़कर निरंतर भक्तिपूर्वक रामचन्द्रजी का दास बनकर रहता है वही पुण्यात्मा, पवित्र, सज्जन, ज्ञानी और वही सुन्दर शील-स्वभाव वालों में श्रेष्ठ है । देवता और तीर्थ उस रामसनेही का अपने पास आगमन मनाते हैं, और उसके शरीर को छूकर पवित्र होते है । गुणवान् और स्नेहपात्र भी वही है ।

सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुत, सो हित मेरो ।
सोई सगो, सो सखा, सोई सेवक, सो गुरु, सो सुर साहिब चेरो ।
सो 'तुलसी' प्रिय प्रानसमान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो ।
जो तजि देह को गेह को नेह, सनेह सों राम को होइ सबेरो ।।३५।।

टिप्पणी—**हित** = हितकारी । **सगो** = निकटस्थ, संबंधी । **कहाँ लौं** = कहाँ तक । **बनाइ कहौं** = बढ़ाकर कहूँ । **सबेरो** = शीघ्र । **अलंकार**—तुल्ययोगिता ।

भावार्थ—जो अपने शरीर और घर की ममता छोड़कर शीघ्र ही (विषयादि में फँस कर विलंब न करे) स्नेहपूर्वक राम का भक्त हो जाय वही मेरे लिए माता, पिता, भाई, पत्नी, पुत्र हितकारी, सगा, संबन्धी, मित्र, सेवक, गुरु, देवता, स्वामी और दास सब कुछ है (अर्थात् जो कुछ है सब वही है) । तुलसीदास कहते हैं कि कहाँ तक गिना-गिनाकर कहूँ, वह मुझे प्राण समान प्यारा है । मत्तगयंद सवैया—७ भगण + २ गुरु

राम हैं मातु पिता गुरु बन्धु औ संगी सखा सुत स्वामि सनेही ।
राम की सौंह, भरोसो है राम को, रामरँग्यो रुचि राच्यो न केही ।
जीयत राम, मुए पुनि राम, सदा रघुनाथहि की गति जेही ।
सोई जियै जग में 'तुलसी' नतु डोलत और मुए धरि देही ।।३६।।

टिप्पणी—**सौंह** = (सम्मुख, प्रा० सउँह) सन्मुख हो । **रामरँग्यो** = रामचन्द्रजी के स्नेह में रँगा हुआ अर्थात् अनुरक्त । **रुचि** = इच्छा । **राच्यो न केही** = किसी पर अनुरक्त नहीं होता । **गति** = शरण । **मुए धरि देही** = देह धरे हुए भी मरे हुए के समान ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि रामचन्द्रजी ही जिसके माता, पिता, गुरु, भाई, संगी, मित्र, पुत्र, स्वामी और अन्य प्रेमीजनों के तुल्य हैं, जो सदा अपने को रामचन्द्रजी के सम्मुख मानता है, जिसे केवल राम का भरोसा है, जो राम-

चन्द्रजी के ही प्रेम में अनुरक्त है, राम के प्रेम को छोड़कर जिसकी इच्छा को और कुछ भी अच्छा नहीं लगता, जब तक जीवन रहता है राम ही को भजता है, मरने के समय भी राम ही का स्मरण करता है, और जिसको सदा रामचंद्र जी की ही शरण है, उसी को संसार में जीवित कहना चाहिए; और लोग तो देह धारण किए होने पर भी मरे हुए के समान हैं।

दुर्मिल सवैया—८ सगण

सियाराम-सरूप अगाध अनूप बिलोचन-मीनन को जलु है।
स्रुति रामकथा, मुख राम को नाम, हिये पुनि रामहि को थलु है।
मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति राम सों रामहि को बलु है।
सब की न कहै 'तुलसी' के मतें इतनो जग-जीवन को फलु है॥३७॥

टिप्पणी—**अगाध**=गंभीर, गहरा। **अनूप**=अनुपम। **अन्वय**=अनूप। सियाराम-सरूप बिलोचन-मीनन को अगाध जलु है। **स्रुति**=कान। **थलु**= स्थान। **गति**=पहुँच। **रति**=प्रेम। **मतें**=संमति से, विचार से। **अलंकार**— आत्मतुष्टि प्रमाण।

भावार्थ—सीताराम का अद्वितीय सौंदर्य आंखरूपी मछलियों के लिए अगाध जल हो, अर्थात् आँखों से सीताराम की सुन्दरता देखें। (भाव यह है कि जैसे मछलियाँ जल में ही मग्न रहती हैं और उसके बिना प्राण छोड़ देती हैं; ऐसे ही जब तक शरीर में प्राण रहे तब तक सदा सीताराम के ध्यान में मग्न रहें)। कानों से रामचन्द्रजी की ही कथा सुनें, मुख से रामनाम उच्चारण करें, मन में भी सदा राम का स्मरण करें, बुद्धि से भी राम की महिमा जानें और पहुँच केवल राम तक हो, सब की सम्मति तो नहीं कहते, पर तुलसीदास के विचार से संसार में जीने का फल यही (उपर्युक्त) है।

दसरत्थ के दानि-सिरोमनि राम, पुरान-प्रसिद्ध सुन्यो जसु मैं।
नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम सों मनभावत पायो न कैं।
'तुलसी' कर जोरि करै बिनती जो कृपा करि दीन दयालु सुनै।
जेहि देह सनेह न रावरे सों असि देह धराइ कै जाय जियै॥३८॥

टिप्पणी—**जसु**=यश। **नाग**=सर्प। **जाचक**=(याचक) माँगने वाले। **पायो न कैं**=किसने नहीं पाया। **असि**=ऐसा। **जाय**=व्यर्थ।

भावार्थ—हे दशरथ के पुत्र! दानियों में श्रेष्ठ रामचन्द्रजी, मैंने आपका पुराणों में प्रख्यात यश सुना है। मनुष्य, शेषनागादि सर्प देवता और राक्षस जिसने भी आपसे माँगा अपनी इच्छा भर किसने नहीं पाया? (अर्थात् सबने

पाया है) । हे दीन-दयालु, यदि आप कृपा करके सुनें तो तुलसीदास हाथ जोड़कर विनती करता है कि जिस जन्म में आपसे स्नेह न हो उस जीवन को धारण कर व्यर्थ ही क्यों जीवित रहूँ ? (अर्थात् जिस योनि में आपसे प्रेम न करूँ ऐसी देह ही धारण न करूँ) ।

नोट—इस सवैया के चारों तुकांत भिन्न-भिन्न हैं । केवल 'ऐं' का तुकांत है । इस प्रकार का तुकांत अधम माना जाता है ।

मत्तगयंद सवैया

'झूठो है झूठो है, झूठो सदा जग, संत कहंत जे अंत लहा है ।
ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है ।
जानपनी को गुमान बड़ो 'तुलसी' के विचार गँवार महा है ।
जानकी-जीवन जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है ।।३९।।

टिप्पणी—**जे अंत लहा है** = जिन्होंने इस संसार का अनुभव कर इसका अंत पाया है । **काढ़त दन्त** = दांत काढ़ता है, अति विनीत भाव से प्रार्थना करता है । **जानपनी** = ज्ञानीपना । **गुमान** = अभिमान । **गँवार** = मूर्ख । **जानकी जीवन जान न जान्यो** = रामचन्द्रजी का ज्ञान न हुआ । **जान** = ज्ञानी ।

भावार्थ—जिन साधुओं ने इस संसार का अनुभव करके सिद्धांत निकाला है वे कहते है कि यह संसार सदा तीनों कालों में झूठा है (अर्थात् निस्सार है, इसमें कुछ है नहीं) हे मूर्ख, तू उसी संसार के लिए विनती करता है, हाहा करता है और उसी संसार के करोड़ों रोगशोकादि कष्टों को सहता है । तुझे अपने ज्ञानीपने का बड़ा घमण्ड है, पर तुलसीदास के विचार से तू महामूर्ख है । अगर तुझे रामचन्द्रजी का ज्ञान न हुआ तो तू क्या जानकार ज्ञानी कहलाता है ? (ज्ञानी कहलाना व्यर्थ है) ।

दुर्मिल सवैया

तिन्ह तें खर सूकर स्वान भले, जड़ताबस ते न कहैं कछु वै ।
'तुलसी' जेहि राम सों नेह नहीं सो सही पसु पूँछ बिषान न द्वै ।
जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै ।
जरि जाउ सो जीवन जानकिनाथ ! जियै जगमें तुम्हरो बिन ह्वै ।।४०।।

टिप्पणी—**खर** = गदहा । **स्वान** = (श्वान) कुत्ता । **कछुवै** = कुछ भी । **सही** = सच ही, ठीक । **बिखान** = (सं० विषाण) सींग । **भार** = बोझ । **मुई** = मर मिटी । **बाँझ** = (सं० बंध्या) जो बच्चा न जने । **गई किन च्वै** = उसका गर्भपात क्यों नहीं हो गया ? **किन** = क्यों नहीं । **जरि जाउ** = जल जावे, नष्ट हो जावे ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिनको रामचन्द्रजी से स्नेह नहीं वे सचमुच पशु ही हैं। उनके केवल एक पूंछ और दो सींगों की कमी है। उनसे तो गदहे, सूअर और कुत्ते अच्छे हैं, क्योंकि वे जड़ होने के कारण भला-बुरा कुछ भी नहीं कहते। ऐसी संतति के गर्भ के बोझ से माता ने दस महीने तक क्यों कष्ट उठाया? वह वंध्या ही क्यों न रही? अगर गर्भ रह भी गया था तो उसे गिरा क्यों न डाला? (भाव—रामविमुख संतति को जन्म देने से वंध्या होना अच्छा है) हे सीतापति रामचन्द्रजी, संसार में जो तुम्हारे बिना अर्थात् तुमसे विमुख होकर रहते हैं उनका जीवन जल जाय अर्थात् वे मर जायें (उनका जीना व्यर्थ) है।

नोट—इस सवैया का तुकांत भी अधम ही माना जायगा।

गज बाजि-घटा, भले भूरि-भटा, बनिता सुत भौंह तकैं सब वै।
धरनी धन धाम सरीर भलो, सुरलोकहु चाहि इहै सुख स्वै।
सब फोटक साटक है 'तुलसी' अपनो न कछू, सपनो दिन द्वै।
जरि जाउ सो जीवन जानकिनाथ जियै जग में तुम्हरो बिनु ह्वै ॥४१॥

टिप्पणी—घटा = समूह। भटा = योद्धा। बनिता = पत्नी। भौंह तकैं = आज्ञा की बाट जोहते हैं, आज्ञानुकूल हैं। वै = ही। चाहि = बढ़कर, अपेक्षाकृत। इहै = इसी लोक में। स्वै = (स एव) वही। फोटक = निस्सार, छूँछा। साटक = छिलका, भूसी।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि चाहे अपने पास हाथी-घोड़ों का समूह भी हो, अच्छे योद्धा भी बहुत हों, स्त्री-पुत्र सब ही आज्ञानुकूल हों, पृथ्वी, धन, घर और सुन्दर स्वस्थ शरीर भी हो, और यहीं स्वर्ग से भी बढ़कर सुख हो, पर ये सब निस्सार वस्तुएँ हैं, इनमें कुछ भी तत्व नहीं। सब दो-एक दिन का सपना है अर्थात् स्वप्न की तरह भ्रम है। हे जानकीपति, जो संसार में आपसे विमुख होकर रहे उसका मर जाना अच्छा है।

सुरराज सो राज-समाज, समृद्धि बिरंचि, धनाधिप सो धन भो।
पवमान सो, पावक सो, जम-सोम सो, पूषन सो, भव भूषन भो।
करि जोग समीरन साधि, समाधि कै, धीर बड़ो बसहू मन भो।
सब जाय सुभाय कहै 'तुलसी' जो न जानकि-जीवन को जन भो ॥४२॥

टिप्पणी—सुरराज = इन्द्र। राज-समाज = राज्य की सामग्री। समृद्धि = बढ़ती, तरक्की। बिरंचि = ब्रह्मा। धनाधिप = कुबेर। पवमान = वायु। पावक = वह्नि सोम चन्द्रमा पूषन सूर्य भव संसार सोम मोम

समीरन (समीरण) = वायु । **समीरन साधि कै** = वायु की साधना कर, प्राणायाम करके । **समाधि कै** = प्राणवायु को ब्रह्मांड में रोककर समाधि लगाना । **बाय** = व्यर्थ । **सुभाय** = अच्छे भाव से ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि अगर इन्द्र की तरह राज्यसामग्री भी हो, ब्रह्मा की तरह समृद्धिमान् भी हो, कुबेर के सदृश धनी भी हो, वायु के समान दडधारी भी हो, चन्द्रमा के सदृश शीतल भी हो, सूर्य के समान संसार को प्रकाशित करनेवाला भी हो, संसार का भी भूषण हो अर्थात् संसार में भी बडी ख्याति पायी हो, योग भी करता हो, प्राणायाम भी साधता हो, समाधि भी लगाता हो, बड़ा धैर्यवान् हो और यहाँ तक कि मन भी वश में हो जाय, परन्तु सीतापति रामचन्द्रजी का भक्त न हो तो उपर्युक्त सब बातें व्यर्थ हैं ।

उपजाति सवैया

> **काम से रूप, प्रताप दिनेस से, सोम से सील, गनेस से माने ।**
> **हरिचंद से साँचे, बड़े बिधि से, मघवा से महीप बिषै-सुख साने ।**
> **सुक से मुनि, सारद से बकता, चिरजीवन लोमस तें अधिकाने ।**
> **ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी' जु पै राजिव-लोचन राम न जाने ॥४३॥**

टिप्पणी—**माने** = पूज्यमान, मान्य । **मघवा** = इन्द्र । **बिषै-सुख साने** = विषय सुखों में निमग्न । **सुक** = शुकदेव । **चिरजीवन** = चिरंजीवी, लोमश मुनि चिरंजीवी माने जाते हैं ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते है कि अगर कामदेव के समान रूपवान, सूर्य के सदृश प्रतापी, चन्द्रमा के समान सुशील, गणेश की तरह पूज्य, हरिश्चन्द्र के बराबर सत्यवादी, ब्रह्मा के समान वयोवृद्ध, इन्द्र की तरह विषय-सुखों में लीन राजा, शुकदेवजी सरीखे ब्रह्मज्ञानी मुनि, सरस्वती के समान विद्वान् और लोमश मुनि से भी अधिक दीर्घायु हों, परन्तु कमल के समान आँखों वाले रामचन्द्रजी को न जाना तो इन (उपर्युक्त) सब गुणों के होने से ही क्या लाभ ? अर्थात् कुछ भी नहीं ।

मत्तगयंद सवैया

> **झूमत द्वार अनेक मतंग जंजीर जरे मद-अंबु चुचाते ।**
> **तीखे तुरंग मनोगति-चंचल, पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते ।**
> **भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते ।**
> **ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी' जु पै जानकीनाथ के रंग न राते ॥४४॥**

[illegible] = मत्त हाथी । **जंजीर जरे** = लोहे की साँकलों से जकड़े

हुए। **मद-अबू चुवाते**=गंडस्थली से मद का जल टपकाते हुए। **तीखे**= तीक्ष्ण, तेज, वेगवान्। **मनोगति-चंचल**=मन की गति की तरह चंचल। **पौन** =पवन। **गौन**=(गमन) वेग। **समाते**=अँटते। **रंग न राते**=प्रेम में अनुरक्त न हुए।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि अगर द्वार पर गंडस्थल से मद झरते हुए और लोहे की साँकलों से जकड़े हुए मस्त हाथी झूमते हों, मन की गति के समान चंचल, वेगवान् हवा के वेग से भी बढ़े-चढ़े घोड़े भी हों, अंतःपुर में चन्द्रमुखी स्त्री भी उसे देखा करती हो और दरवाजे पर इतने राजा खड़े हों कि उनके रहने को स्थान भी पर्याप्त न हो (अर्थात् अनेक राजा अधीन हों), परन्तु रामचन्द्रजी से प्रेम न किया तो इन (उपर्युक्त) वस्तुओं के होने से भी क्या लाभ ?

राज सुरेस पचासक को, बिधि कै करको जो पटो लिखि पाए।
पूत सुपूत पुनीत प्रिया, निज सुंदरता रति को मद नाए।
संपति सिद्धि सबै 'तुलसी' मन की मनसा चितवैं चित लाए।
जानकिजीवन जानें बिना जग ऐसेउ जीवन जीवत जाए ॥४५॥

टिप्पणी—**सुरेस**=इन्द्र। **बिधि के कर को पटो लिखि पाए**=ब्रह्मा के हाथ का लिखा हुआ प्रमाण-पत्र पाया हो। **मद नाए**=घमंड चूर कर देती है। **मन की मनसा चितवैं**=रुख देखा करती है। **जाए**=व्यर्थ।

भावार्थ—स्वयं ब्रह्मा के हाथ के लिखे हुए प्रमाण पत्र द्वारा पचासों इन्द्रों के बराबर राज्य पाया हो, पुत्र भी सुपुत्र हो, पत्नी पतिव्रता हो और अपनी सुंदरता से रति (कामदेव की स्त्री) के गर्व को चूर कर देती हो, सब संपत्तियाँ और आठों सिद्धियाँ भी मन लगाकर उसका रुख ताकती रहती हों (कि कब यह कुछ कहे और हम उसे पूरा करें), पर तुलसीदास कहते हैं कि बिना रामचन्द्रजी के जाने ऐसा प्राणी (मनुष्य) भी व्यर्थ ही जीता है।

दुर्मिल सवैया, ८ सगण

कृसगात ललात जो रोटिन को, घरबात घरें खुरपा खरिया।
तिन सोने के मेरु से ढेर लहे, मन तौ न भरो घर पै भरिया।
'तुलसी' दुख दूनो दसा दुहूँ देखि, कियो मुख दारिद को करिया।
तजि आस भो दास रघुप्पति को, दसरत्थ को दानि दयादरिया ॥४६॥

टिप्पणी—**कृसगात**=दुर्बल शरीर वाला। **ललात**=लालायित रहता है, उत्कंठित रहता है। **घरबात**=घर का सामान **घरें** घर में **खुरपा** पास

छीलने का औजार। खरिया = घास बांधने की जाली। तिन = वे लोग। दुहुँ दसा = दोनों दशाएँ अर्थात् दरिद्रावस्था की दशा और धनवान् होने की दशा। दारिद को मुख कारिया कियो = दरिद्रता का मुख काला कर दिया, दरिद्रता को दुःख ही नहीं गिना। दरिया = (फा०) समुद्र।

भावार्थ—जो दुर्बल शरीर वाले रोगियों के लिए लालायित रहते थे, और घर की सामग्री के नाम जिन घर में केवल खुरपा और खरिया थे उनको अगर सुमेरु पर्वत के बराबर भी सोने का ढेर मिल जाय तो उनके घर तो भर जाते हैं, पर मन की इच्छा की तृप्ति नहीं होती, अर्थात् लालसा बढ़ती रहती है। तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकार दोनों अवस्थाओं में (दरिद्रावस्था और धनिकावस्था में) दुःख-ही-दुःख देखकर मैं दरिद्रता के दुःख को गिनती में ही न लाया और सब आशाओं को छोड़कर दशरथ के पुत्र दानी और दया के सागर रामचन्द्रजी का दास हो गया।

उपजाति सवैया

को भरिहै हरि के रितये, रितवै पुनि को हरि जौ भरिहै।
उथपै तेहि को जेहि राम थपै? थपिहै तेहि को हरि जौ टरिहै।
'तुलसी' यह जानि हिये अपने सपने नहिं कालहु तें डरिहै।
कुमया कछु हानि न औरन की जो पै जानकीनाथ मया करिहै॥४७॥

टिप्पणी—रितये = (सं० 'रिक्त' से) खाली करने से। उथपै = (उत्थापन) उखाड़ना, हटाना। थपै = स्थापित करे। टरिहैं = हिला दें, हटा दें। मया = कृपा। कुमया = क्रोध, नाराजगी।

भावार्थ—जिसको रामचन्द्रजी खाली कर देते हैं उसे कौन भर सकता है? (अर्थात् जिसको रामचन्द्र जी नष्ट कर देते हैं उसे कोई नहीं बसा सकता)। और जिसको रामचन्द्रजी (धन-संपत्ति से) भर देते हैं उसे खाली कौन कर सकता है? जिसकी रामचन्द्रजी स्थापना करते हैं उसे कौन उखाड़ सकता है? जिसको रामचन्द्रजी स्थान से हटा देते हैं उसे कौन स्थापित कर सकता है? (कोई नहीं)। तुलसीदास कहते हैं कि अपने मन में यह सब जानकर मैं स्वप्न मे भी काल से नहीं डरता हूँ। अगर रामचन्द्रजी की कृपा है तो औरों के क्रोध से कुछ हानि नहीं?

मत्तगयंद सवैया—७ भगण + २ गुरु

ब्याल कराल महाबिष, पावक, मत्तगयंदहु के रद तोरे।
साँसति संकि चली, डरपे हुते किंकर ते करनी मुख मोरे।

नेकु विषाद नहीं प्रहलादहि, कारन केहरि केवल हो रे।
कौन की त्रास करै 'तुलसी' जो पै राखिहै राम तो मारिहै को रे।।४८।।

टिप्पणी—**ब्याल** = साँप। **कराल** = भयंकर। **महाविष** = हलाहल। **पावक** = अग्नि। **मत्तगयंद** = उन्मत्त हाथी। **रद** = दाँत। **साँसति** = कष्ट। **संकि** = शंका करके, डरकर। **डरपे हुते** = जो डरते थे। **किंकर** = सेवक। **ते** = वे सेवक। **करनी मुख मोरे** = स्वामी के आज्ञापालन रूपी कर्म करने से मुख मोड़ लिया। **नेकु** = जरा भी। **विषाद** = दुख। **कारन हो** = कारण था। **केहरि** = नृसिंह। **त्रास** = भय।

भावार्थ—हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद के मारने को भयंकर जहरीले साँप भेजे, (वे भग गए); हलाहल पिलाया, (इससे भी कुछ असर न हुआ); आग में फेंक दिया (तो आग भी शीतल हो गई); मत्त हाथी भेजे, उनके भी दाँत तोड़ दिए (इससे वे भग गए); और भी जो कष्ट दिए वे सब (भगवान् के) डर से भग गए; और हिरण्यकशिपु से जो सेवक डरते थे उन्होंने भी आज्ञापालन रूपी कर्म करना छोड़ दिया। प्रह्लाद को कुछ भी दुःख न हुआ। इसके कारण केवल नृसिंह भगवान् थे। तुलसीदास कहते हैं कि डरें किससे? अगर रामचन्द्रजी रक्षक हैं तो मार कौन सकता है? (अर्थात् कोई नहीं)।

उपजाति सवैया

कृपा जिनकी कछु काज नहीं, न अकाज कछू जिनके मुख मोरे।
करै तिनकी परवाहि ते जो, बिनु पूँछ बिषान फिरै दिन दौरे।
'तुलसी' जेहि के रघुनाथ से नाथ, समर्थ सुसेवत रीझत थोरे।
कहा भवभीर परी तेहि धौं, बिचरै धरनी तिन सों तिन तोरे।।४९।।

टिप्पणी—**काज**—लाभ। **अकाज**—हानि। **मुख मोरे**—नाराज होने से, प्रतिकूल होने से। **दिन दौर फिरै**—प्रतिदिन दौड़ते फिरते हैं। **रीझत**—प्रसन्न होते हैं। **भवभीर**—सांसारिक कष्ट। **धरनी**—पृथ्वी। **तिन सों**—जिनकी कृपा अथवा अकृपा से कुछ नहीं बनता-बिगड़ता ऐसे लोगों से। **तिन (तृण) तोरे**—संबंध छोड़कर, कुछ सरोकार न रखकर।

भावार्थ—जिनकी कृपा से न कुछ लाभ ही होता है, न जिनके प्रतिकूल होने से कुछ हानि ही होती है, उनकी परवाह वे ही करते हैं जो सदा बिना सींग और पूँछ के पशु की तरह मारे-मारे फिरते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जिसके रामचन्द्रजी के समान समर्थ स्वामी हैं जो थोड़ी ही सेवा से प्रसन्न हो

जाते है उसको सांसारिक कष्टों की क्या चिंता ? अतएव ऐसे लोगो से संबंध छोड़कर वह निःशंक विचरता है ।

मत्तगयंद सवैया

कानन, भूधर, बारि बयारि, महाबिष, ब्याधि, दवा, अरि घेरे।
संकट कोटि जहाँ 'तुलसी' सुत मातु पिता हित बंधु न नेरे।
राखिहैं राम कृपालु तहाँ, हनुमान से सेवक हैं जेहि केरे।
नाक, रसातल, भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे ।।५०।।

टिप्पणी—भूधर=पर्वत । **बारि**=जल । **बयारि**=हवा । **महाबिष**=हलाहल । **ब्याधि**=शारीरिक रोग । **दवा**=दावानल । **अरि घेरे**=शत्रु से घिर जाने पर । **हित**=मित्र । **नेरे**=निकट । **जेहि केरे**=जिसके । **नाक**=स्वर्ग । **रसा**=पृथ्वी । **रसातल**=पाताल ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि वन में, पर्वत में, जल में, वायु में, हलाहल खाने पर, रोग में, दावाग्नि में फँस जाने पर, शत्रु के घेरे में पड़ जाने पर और जहाँ करोड़ों संकट आ पड़ें, और पुत्र, माता, पिता, मित्र, भाई-बंधु कोई निकट न हो वहाँ, जिनके हनुमान सरीखे सेवक हैं ऐसे कृपालु रामचन्द्रजी मेरी रक्षा करेंगे। स्वर्ग, मर्त्य, पाताल, तीनों लोकों में केवल रामचन्द्रजी ही मेरे सहायक है।

जौं जमराज-रजायसु तें मोहि लै चलिहैं भट बाँधि नटैया।
तात न मात न स्वामि सखा सुत, बंधु बिसाल बिपत्ति बँटैया।
साँसति घोर, पुकारत, आरत कौन सुनै चहुँ ओर डँटैया।
एक कृपालु तहाँ 'तुलसी' दसरत्थ को नंदन बंदि-कटैया ।।५१।।

टिप्पणी—जौ=जब । **रजायसु**=(राजा+आयसु) राजा की आज्ञा । **भट**=यमराज के दूत । **नटैया**=गर्दन । **बँटैया**=बँटानेवाला, सहभोगी, हिस्सेदार । **साँसति**=कष्ट । **डँटैया**=धमकानेवाले । **बंद-कटैया**=बंधनों से छुड़ाने वाला ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जब यमराज की आज्ञा से यम के दूत मुझको गर्दन बाँधकर ले चलेंगे उस समय मेरी उस बड़ी भारी विपत्ति का साझेदार पिता, माता, स्वामी, मित्र, पुत्र और भाई बन्धु कोई भी न होगा, और अत्यंत कष्ट के कारण दुःख की मेरी पुकार कौन सुनेगा, सब धमकानेवाले ही होंगे। उस समय मुझे विपत्ति से छुड़ानेवाला दशरथ के पुत्र कृपालु रामचंद्रजी के अतिरिक्त और कोई न होगा ।

उपजाति सवैया

जहाँ जम जातना, घोर नदी, भट कोटि जलच्चर दंत टेवैया।
जहँ धार भयंकर वार न पार, न बोहित नाव, न नीक खेवैया।
'तुलसी' जहँ मातु पिता न सखा, नहिं कोउ कहूँ अवलंब देवैया।
तहाँ बिनु कारन राम कृपालु बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया ॥५२॥

टिप्पणी—**जमजातना** = यमकृत पीड़ा, मरने के समय का कष्ट। **घोर नदी** = वैतरणी नदी। **दंत-टेवैया** = दाँत पैना कर तेज करनेवाले। **बोहित** = जहाज। **नीक खेवैया** = चतुर मल्लाह।

भावार्थ—जहाँ यम-यातना के देनवाले करोड़ों यमचर हैं, घोर वैतरणी नदी है जिसमें तीक्ष्ण दाँतोंवाले जलजंतु हैं, जिसकी भयंकर धारा का वार-पार नहीं सूझता है और न कोई जहाज या नाव पास में है, न कोई चतुर केवट ही है जहाँ न कोई माता, पिता और मित्र है, और न कोई सहारा देनेवाला है, तुलसीदास कहते हैं कि वहाँ अपनी लंबी भुजाओं से पकड़कर निकालनेवाले केवल बिना कारण कृपा करनेवाले रामचन्द्रजी ही है।

उपजाति सवैया

जहाँ हित, स्वामि, न संग सखा, बनिता, सुत, बंधु न, बापु न मैया।
काय गिरा मन के जन के अपराध सबै छल छाड़ि छमैया।
'तुलसी' तेहि काल कृपालु बिना दूजो कौन है दारुन-दुःख दमैया।
जहाँ सब संकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहब राखै रमैया ॥५३॥

टिप्पणी—**काय** = शरीर। **काय गिरा मन के** = त्रिविध पाप कायिक, वाचिक, मानसिक। **छमैया** = क्षमा करनेवाला। **दारुण** = कठिन। **दमैया** = दमन अर्थात् नाश करनेवाला। **रमैया** = जो सब में रमण करे और सब को अपने में रमायें अर्थात् रामजी।

यस्मिन्रमन्ते मुनयो विद्ययाज्ञानविप्लवे
तं गुरुः प्राह रामेति रमणाद्राम इत्यपि ॥

—अध्यात्मरामायण

भावार्थ—जहाँ (यमपुरी में) मित्र नहीं, स्वामी नहीं, संगी-सखा नहीं, स्त्री पुत्र, भाई, माता, पिता नहीं (अर्थात् कोई भी नहीं), उस समय कायिक, वाचिक, मानसिक सभी प्रकार के पापों को भुलाकर क्षमा करनेवाले और घोर दुःखों का नाश करनेवाले कृपालु रामचन्द्रजी के अतिरिक्त और कौन है? जहाँ सब प्रकार के कठिन कष्टों का सोच आ पड़ता है वहाँ मेरे स्वामी रामचन्द्रजी ही रक्षक हैं।

मत्तगयंद सवैया, ७ भगण + २ गुरु

तापस को बरदायक देव, सबै पुनि बैर बढ़ावत बाढ़े।
थोरेहि कोप कृपा पुनि थोरेहि, बैठिकै जोरत तोरत ठाढ़े।
ठोंकि बजाय लखे गजराज, कहाँलौं कहौं केहि सों रद काढ़े?
आरत के हित, नाथ अनाथ के राम सहाय सही दिन गाढ़े ।।५४।।

टिप्पणी—तापस = तपस्वी। बरदायक = बरदान देनेवाले। देव = ब्रह्मादि देवता। बाढ़े = बढ़ने पर, बलिष्ठ होने पर। बैठिकै जोरत तोरत ठाढ़े = क्षण भर में प्रीति जोड़ते हैं और उसी क्षण उससे अलग हो जाते हैं। जोड़ने और तोड़ने में कुछ भी देर नहीं लगती। ठोंकि बजाय लखे = खूब परीक्षा लेकर देख लिया कि कौन कैसा है। गजराज = हाथी जिसको ग्राह ने ग्रस लिया था। केहिसो रद काढ़े = किस किसके सामने दाँत न काढ़ा, किस-किस देवता के आगे विनय न की? आरत के हित = विपत्ति पड़ने पर हित करने वाले। सही = सच्चे। दिन गाढ़े = विपत्ति के पड़ने पर।

भावार्थ—ब्रह्मादि देवता तपस्वी को ही बरदान देते हैं और जब बलिष्ठ होने पर वह उपद्रव करता है तो उससे सभी देवता बैर बढ़ाते हैं। देवता थोड़ी बात में क्रोध कर बैठते हैं और फिर थोड़ी ही बात पर कृपा भी कर देते हैं। मित्रता जोड़ने और तोड़ने में तो उनको कुछ भी देर नहीं लगती। ग्राह द्वारा पकड़े जाने पर गजेन्द्र ने सब देवताओं की खूब अच्छी तरह परीक्षा ले ली और जान लिया कि कौन कैसा है। उसने किस किससे विनय न की, यह मैं कहाँ तक कहूँ (अर्थात् उसने सब देवताओं से प्रार्थना की) पर (उसे ज्ञान हो गया कि) दुःखी जन के हितकारी, अनाथों के नाथ और विपत्ति पड़ने पर सच्चे सहायक केवल रामचन्द्रजी ही हैं।

दुर्मिल सवैया

जप, जोग, बिराग, महामख-साधन, दान, दया, दम कोटि करै।
मुनि, सिद्ध, सुरेस, गनेस, महेस से सेवत जन्म अनेक मरै।
निगमागम ज्ञान, पुरान पढ़ै, तपसानल में जुग-पुंज जरै।
मन सों पन रोपि कहै 'तुलसी' रघुनाथ बिना दुख कौन हरै ।।५५।।

टिप्पणी—बिराग = सांसारिक विषयों से प्रेम न करना। महामख-साधन = बड़े बड़े अश्वमेध, राजसूय यज्ञों का अनुष्ठान। दम = इंद्रियों को दमन करना। निगम = वेद। आगम = शास्त्र। तपसानल = तपस्या रूपी अग्नि में अथवा तपस्या की अग्नि में। जुग-पुंज = अनेक युगों तक। पनरोपि कहै = दृढ़तापूर्वक कहता है।

भावार्थ—चाहे कोई जप, योग, विराग, बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान, दान, दया, इंद्रियदमन आदि करोड़ों उपाय करे, अथवा मुनि, सिद्ध, इंद्र, गणेश, शिवजी सदृश देवताओं की जन्मजन्मान्तर सेवा कर करके मरे, अथवा वेद-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करे, अथवा पुराण पढ़े, अथवा अनेक युगों तक तपस्या की अग्नि में अपने शरीर को भस्म कर दें, पर तुलसीदास हृदय से दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि रामचन्द्रजी के बिना दुख से कौन छुड़ावेगा ? (अर्थात् कोई नहीं ।)

मत्तगयंद सवैया

पातक-पीन, कुदारिद दीन, मलीन धरे कथरी करवा है ।
लोक कहै बिधिहू न लिख्यौ, सपनेहुँ नहीं अपने बर बाहै ।
राम को किंकर सो 'तुलसी' समुझेहि भलो कहिबो न रवा है ।
ऐसे को ऐसो भयो कबहूँ न, भजे बिन बानर के चरवाहै ।।५६।।

टिप्पणी—**पातक-पीन** = पाप से मोटा । **कुदारिद** = बुरी दरिद्रता, भोजनाच्छादनहीन । **मलीन** = मैला । **कथरी** = फटे पुराने वस्त्र । **करवा** = मिट्टी का पात्र । **अपने बाहै बर** = अपनी बाहुओं में बल । **रवा** = (फा०) उचित । **ऐसे को** = निकम्मे को । **ऐसो** = समर्थ । **चरवाहै** = चराने वाला ।

भावार्थ—पाप से मोटा अर्थात् बहुत पापी, अन्न-वस्त्र न होने से दुखी, वस्त्र के नाम पर फटी गुदड़ी और बर्तन के नाम पर करवा धारण किये है, ऐसे आदमी की दशा देख कर लोग कहते हैं कि न तो ब्रह्मा ने ही इसके भाग्य में कुछ लिखा, न स्वप्न में भी इसकी भुजाओं में बल है अर्थात् न यह उद्यम ही करता है । तुलसीदासजी कहते हैं कि अगर वही जन रामचंद्रजी का दास हो जाय तो उसकी जो दशा होगी वह समझने ही योग्य है; उसका वर्णन करना उचित नहीं (वर्णन हो ही नहीं सकता) । बिना बानर के चरवाहे अर्थात् रामचन्द्रजी को भजे ऐसा निर्बल मनुष्य ऐसा समर्थवान नहीं हो सकता ।

मातु, पिता जग जाय तज्यो बिधिहू न लिखी कछु भाल भलाई ।
नीच, निरादर-भाजन, कादर, कूकर टूकन लागि ललाई ।
राम-सुभाउ सुन्यो 'तुलसी' प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई ।
स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सो साहब खोरि न लाई ।।५७।।

टिप्पणी—**जाय** = जन्म देकर, पैदा होते ही । **भाल** = कपाल, माथा, भाग्य । **निरादर-भाजन** = निरादर का पात्र । **कादर** = डरपोक । **कूकर टूकन लागि ललाई** = कुत्ते के टुकड़े अर्थात् जूठे भोजन के लिए ललचाता फिरता था । **बारक** = एक बार । **पेट खलाई** = पेट को खाली दिखाकर (कुछ भोजन माँगना) । **खोरि न लाई** = दोष नहीं लगाया । **अलंकार**—**प्रहर्षण** ।

भावार्थ—(इस सवैया में तुलसीदास अपने जीवन का संक्षेप वृत्तांत कहते हैं।) पैदा होते ही माता-पिता ने छोड़ दिया। ब्रह्मा ने भी भाग्य में कुछ भलाई न लिखी। इससे मैं नीच, निरादर का पात्र और डरपोक था और जूठे भोजन के लिए लालायित रहता था। जब रामचन्द्रजी का स्वभाव सुना कि वह दीनदयालु हैं, तो मैंने उनसे एक बार अपनी क्षुधाकुलता कही जिससे रामचन्द्रजी के समान समर्थ स्वामी ने स्वार्थ अर्थात् लौकिक सुख और परमार्थ अर्थात् पारलौकिक सुख को पूरा करने में तनिक भी कोर-कसर न रखी।

पाप हरे, परिताप हरे, तन पूजि भो हीतल सीतलताई।
हंस कियो बक तें बलि जाउँ, कहाँ लौं कहौं करुना अधिकाई।
काल बिलोकि कहै 'तुलसी' मन में प्रभु की परतीति अघाई।
जन्म जहाँ तहँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह-सगाई॥५८॥

टिप्पणी—**परिताप**=दुःख। **हंस कियो**=हंस की तरह विवेकी बना दिया। **बक तें**=बक की तरह पाखंडी से। **अधिकाई**=आधिक्य। **काल बिलोकि**=अपना मरण-काल निकट देखकर। **परतीति**=(प्रतीति) विश्वास। **अघाई**=परिपूर्ण, पूरा-पूरा। **भरि देह**=जीवन भर। **सनेह सगाई निबहै**=स्नेह का संबंध बना रहे।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचन्द्रजी, आपने मेरे पापों का नाश किया, दुःखों से छुड़ाया, मेरे तन को पूज्य किया, हृदय में शांति आई और मुझे पाखंडी से विवेकी बना दिया, मैं बलिहार होता हूँ। मैं आप की करुणा की अधिकता कहाँ तक कहूँ। मेरे मन में आपकी प्रीति का पूरा विश्वास है, अतः अपना मरणकाल निकट देखकर विनय करता हूँ कि जहाँ-जहाँ जन्म लूँ वहाँ-वहाँ जन्म भर आप से मेरे स्नेह का संबंध बना रहे।

लोग कहैं अरु हौंहूँ कहौं जन खोटो खरो रघुनायक ही को।
रावरी राम बड़ी लघुता, जस मेरो भयो सुखदायक ही को।
कै यह हानि सहौ बलि जाउँ कि मोहूँ करो निज लायक ही को।
आनि हिये हित जानि करौ ज्यों हौं ध्यान धरौं धनुसायक ही को॥५९॥

टिप्पणी—**हौं हूँ**=मैं भी। **जन**=दास, भक्त। **खोटो खरो**=बुरा भला। **लघुता**=छोटापन, अप्रतिष्ठा।

भावार्थ—बुरा-भला जैसा भी हूँ रामचन्द्रजी का ही भक्त हूँ ऐसा मैं भी कहता हूँ और ऐसा ही लोग भी कहते हैं। हे रामचन्द्रजी, इसमें आपकी बड़ी अप्रतिष्ठा है। आप सदृश स्वामी का सेवक होने का जो यश मुझको प्राप्त

हुआ यह मेरे हृदय को सुख देता है। मै आपकी बलैया लूं। या तो आप अपनी इस अप्रतिष्ठा की हानि को सहिये या मुझको अपने सेवक होने योग्य बनाइये। अपने हृदय में यह विचार कर और मेरा भला जानकर, ऐसा कीजिये जिससे मैं आपके धनुषधारी रूप का ही ध्यान करूँ।

आपु हौं आपु को नीके कै जानत, रावरो राम! भरायो गढ़ायो।
कीर ज्यौं नाम रटै 'तुलसी' सो कहै जग जानकीनाथ पढ़ायो।
सोई है खेद, जो बेद कहै, न घटै जन जो रघुबीर बढ़ायो।
हौं तो सदा खर को असवार, तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो ॥६०॥

टिप्पणी—भरायो गढ़ायो=बनाया हुआ। **आपु**=स्वयं। **नीके कै**=अच्छी तरह। **कीर**=तोता। **खर को असवार**=मामूली आदमी, साधारण। **गयंद चढ़ायो**=हाथी पर चढ़ाया, पूज्य बनाया।

भावार्थ—हे राम, मैं स्वयं अपने को अच्छी तरह जानता हूँ कि आपका ही बनाया हुआ हूँ। तोते की तरह नाम रटता हूँ और सारा संसार यही कहता है कि इसको रामचन्द्रजी ने ही पढ़ाया है। (अर्थात् आप ही की कृपा से मुझमे भक्ति का संचार हुआ है।) पर मैं केवल तोते की तरह राम-राम रटता हूँ (भक्ति से नहीं), इसी बात का मेरे मन में दुःख है। क्योंकि वेद कहते हैं कि जिस आदमी को रामजी बढ़ाते हैं वह कभी नहीं घटता (अर्थात् जिस पर रामजी की कृपा होती है उसकी कभी अवनति नहीं होती। मैं तो सदा एक साधारण पुरुष था, आप ही के नाम के प्रताप से पूज्य हुआ हूँ।)

मनहरण कवित्त

छार ते सँवारिकै पहार हू ते भारी कियो,
गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइकै।
हौं तो जैसो तब तैसो अब, अधमाई कै कै,
पेट भरौं राम रावरोई गुन गाइकै।
आपने निवाजे की पै कीजै लाज, महाराज,
मेरी ओर हेरिकै न बैठिए रिसाइकै।
पालिकै कृपालु ब्याल-बाल को न मारिए,
औ काटिए न, नाथ! बिषहू को रूख लाइकै ॥६१॥

टिप्पणी—छार ते सँवारिकै=छार अर्थात् धूल की तरह निकम्मे को सँभाल-कर। **गारो**=गौरव, बड़ाई। **पंच में**=आदमियों में। **अधमाई कै कै**=नीचता करके। **मेरी ओर हेरिकै**=मेरी करनी की ओर दृष्टि करके। **रिसाइकै**=क्रोध करके। **ब्याल-बाल**=साँप का बच्चा। **रूख**=(वृक्ष=प्रा० रुक्ख) पेड़।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचंद्रजी, आपने मुझे धूलि की तरह निकम्मे की रक्षा करके पहाड़ से भी भारी बना दिया है। आप के तुल्य पवित्र का पक्ष पाकर मैं लोगों में पूज्य हो गया। मैं तो जैसा पहले था वैसा ही अब भी हूँ, और आपके गुण गा-गाकर नीचता से अपना पेट पालता हूँ। हे महाराज, मेरी करनी की ओर देखकर अप्रसन्न होकर मत बैठिये। जिसको आपने कृपा कर बड़ाई दी उसकी लाज तो रखिये। क्योंकि हे कृपालु नाथ, पालन करके साँप के बच्चे को भी नहीं मारना चाहिये और विष के पेड़ को भी लगाकर काटना नहीं चाहिये।

बेद न पुरान गान, जानौं न बिज्ञान ज्ञान,
ध्यान, धारना, समाधि, साधन-प्रबीनता।
नाहिंन बिराग, जोग, जाग, भाग, , 'तुलसी' के,
दया-दान दूबरो हौं, पाप ही की पीनता।
लोभ-मोह-काम-कोह-दोष-कोष मो सो कौन ?
कलिहूँ जो सीखि लई मेरियै मलीनता।
एक ही भरोसो राम रावरो कहावत हौं,
रावरे दयालु दीनबंधु, मेरी दीनता ॥६२॥

टिप्पणी—**साधन-प्रबीनता**=साधनों में चतुरता। **जाग**=यज्ञ। **दया-दान-दूबरो**=दया और दान में दुर्बल हूँ। **पाप ही की पीनता**=महापापी। **पीनता**=मोटाई। **कोह**=क्रोध। **दोष-कोष**=दोषों का खजाना। **मो सों**=मेरे समान। **कलि हूँ**=कलियुग ने भी। **मेरियै**=मेरी ही।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि न तो मैं बेद और पुराण का पढ़ना जानता हूँ, न ज्ञान और विज्ञान जानता हूँ, न ध्यान, धारणा, समाधि आदि साधनों में ही निपुण हूँ और न मेरे भाग्य में विराग, योग यज्ञादि ही हैं। दया और दान में तो मैं दुर्बल हूँ और पाप की ही मोटाई है अर्थात् महापापी हूँ। मेरे समान लोभ, मोह, काम, क्रोध आदि दोषों का खजाना कौन है, यहाँ तक कि कलियुग ने भी मलिनता मुझसे ही सीख ली है। परन्तु हे रामचन्द्रजी, मुझे भरोसा केवल यही है कि मैं आप का कहलाता हूँ और आप दीनों के बंधु और दयालु हैं और मैं दीन हूँ। (अर्थात् यदि आप सच्चे दीनबंधु हैं तो मुझ दीन पर दया करते ही बनेगा।)

रावरो कहावौं, गुन गावौं राम रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानि हौं।

आनत जहान, मन मेरे हू गुमान बड़ो,
मान्यो मैं न दूसरो, न मानत, न मानिहौं।
पाँच की प्रतीति न, भरोसो मोहिं आपनोई,
तुम अपनायो हौं तबै हौं परि जानिहौं।
गढ़ि गुढ़ि, छोलि छालि कंद की सी भाई बातें,
जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनिहौं ॥६३॥

टिप्पणी—कानि = मर्यादा, लाज। गुमान = गर्व। पाँच = पंच देवता (विष्णु, महेश, गणेश, सूर्य और देवी)। परि = निश्चय रूप से। गढ़ि-गुढ़ि = बना-बनाकर। छोलि-छाल = काट-कूट कर। कुंद की सी भाई = खराद पर चढ़ाई हुई। जीय = मन। कुंदा = खराद का औजार।

भावार्थ—हे रामचंद्रजी, मैं आप ही का दास कहलाता हूँ और आप ही के गुण गाता हूँ, और आप ही की लाज से मैं रोटी पा जाता हूँ। मैंने आपके अतिरिक्त किसी दूसरे को न माना, न मानता हूँ और न मानूँगा। इस बात को संसार जानता है और मेरे मन में भी बड़ा गर्व है। न तो मुझे पंच देवताओं का ही विश्वास है और न अपने कर्तव्य का ही भरोसा है। आपने मुझे अपना लिया है इस बात को मैं तभी निश्चय रूप से जानूँगा जब काट-कूट कर खराद पर चढ़ाई हुई बातें बना-बनाकर जैसे मुख से कहता हूँ वैसे ही भाव मन में भी हो जायें। (अर्थात् जब मुझमें अंतःकरण से आपकी भक्ति आ जायगी।)

बचन बिकार, करतबऊ खुआर, मन,
बिगत-बिचार, कलिमलि को निधानु है।
राम को कहाइ, नाम बेचि बेचि खाइ, सेवा,
संगति न जाइ पाछिले को उपखानु है।
ते हू 'तुलसी' को लोग भलो भलो कहैं, ताको,
दूसरो न हेतु, एक नीके कै निदानु है।
लोकरीति बिदित बिलोकियत जहाँ तहाँ,
स्वामी के सनेह स्वान हू को सनमानु है ॥६४॥

टिप्पणी—खुआर = (फा० ख्वार) खराब, बुरा। कलिमल = पाप। निधानु = खजाना। सेवा संगति न जाय = ऐसी संगति में नहीं जाता जहाँ सेवा करनी पड़े। पाछिले को उपखानु है = जैसा कि प्राचीन लोगों ने कहा है (कि 'सेवा चोर निवाले हाजिर' अथवा 'काम का न काज का दुश्मन अनाज का' इत्यादि) उपखान = (उपाख्यान) कहावत। निदानु = निश्चय। स्वान = कुत्ता। अलंकार—बिभा[illegible] से पुष्ट उपमान-प्रमाण।

भावार्थ—जिसके (तुलसी के) वचन में विकार है (कटुवादी है) जिसके कर्म भी बुरे हैं तथा मन भी सुविचारहीन है और जो पापों का खजाना ही है, जो (तुलसीदास) कहलाता तो है रामदास, पर सच्चा दास न होकर केवल पेट-पालनार्थ राम राम जपता है और जो (तुलसी) बड़ों के पास नहीं जाता कि सेवा करनी पड़ेगी, जिस (तुलसी) पर प्राचीन कहावत (काम का न काज का दु मन अनाज का) खूब चरितार्थ होती है, उस (तुलसीदास) को भी लोग भला आदमी कहते हैं, इसका कोई अन्य हेतु नहीं है, वरन् अच्छी तरह से यही निश्चित होता है और लोक-व्यवहार में विदित है तथा जहाँ-तहाँ देखने में भी आता है कि बड़े के स्नेहपात्र कुत्ते का भी लोग सम्मान करते हैं।

स्वारथ को साज न समाज परमारथ को,
मो सो दगाबाज दूसरो न जगजाल है।
कै न आयों, करौं न करौंगो करतूति भली,
लिखी न बिरंचि हू भलाई भूलि भाल है।
रावरी सपथ, राम नाम ही की गति मेरे,
इहाँ झूठो झूठो सो तिलोक तिहूँ काल है।
'तुलसी' को भलो पै तुम्हारे ही किए कृपालु,
कीजै न बिलंब, बलि, पानी भरी खाल है॥६५॥

टिप्पणी—**स्वारथ को साज** = सांसारिक सुख भोग की सामग्री (स्त्री = पुत्रादि)। **परमारथ को समाज** = मोक्ष-साधन के उपाय (तीर्थ, जपतप आदि)। **दगाबाज** (उर्दू) = धोखेबाज। **जगजाल** = इस मायामय संसार में। **कै न आयों** = न मैंने पहले किया। **करतूति** = कर्म। **बिरंचि** = ब्रह्मा। **भूलि** = भूल कर भी। **भाल** = भाग्य, ललाट, माथा। **नाम** = राम नाम। **गति** = शरण, पहुँच। **इहाँ** = आप से। **पानी-भरी खाल है** = यह शरीर नाशवान है। **पै** = निश्चय। **अलंकार**—छेकोक्ति।

भावार्थ—न मेरे पास सांसारिक सुख-भोग की सामग्री है, न कोई मोक्ष प्राप्त करने का उपाय ही जानता हूँ और न इस मायामय संसार में मेरे समान कोई धोखेबाज है। अच्छे कर्म तो न मैंने पहले किये, न वर्तमान काल में करता हूँ और न भविष्य में कभी करूँगा। भलाई करना तो ब्रह्मा ने भूल से भी मेरे भाग्य में नहीं लिखा। हे राम, मुझे आपको शपथ है मेरी तो 'राम' नाम तक ही पहुँच है। मैं सत्य कहता हूँ क्योंकि जो आपसे झूठ बोलता है वह तीनों लोक (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल) में और भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल में झूठा है (अर्थात् कोई उसका विश्वास न करेगा।) हे कृपालु, तुलसीदास

का भला तो निश्चय ही आपके द्वारा हो सकता है, अतः बलि जाऊँ देर न कीजिये; क्योंकि यह शरीर क्षणभंगुर है, कब नष्ट हो जाय कुछ ठीक नहीं (अर्थात् कृपा करके शीघ्र ही अपनाइये)।

राग को न साज, न बिराग जोगजाग जिय,
काया नहिं छाँड़ि देत ठाटिबो कुठाट को।
मनोराज करत अकाज भयो आजु लगि,
चाहै चारु चीर पै लहै न टूक टाट को।
भयो करतार बड़े कूर को कृपालु, पायो,
नाम-प्रेम-पारस हौं लालच बराट को।
'तुलसी' बनी है राम रावरे बनाए, ना तो,
धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को ॥६६॥

विश्लेषण—राग को न साज=सांसारिक सुख-भोग की सामग्री। राग= (सांसारिक विषयों पर) प्रेम या अनुराग। काया=शरीर। कुठाट को ठाटिबो (सांसारिक सुख-भोग के हेतु) अनुचित उपाय करना। मनोराज=मनोरथ, वासनाएँ। अकाज=(अकार्य) हानि। चारु चीर=सुन्दर वस्त्र। पै=परतु। लहै=पाता है [लाभ से लभना (लहना) क्रिया]। टूक=टुकड़ा। टाट= सन का मोटा और भद्दा कपड़ा। करतार=(कर्तार) ईश्वर, रामचंद्रजी। कूर=निकम्मा। नाम-प्रेम-पारस=राम नाम का प्रेम ही जो पारसवत है। पारस एक प्रकार का पत्थर जिसको छूकर लोहा सोना हो जाता है। हौं=मैं। बराट =कौड़ी। बनी है=सुधरी है। ना तौ=नहीं तो। धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को=(कहावत) न इधर का न उधर का, अर्थात् रामचन्द्रजी की कृपा न होती तो लोक परलोक एक भी न बन पड़ेगा। अलंकार— छेकोक्ति।

भावार्थ—न मेरे पास सांसारिक सुख-भोग की ही सामग्री है और न मन में विराग, न कभी योग-यज्ञादि ही किये। यह शरीर सांसारिक सुख के लिए अनुचित उपाय करना भी नहीं छोड़ता। अनेक वासनाएँ करते-करते आज तक हानि ही होती रही क्योंकि मैं चाहता तो हूँ सुंदर शाल-दुशाले, पर पाता नहीं हूँ टाट का टुकड़ा भी। कृपालु रामचन्द्रजी, मुझ निकम्मे पर भी आप बड़े कृपालु हुए हैं जो मुझ कौड़ी के लालची ने राम नाम का प्रेम रूपी पारस पाया (अर्थात् तुच्छ विषय-भोग के लालची को राम-भक्ति मिल गई)। तुलसीदास कहते हैं कि हे राम, आप ही की कृपा से बनी बनेगी, नहीं तो मैं लोक और परलोक दोनों में से एक भी नहीं सुधार सकता।

ऊँचो मन, ऊँची रुचि, भाग नीचो निपट ही,
लोकरीति-लायक न लंगर लबारु है।
स्वारथ अगम परमारथ की कहा चली,
पेट की कठिन, जग जीव को जवारु है।
चाकरी न आकरी न खेती न बनिज, भीख,
जानत न कूर कछू किसब कबारु है।
'तुलसी' की बाजी राखी राम के नाम, नतु,
भेंट पितरन को न मूड़ हू में बारु है ॥६७॥

टिप्पणी—**मन**=मनोरथ । **रुचि**=इच्छा । **निपट**=अत्यंत, बिलकुल । **लोकरीति लायक न**=लोगों से व्यवहार करने के लायक भी नहीं हूँ । **लंगर**=ढीठ, नटखट । **लबारु**=झूठा । **स्वारथ अगम**=स्वार्थ अर्थात् भोजन वस्त्र भी इच्छापूर्वक मिलना कठिन है । **परमार्थ**=परलोक, मोक्ष । **परमारथ की कहा चली**=मोक्ष प्राप्त करने की बात क्या कहूँ । **जवारु**=(फा० जवाल) भार, जंजाल, झंझट । **चाकरी**=सेवकाई, नौकरी । **आकरी**=खान खोदने का काम । **बनिज**=वाणिज्य । **किसब** (अ०)=कारीगरी । **कबारु**=कबाड़, व्यवसाय, रोजगार । **बाजी**=प्रतिष्ठा, प्रतिज्ञा । **भेंट पितरन को न मूड़ हूँ मे बारु है**=(कहावत) पास में कुछ भी नहीं है (रामचन्द्रजी के शरणागत होने को मुझमें कोई गुण नहीं) । **अलंकार**—विशेषोक्ति ।

भावार्थ—मेरी अभिलाषाएँ बड़ी-बड़ी हैं, रुचि भी ऊँची है, पर भाग्य अत्यन्त हीन है । लोकव्यवहार के योग्य भी नहीं हूँ, क्योंकि ढीठ और झूठा हूँ । यहाँ तो भोजन-वस्त्र मिलना भी कठिन है, मोक्ष प्राप्त करने की कौन बात कहूँ ? मुझे भरपेट भोजन मिलना कठिन हो रहा है । (दूसरों पर निर्भर रहने के कारण) संसार के लोगों के लिए भार हो रहा हूँ । न मैं कोई नौकरी कर सकता हूँ, न खान-खुदाई कर सकता हूँ, न खेती ही कर सकता हूँ, न वाणिज्य ही कर सकता हूँ, न भीख माँग सकता हूँ, और न मैं निकम्मा कुछ कारीगरी या व्यवसाय ही जानता हूँ । अतः तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरी प्रतिष्ठा तो रामनाम के प्रताप से ही रह सकती है, नहीं तो मेरे पास (और तो और) पितरों को भेंट देने के लिए सिर में बाल भी नहीं है, अर्थात् मेरे पास राम तक पहुँचने के लिए रामनाम-प्रेम के अतिरिक्त और कोई भी गुण नहीं ।

अपत उतार, अपकार को अगार, जग,
जाकी छाँह छुए सहमत ब्याध बाघको ।
पातक पुहुमि पालिबे को सहसानन सो,
कानन कपट को पयोधि अपराध को ।

'तुलसी' से बाम को भो दाहिनो दयानिधान,
सुनत सिहात सब सिद्ध साधु साधुको ।
रामनाम ललित ललाम कियो लाखनि को,
बड़ो कूर कायर कपूत कौड़ी आध को ॥६८॥

टिप्पणी—अपत = अप्रतिष्ठित । **उतार** = सबसे उतरा हुआ, अधम । **सहमत** = डरते हैं । **बाधको** = बाधक भी, विघ्नकर्ता भी । **पातक-पुहुमि** = पापरूपी पृथ्वी को । **पुहुमि** = भूमि । **सहसानन** = शेषनाग । **बाम** = कुटिल भी । **दाहिनो** = अनुकूल हुए । **सिहात** = ईर्ष्या करते हैं । **ललित** = सुन्दर । **ललाम** = भूषण । **लाखनि को** = लाखो के मोल का । **कौड़ी आध को** = जो आधी कौड़ी मोल का था ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैं अति अधम और अपकार का घर हूँ, पापी इतना कि संसार जिसकी छाया को स्पर्श करते हुए विघ्नकर्ता जीव-हिंसक व्याघ्र भी डरते हैं। मैं पापरूपी पृथ्वी को पालने के लिए शेषनाग के समान हूँ (अर्थात् जैसे शेषनाग ने पृथ्वी के बोझ को धारण कर रक्खा है ऐसे ही मैंने भी पाप का बोझ सिर पर धारण कर रक्खा है) मैं कपट का वन हूँ अर्थात् अनेक कपट करता हूँ और अपराधों का समुद्र हूँ अर्थात् महा अपराधी हूँ, ऐसे कुटिल तुलसीदास पर दयालु रामचन्द्र जी अनुकूल हुए, ऐसा सुनकर सब सिद्ध, साधु और साधक भी ईर्ष्या करते हैं। मैं बड़ा कपटी, कायर, कुपुत्र, आधी कौड़ी के मोल का अर्थात् निकम्मा था, उसको रामनाम ने लाखो के मोल का सुन्दर भूषण कर दिया अर्थात् सबसे पूज्य बना दिया ।

सब अंगहीन, सब साधन बिहीन, मन,
बचन मलीन, हीन कुल करतूति हौं ।
बुधि-बल-हीन, भाव-भगति-बिहीन, हीन,
गुन, ज्ञान हीन, हीन भाग हू बिभूति हौं ।
'तुलसी' गरीब की गई बहोरी रामनाम,
जाहि जपि जीह राम हू को बैठो धूति हौं ।
प्रीति रामनाम सों, प्रतीति रामनाम की,
प्रसाद रामनाम के पसारि पायँ सूतिहौं ॥६९॥

टिप्पणी—**सब अंगहीन** = योग के आठों अंगों से रहित । **हीन कुल-करतूति हौं** = अपने कुल के योग्य कर्म भी नहीं करता हूँ । **भाव** = प्रेम । **विभूति** = ऐश्वर्य । **गई बहोरी**—गई हुई वस्तु को लौटा दिया बिगड़ी हुई बात सुधार दी **जीह**—जिह्वा **बैठो धूति हौं** छल लिया है । **प्रतीत** = विश्वास

प्रसाद—प्रसन्नता से। **पायँ पसारि सूतिहौं**–पाँव फैलाकर सोऊँगा अर्थात् निःशंक होकर सोऊँगा।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैंने योग का एक भी अंग नहीं किया और मुक्ति-साधन के जो उपाय हैं वे भी मैंने नहीं किये। मन और वचन से पापी हूँ, अपने कुल के करने योग्य कर्तव्य भी मैंने नहीं किये, बुद्धि और बल भी मुझमें नहीं है, प्रेम और भक्ति से भी वंचित हूँ और भाग्य और धनसंपत्ति से भी हीन हूँ। जो राम का नाम गरीबों की गई हुई सम्पत्ति को फिर लौटा देता है उसी ने मेरी भी बिगड़ी बात बना दी है, उसी नाम को अपनी जिह्वा से जप कर मैंने रामचन्द्रजी को भी छल लिया है। उसी रामनाम से मेरी प्रीति है, उसी रामनाम का मुझे भरोसा है, और उसी रामनाम के प्रसाद से मैं निश्चिंत होकर सोऊँगा (मेरा ऐसा ही विश्वास है)।

मेरे जान जब तें हौं जीव ह्वै जनम्यो जग,
तब तें बेसाह्यो दाम लोह कोह काम को।
मन तिनहीं की सेवा, तिनहीं सों भाव नीको,
बचन बनाइ कहौं, 'हौं गुलाम राम को'।
नाथ हू न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै
प्रभु हू तें प्रबल प्रताप प्रभु-नाम को।
आपनी भलाई भलो कीजै तो भलाई, न तौ,
'तुलसी' जो खुलैगो खजानो खोटे दाम को ॥७०॥

टिप्पणी—**मेरे जानें**=मेरी समझ में। **बेसाह्यो**=खरीदा। **लोह**=लोभ। **कोह**=क्रोध। **तिनहीं**=लोभादिकों की ही। **भाव**=प्रेम। **नीको**=अधिक। **बचन बनाई कहौं**=मन से सत्य नहीं कहता हूँ वरन् बनाकर अर्थात् झूठ ही कहता हूँ। **गुलाम** (अ०)=दास। **पै**=परंतु। **खुलैगो खजानो खोटे दाम को**=(मुहावरा) खोटाई प्रकट हो जायगी, भंडाफोड़ हो जायगा।

भावार्थ—मेरी समझ में जब से मैंने इस संसार में जन्म पाया है तब से लोभ, क्रोध और काम ने मुझे दाम देकर मोल ले लिया है। अतएव मेरा मन उन्हीं की सेवा में लगता है और उन्हीं से मुझे अतिशय प्रेम है। परन्तु झूठ बोलकर प्रकट करता हूँ कि मैं राम का सेवक हूँ। मुझे अयोग्य जानकर स्वामी (रामचन्द्र जी) ने भी नहीं अपनाया; झूठ ही यह प्रसिद्धि हो गई कि मैं राम का सेवक हूँ परन्तु क नाम का प्रताप से भी प्रबल

है। अतः हे नाथ, अपनी स्वाभाविक भलाई से आप मेरा भला करें तो अच्छा ही है, नहीं तो मेरे (तुलसीदास के) पापों का भंडाफोड़ हो जायगा। (तब आप ही की बदनामी होगी कि रामदास बुरे होते हैं।)

जोग न बिराग जप जाग तप त्याग ब्रत,
तीरथ न धर्म जानौं बेद बिधि किमि है।
'तुलसी' सो पोच न भयो है, नहिं ह्वै है कहूँ,
सोचैं सब याके अघ कैसे प्रभु छमिहै।
मेरे तौ न डरु रघुबीर सुनौ साँची कहौं,
खल अनखैहैं, तुम्हें, सज्जन न गमि है।
भले सुकृती के संग मोहि तुला तौलिए तौ,
नाम के प्रसाद भार मेरी ओर नमिहै ॥७१॥

टिप्पणी—जोग = अष्टांग योग। बिराग = संसार से उदासीनता। जप = विधिपूर्वक [illegible] का जपना। जाग = अश्वमेध यज्ञ। तप = तपस्या करना। त्याग = दान। ब्रत = [illegible]। बेदबिधि = वेद का विधान। किमि = किस प्रकार, कैसा। [illegible]। याके = इस (तुलसीदास) के। अघ = पाप। छमिहै = क्षमा करेंगे। खल = दुष्ट। अनखैहैं = अप्रसन्न होंगे, बिगड़ेंगे। न गमिहै = [illegible] (वे भी आपको लेथारेंगे कि यह क्या बात है)। सुकृती = [illegible]। तुला = तराजू। प्रसाद = प्रसन्नता, कृपा। भार = बोझा, पलड़ा। मेरी ओर नमिहै = मेरी तरफ झुकेगा।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैं योग, वैराग्य, जप, यज्ञ, तपस्या, दान, व्रत, तीर्थ और धर्म कुछ नहीं जानता और वेद का विधान कैसा है यह भी नहीं जानता। मेरे समान नीच न कभी हुआ है न कभी होगा। इसीलिए सब लोग सोचते हैं कि रामचन्द्रजी कैसे इसके अपराध क्षमा करेंगे। हे रामचन्द्रजी मुझे तो डर नहीं है और मैं सच-सच कहता हूँ। सुनिए, अगर आप मुझे क्षमा करेंगे तो दुष्ट लोग तो आपसे अप्रसन्न हो जायँगे और सज्जन लोग भी गम न खायेंगे। अगर आप मुझे किसी अतिशय पुण्यात्मा के साथ तराजू में तोलें तो आप के नाम की कृपा से पलड़ा मेरी ही ओर झुकेगा अर्थात् मैं ही भारी होऊँगा।

जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागिबस,
खाए टूक सबके बिदित बात दुनी सो।
मानस बचन काय किये पाप सतिभाय,
राम को कहाय दास, दगाबाज पुनी सो।

रामनाम को प्रभाउ, पाउ महिमा प्रताप,
'तुलसी' सो जग मानियत महामुनी सो।
अति ही अभागो, अनुरागत न रामपद,
मूढ़ एतो बड़ो अचरज देख सुनी सो ॥७२॥

टिप्पणी—पेटागिबस = जठराग्नि के वश, भूख के कारण। टूँक = टुकड़े। **बिदित** = प्रकट है। **दुनी** = दुनिया, संसार। **मानस** = मन। **काय** = शरीर। **सतिभाय** = सद्भाव। **दगाबाज** = (फा०) धोखेबाज। **पुनी** = पुनः, फिर। **पाउ** = पाया। **महामुनी** = वाल्मीकि मुनि। **अनुरागत** = प्रेम करता है (अनुराग से 'अनुरागना' क्रिया बना ली)। **एतो** = इतना। **अचरज** = आश्चर्य।

भावार्थ—पेट भरने के लिए मैंने अपनी जाति, अपने से ऊँची जाति और अपने से नीची जाति अर्थात् सबसे रोटी के टुकड़े माँग-माँगकर खाये, यह बात संसार जानता है। मन, वचन और शरीर से अनेक पाप किये, राम का भक्त कहलाया और फिर भी वैसा ही धोखेबाज बना रहा, पर मुझ ऐसे कुटिल ने भी रामनाम के प्रभाव से महिमा और प्रताप पाया और संसार में महामुनि वाल्मीकि के समान मान्य हो गया। हे मूर्ख, इतना बड़ा भारी आश्चर्य देख-सुनकर भी तू बड़ा ही अभागा है जो रामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम नहीं करता।

जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो, सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारे तें ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।
'तुलसी' सो साहिब समर्थ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सोच बिधि हू गनक को।
नाम, राम ! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरी तें गरु तृन तें तनक को ॥७३॥

टिप्पणी—जायो कुल मंगन = दरिद्रों के कुल में जन्म लिया। **बधावा बजना** = आनंदसूचक बाजे बजना। **परिताप** = संताप। **पाप** = कष्ट। **बारे तें** = बचपन से। **ललात** = ललचाता था। **बिललात** = बिलखाते हुए। **जानत हौं** = जानता था। **चारि फल** = धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। **चनक** = चने। **सिहात** = ईर्ष्या करता है। **बिधिहू गनक को** = ज्योतिषी ब्रह्मा भी। **सयानो** = (सज्ञान) चतुर। **बावरो** = उन्मत्त, पागल। **किधौं** = अथवा। **जो तृन तें तनक को गिरी तें गरु करत** = जो तृण के समान हल्के को पहाड़ से भी भारी करता है (मेरे समान पतित को भी अपना सेवक बनाकर इतना पूज्य बना देता है)।

भावार्थ—मैं भिक्षुकों (ब्राह्मणों) के कुल में उत्पन्न हुआ यह सुनकर बधावा

बजवाया गया। परंतु मैं माता-पिता के लिए संताप और दुःख का देनेवाला हुआ। मैं दरिद्र बचपन से भूख से व्याकुल होकर लालच के मारे घर-घर भटकता फिरता था, और चार दाने चने पाकर ही इतना प्रसन्न हो जाता था कि उनको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों फलों के बराबर जानता था। वही मैं (तुलसीदास) अब समर्थ स्वामी रामचंद्रजी का सेवक हूँ, यह सुनकर ज्योतिषी ब्रह्मा तक (जिसका लेख झूठा नहीं हो सकता) ईर्ष्या करता है और सोचता है (कि यह अभागा राम-सेवक कैसे हुआ)। हे रामचंद्रजी, आपका नाम न जाने समझदार है अथवा उन्मत्त जो तृण समान हलके व्यक्ति को भी पहाड़ समान गरू बना देता है अर्थात् पतितों को पवित्र और पूज्य बना देता है।

बेद हू पुरान कही, लोक हू बिलोकियत,
राम-नाम ही सों रीझे सकल भलाई है।
कासी हू मरत उपदेसत महेस सोई,
साधना अनेक चितई न चित लाई है।
छाँछी को ललात जे, ते राम-नाम के प्रसाद,
खात खुनसात सौंधे दूध की मलाई है।
रामराज सुनियत राजनीति की अवधि,
नाम, राम! रावरो तो चाम की चलाई है ॥७४॥

टिप्पणी—रीझे = मन लगाने से। **सोई** = वही राम का नाम। **साधना** = मोक्ष प्राप्त करने के अनेक उपायों को। **चितई न चित लाई है** = न उसकी ओर देखा, न ध्यान दिया। **छाँछी** = मट्ठा। **ललात** = ललचाते थे। **खुनसात** = नाक-भौं सिकोड़ते हैं। **सौंधा** = पका हुआ। **रामराज सुनियत राजनीति की अवधि** = सुना जाता है कि राम के राज्य में सबसे राजनीति के अनुसार अर्थात् योग्यता के अनुसार (बड़े से बड़ी, छोटे से छोटी) व्यवस्था की जाती थी। **अवधि** = सीमा। **चाम की चलाई है** = चमड़े का सिक्का चला दिया है, पतितों को भी उबार कर पूज्य बना दिया है। **अलंकार**—लोकोक्ति।

भावार्थ—वेद पुराणों में भी कहा गया है और लोक में भी देखा जाता है कि रामनाम में ही मन लगाने से सब प्रकार की भलाई है। काशी में मरते समय भी महादेवजी (मोक्ष-प्राप्ति के लिए) रामनाम जपने का ही उपदेश देते हैं, न और साधनों की ओर देखते हैं न उन पर कुछ ध्यान ही देते हैं। (यह तो वेद पुराणों की बात हुई) लोक में भी देखा जाता है कि जो मट्ठा पीने के लिए लालायित रहते थे वे ही अब रामनाम के प्रसाद से (इतने समृद्धिशाली हो गये हैं कि) पके दूध की मलाई खाने में भी नाक भौं सिकोड़ते हैं। हे राम

चंद्रजी, सुना जाता है कि आपके राज्य में तो राजनीति की पराकाष्ठा थी अर्थात् सबसे न्यायानुकूल व्यवहार किया जाता था, पर आपके नाम ने तो चमड़े का सिक्का चला दिया है, अर्थात् पतितों को भी मान्य बना दिया है।

सोच-संकटनि सोच-संकट परत, जर
जरत, प्रभाव नाम ललित ललाम को।
बूड़ियौ तरति बिगरीयौ सुधरति बात,
होत देखि दाहिनो सुभाय बिधि बाम को।
भागत अभाग, अनुरागत बिराग, भाग
जागत, आलसि 'तुलसी' हू से निकाम को।
धाई धारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति,
आई मीचु मिटति जपत राम-नाम को ॥७५॥

टिप्पणी—सोच-संकटनि सोच-संकट परत=शोक संकटों को भी शोक-संकट पड़ जाता है, अर्थात् शोक-संकट मिट जाता है। **जर जरत**=ज्वर भी जल जाता है, अर्थात् ज्वर भी दूर हो जाता है। **ललित**=सुन्दर। **ललाम**=भूषण, श्रेष्ठ। **बूड़ियो**=डूबता हुआ भी। **तरति**=तर जाता है। **बिधि बाम को स्वभाव दाहिनो होत देखियत**=प्रतिकूल विधाता का स्वभाव भी अनुकूल होना हुआ जान पड़ता है, दुर्भाग्य भी सौभाग्य हो जाता है। **अनुरागत बिराग**=वैराग्य भी प्रेम करने लगता है, अर्थात् उदासीन भी प्रेम करने लगता है। **निकाम**=निकम्मा, व्यर्थ। **धारि**=झुंड (लुटेरों का)। **फिरि कै**=लौटकर। **गोहारि**=रक्षक। **मीचु**=(सं० मृत्यु; प्रा०)। **अलंकार**—व्याघात से पुष्ट हेतु।

भावार्थ—रामनाम जपते ही शोक और दुःख मिट जाते हैं। उस सुन्दर श्रेष्ठ नाम के प्रभाव से ज्वर भी दूर हो जाता है, डूबता हुआ भी पार हो जाता है, बिगड़ी हुई बात भी सुधर जाती है, प्रतिकूल विधाता भी अनुकूल हो जाता है, अभाग्य भाग जाता है, उदासीन भी प्रेम करने लगता है। तुलसीदास के समान आलसी और निकम्मे के भी भाग्य उदय हो जाते हैं। लूटने को आई हुई लुटेरों की सेना भी उलटे रक्षक और हितकारी हो जाती है और आई हुई मौत भी मिट जाती है। (भाव यह कि रामनाम के जपने मात्र से ही सब अमंगल भी मंगल हो जाते है, यहाँ तक कि मौत भी मिट जाती है।)

आँधरो, अधम, जड़, जाजरो जरा जवन,
सूकर के सावक ढका ढकेल्यौ मग में
गिरो, हिये हहरि, 'हराम को हराम हन्यो'
हाय हाय करत परी गो काल-फँग में।

'तुलसी' बिसोक ह्वै त्रिलोक-पति-लोक गयो,
नाम के प्रताप, बात बिदित है जग में ।
सोई रामनाम जो सनेह सों जपत जन,
ताकी महिमा क्यों कही है जाति अगमें ॥७६॥

टिप्पणी—आँधरो = अंधा । जड़ = मूर्ख । जाजरो जरा = वृद्धावस्था के कारण जर्जर अर्थात् निर्बल । जवन = यवन । सावक = बच्चा । ढका ढकेल्यो = धक्का देकर गिरा दिया । हिये = हृदय में । हहरि = डर के मारे । हराम = सूअर (अरबी भाषा) । 'हराम हों हराम हन्यों' = हराम, मुझे हराम (सूअर) ने मार दिया । काल-फँग में परो गो = काल के पंजे में फँस गया, मर गया । बिसोक = विगत शोक, शोक से रहित । त्रिलोक-पति लोक = विष्णु-लोक । अगमें = (महिमा का विशेषण है) न कही जा सकने योग्य ।

भावार्थ—किसी समय एक अंधे, नीच, मूर्ख और वृद्धावस्था के कारण निर्बल यवन (म्लेच्छ) को एक सूअर के बच्चे ने धक्का देकर ढकेल दिया । वह मार्ग मे गिरा और हृदय मे भयभीत होकर 'मुझे हराम (सूअर) ने मार डाला' इस प्रकार हाय-हाय करते हुए मर गया । तुलसीदास कहते है कि वह रामनाम के प्रताप से शोकरहित वैकुंठ लोक को चला गया, यह बात संसार मे प्रकट है । अतः इस रामनाम की, जिसे आदमी स्नेहपूर्वक जपता है अकथनीय महिमा कैसे कही जा सकती है ? (भाव यह कि अज्ञानावस्था में रामनाम लेने से तो मोक्ष हो गया; प्रेम से रामनाम जपने से तो अपूर्व ही फल मिलेगा ।)

जाप की न, तप खप कियो न तमाइ जोग,
जाग न, बिराग त्याग तीरथ न तनको ।
भाई को भरोसो न खरो सो बैर बैरी हू सों,
बल अपनो न, हितू जननी जनक को ।
लोक को न डर, परलोक को न सोच,
देव-सेवा न सहाय, गर्ब धाम को न धन को ।
राम ही के नाम तें जो होइ सोई नीको लागे,
ऐसोई सुभाय कछु 'तुलसी' के मन को ॥७७॥

टिप्पणी—जाप न की = मैंने जप नहीं किया । न तप खप कियो = न खूब अच्छी तरह से तप ही किया । खप = खपरक, पचकर, कष्ट सहकर । तमाइ = (तमअ—अरबी) लालच । न तमाइ जोग = योग द्वारा कुछ प्राप्त होने का भी मुझे लालच नहीं । बिराग = सांसारिक सुखों से उदासीनता । त्याग = दान । तनको = थोड़ा भी । खरो सो = अच्छी तरह । हितू = हितकारी । धाम = घर । नीको = अच्छा

भावार्थ—न मैंने मंत्र का जप ही किया, न कष्ट सहकर तपस्या ही मुझसे हो सकी, न मुझे योग द्वारा कुछ सिद्धि प्राप्त करने का ही लालच है, न मैंने कोई यज्ञ ही किया, न कुछ वैराग्य, न दान या तीर्थ ही किया, न मुझे अपने भाई का कुछ भरोसा है और न मेरा किसी वैरी से ही अच्छी तरह वैर है। अपने शरीर में बल भी नहीं है और हितकारी माता-पिता का भी बल नहीं है, न मुझे इस लोक का डर है, न परलोक की ही चिंता है, न आज तक मैंने किसी देवता की सेवा ही की जिससे मैं उस देवता से कुछ सहायता की आशा रखूं, न मेरा कोई घर, न मेरे पास संपत्ति ही है जिसका मैं गर्व करूँ (भाव यह कि न मैंने कुछ पुण्य कर्म ही किये न मेरे पास कुछ है)। तुलसीदास कहते हैं कि मेरे मन का स्वभाव तो कुछ ऐसा ही विचित्र है कि रामचंद्रजी के ही नाम से जो कुछ भी हो वही मुझे अच्छा लगता है।

ईस न, गनेस न, दिनेस न, धनेस न,
सुरेस सुर गौरि गिरापति नहिं जपने।
तुम्हरेई नाम को भरोसो भव तारिबे को,
बैठे उठे जागत बागत सोए सपने।
'तुलसी' है बावरो सो रावरोई, रावरी सौं,
रावरेऊ जानि जिय, कीजिये जु अपने।
जानकी-रमन ! मेरे, रावरे बदन फेरे,
ठाऊँ न, समाउँ कहाँ, सकल निरपने ॥७८॥

टिप्पणी—**ईस**=महादेव। **दिनेस**=सूर्य। **धनेस**=कुबेर। **सुरेस**=इंद्र। **गिरापति**=सरस्वती के पति, ब्रह्मा। **भव**=संसार। **बागत**=चलते फिरते। **सौं**=शपथ। **रावरे बदन फेरे**=आपके मुँह फेरने पर, आपके विमुख होने से, आपके रूठने से। **ठाउँ**=स्थान। **समाउँ**=रहूँ। **निरपने**=(निर+अपने) अपने नहीं, अर्थात् पराये, बेगाने।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैं शिव, गणेश, सूर्य, कुबेर, इन्द्र और अन्य देवता, पार्वती और ब्रह्माजी किसी का जप-पूजन नहीं करता। बैठे में, उठे में, चलते में, जागते में, सोते में, सपने में हर समय संसार से तारने के लिए आप ही के नाम का भरोसा है। मैं बावला आप ही का दास हूँ, यह मैं आपकी ही शपथ लेकर कहता हूँ। अतः अपने मन में यह जानकर कि मैं आपका ही हूँ मुझे अपना कीजिए। हे सीतापति आपके होने से

मेरे लिए कहीं भी स्थान नहीं, कहाँ रहूँगा ? सब मेरे लिए बेगाने हो गये हैं। (किसी से भी मेरा संबंध नहीं)।

जाहिर जहान में जमानो एक भाँति भयो,
बेंचिये बिबुध-धेनु रासभी बेसाहिए।
ऐसेऊ कराल कलिकाल में कृपालु तेरे,
नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिए।
'तुलसी' तिहारो मन बचन करम, तेहि
नाते नेह-नेम निज ओर तें निबाहिए।
रंक के निवाज रघुराज राजा राजनि के,
उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए ॥७९॥

टिप्पणी—**जाहिर**=प्रकट। **जहान**=संसार। **जमानो**=समय। **जमानो एक भाँति भयो**=समय बहुत खराब आ गया है। **बिबुध-धेनु**=देवताओं की गाय, कामधेनु। **रासभी**=गदही। **बेसाहिए**=मोल लीजिए। **त्रिताप**= दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों प्रकार के कष्ट। **दाहिए**=जलाते है। **तेहि नाते** =उसी संबध से। **नेह-नेम**=स्नेह का नियम। **रंक**=दरिद्र, दीन। **उमरि** =(अ०) आयु। **दराज**=(फा०) दीर्घ।

भावार्थ—संसार में प्रकट है कि समय ऐसा बुरा आ गया है कि लोग कामधेनु को बेचकर गदही खरीदने लगे है। हे कृपालु, ऐसे भयंकर कलियुग में भी आपके नाम के प्रताप से मैं दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों तापों से नहीं जलता। तुलसीदास कहते हैं कि मैं मन-वचन-कर्म से आपका ही भक्त हूं, अत उसी सम्बन्ध से अपनी ओर से मेरे स्नेह के नियम का निर्वाह कर दीजिएगा। हे दीनदयालु, राजाओं के राजा महाराज रामचंद्रजी आपकी आयु बड़ी हो, मै ऐसी ही कामना रखता हूं।

स्वारथ सयानप, प्रपंच परमारथ,
कहायो राम रावरो हौं, जानत जहानु है।
नाम के प्रताप, बाप ! आजु लौं निबाही नीके,
आगे को गोसाईं स्वामी सबल सुजानु है।
कलि की कुचालि देखि दिन-दिन दूनी देव !
पाहरूई चोर हेरि, हिय हहरानु है।
'तुलसी' की बलि, बार-बार ही सँभार कीबी,
यद्यपि कृपानिधान सदा सावधानु है ॥८०॥

टिप्पणी—**स्वारथ सयानप**=स्वार्थ-साधन करने अर्थात् अपना काम सिद्ध करने म ही अपनी चतुराई हूँ **प्रपंच** मोक्ष प्राप्ति

के उपायों में छल करता हूँ। **जहानु**=दुनिया। **बाप**=हे पिता। **आगे को**=भविष्य में मेरा निर्वाह करने को। **सुजानु**=अच्छी तरह जानकर। **पाहरूई**—पहरुवा ही। **हेरि**=देखकर। **हिय हहरानु है**=हृदय डर गया है। **कीबी**=कीजिये।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यह सारा संसार जानता है कि मैं स्वार्थ-साधन करने में ही अपनी चतुरता समझता हूँ, और परमार्थ के कार्यों में छल करता हूँ। हे पिता! अपने नाम के प्रताप से आपने आज तक मेरा अच्छी तरह निर्वाह किया है। भविष्य में भी इसी प्रकार मेरा निर्वाह करने को हे स्वामी, आप समर्थ और सुजान हैं। हे देव, कलि की कुचाल प्रतिदिन दूनी देखकर और पहरुवे को ही चोर देखकर मेरा हृदय डर के मारे भयभीत है। हे कृपालु; मैं आपकी बलि जाऊँ। यद्यपि आप अपने भक्तों की रक्षा करने को सदा सावधान रहते हैं तथापि मैं प्रार्थना करता हूँ कि बार-बार मेरी सँभाल कीजिएगा जिससे मेरे मन में विकार न आवे।

दिन दिन दूनो देखि दारिद दुकाल दुःख,
दुरित दुराज, सुख सुकृत सकोचु है।
माँगे पैंत पावत प्रचारि पातकी प्रचंड,
काल की करालता भले को होत पोचु है।
आपने तौ एक अवलंब, अंब डिंभ ज्यों,
समर्थ सीतानाथ सब संकट-बिमोचु है।
'तुलसी' की साहसी सराहिये कृपालु राम!
नाम के भरोसे परिनाम को निसोचु है ॥८१॥

टिप्पणी—**दारिद**=दरिद्रता। **दुकाल**=अकाल, अन्न के अभाव का समय। **दुरित**=पाप। **दुराज**=दुष्ट राज्य, राज्यविप्लव। **सुकृत**=पुण्य। **सकोच है**=घटते जा रहे हैं, कम हो रहे हैं। **पैंत**=दाँव। **पावत**=पा जाते हैं, विजय पाते हैं। **पोचु**=बुरा। **अवलंब**=सहारा। **अंब**=माता। **डिंभ**=बच्चा, बच्चे को जैसे माता का सहारा रहता है। **संकट-बिमोचु**=संकटों से छुड़ानेवाले। **परिनाम को निसोचु है**=परिणाम के बारे में निश्चिन्त है।

भावार्थ—प्रतिदिन दरिद्रता, अकाल, दुःख, पाप और राज्य-विप्लव बढ़ते जा रहे हैं जिससे सुख और पुण्य घटते जा रहे हैं। समय ऐसा विपरीत हो गया है कि बड़े-से-बड़े पापी को इच्छित वस्तु मिल जाती है, और भले का बुरा होता है। तुलसीदास कहते हैं कि मेरा तो एकमात्र सहारा समर्थ, और सब संकटों से छुड़ानेवाले सीतापति रामचंद्रजी का ही है जैसे बच्चे का सहारा

केवल माता ही है। हे कृपालु, रामचंद्रजी, मेरी हिम्मत की प्रशंसा तो कीजिए, क्योंकि मुझे आपके नाम के भरोसे परिणाम की कुछ भी चिंता नहीं है।

मोह-मद-मात्यो, रात्यो कुमति-कुनारि सों,
बिसारि बेद लोक-लाज, आँकरो अचेतु है।
भावै सो करत मुँह आवै सो कहत, कछु
काहू की सहत नाहिं, सरकस हेतु है।
'तुलसी' अधिक अधमाई हू अजामिल तें,
ताहू में सहाय कलि कपट-निकेतु है।
जैबे को अनेक टेक, एक टेक ह्वैबे की, जा
पेट-प्रिय-पूत-हित रामनाम लेतु है ॥८२॥

टिप्पणी—**मोह-मद-मात्यो**=अज्ञानता रूपी मद अर्थात् शराब से उन्मत्त हूँ। **रात्यो**=आसक्त, अनुरक्त। **कुमति-कुनारि**=कुबुद्धि रूपी वेश्या। **बिसारि**=भुलाकर। **आँकरो**=गहरा। **अचेतु**=बेसुध। **भावै**=जो अच्छा लगता है। **सरकस**=सरकश, प्रबल। **हेतु**=कारण। **अधमाई**=नीचता। **कपट-निकेतु**=कपट का घर। **जैबे को**=नष्ट होने को। **अनेक टेक**=अनेक आश्रय है, अनेक कारण है। **टेक**=आसरा। **ह्वैबे को**=भलाई होने के लिए। **पेट-प्रिय-पूत-हित**=पेट रूपी प्रिय पुत्र के लिए। **अलंकार**—रूपक से पुष्ट व्यतिरेक।

भावार्थ—(तुलसीदास अजामिल से अपना रूपक बाँधते हैं) अजामिल शराब में मस्त रहता था, मैं (तुलसीदास) अज्ञानता में मस्त रहता हूँ। अजामिल सदा वेश्याओं में आसक्त रहता था, मैं कुबुद्धि में रत रहता हूँ। उसने वेदमार्ग भुला दिये थे, मैंने लोक-लाज छोड़ दी है। उसकी तरह मैं भी बहुत बेसुध रहता हूँ। उसको जो अच्छा लगता था वही करता था और मैं जो मुख से निकलता है कह देता हूँ। वह भी किसी बात को नहीं सह सकता था, मैं भी राम का भरोसा होने के प्रबल कारण से किसी को नहीं मानता हूँ। मेरी नीचता तो अजामिल से भी अधिक है; उस पर भी कपट का घर कलियुग भी मेरा सहायक है। नष्ट होने के लिए तो अनेक कारण हैं, पर भलाई होने के लिए, भवसागर पार होने के लिए केवल एक ही कारण है। वह यह कि उसने अपने प्यारे पुत्र का नाम लिया था, मैं अपने पेट रूपी पुत्र को पालने के लिए राम का नाम लेता हूँ।

जागिये न सोइए, बिगोइए जनम जाय,
दुःख रोग रोइए कलेस कोह काम को।

राजा, रंक, रागी औ बिरागी, भूरि भागी ये,
अभागी जीव जरत, प्रभाव कलि बाम को।
'तुलसी' कबंध कैसो धाइबो बिचारु अंध!
धुंध देखियत जग, सोच परिनाम को।
सोइबो जो राम के सनेह की समाधि सुख,
जागिबो जो जीह जपै नीके रामनाम को ॥८३॥

टिप्पणी = बिगोइए = बिगाड़िए। जाय = व्यर्थ ही। रागी = सांसारिक सुखों के अनुरागी। भूरि भागी = बड़े भाग्यवान्। कबंध = रुंड। अंध = मूर्ख। धुंध = धुँधला, अस्पष्ट।

भावार्थ—इस संसार में न तो हम जागते ही हैं न सोते ही हैं (विलक्षण भ्रम में पड़े हैं)। व्यर्थ ही जीवन नष्ट करते हैं, दुःख और रोग से रोते हैं, क्रोध और काम का क्लेश सहते हैं। राजा, रंक, रागी, विरागी, भाग्यवान् और अभागी सब जीव जले जाते हैं; इस कुटिल कलिकाल का यही प्रभाव है। तुलसीदास कहते हैं कि हे मूर्ख! यह (अपना चलना-फिरना, काम करना इत्यादि) कबंध का-सा दौड़ना समझो। संसारी लोगों में परिणाम की चिंता बहुत धुँधली सी दिखाई पड़ती है (बहुत कम लोग परिणाम की चिंता करते हैं)। अगर तुम सोना चाहते हो तो रामप्रेम की सुखद समाधि में सोओ—यही तो ठीक सोना है, और जागना चाहते हो तो जीभ से अच्छी तरह से रामनाम जपो—यही ठीक जागना है।

बरन-धरम गयो, आश्रम निवास तज्यो,
त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।
करम उपासना कुबासना बिनास्यो, ज्ञान
बचन, बिराग बेष, जगत हरो सो है।
गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग,
निगम नियोग ते सो केलि ही छरो सो है।
काय मन बचन सुभाय 'तुलसी' है जाहि,
रामनाम जो भरोसो, ताहू को भरोसो है ॥८४॥

टिप्पणी—त्रासन चकित = अधर्म के भय से भयभीत होकर। परावनो सो परो है = भगदड़ पड़ गई है, भाग गये हैं। करम उपासना कुबासना बिनास्यो = कुबासना ने कर्म और उपासना का नाश कर दिया। ज्ञान बचन = ज्ञानियों के से वचन बोलकर। बिराग बेष = विरागियों का सा वेश बनाकर। हरो सो है = ठग सा लिया है। भगति भगायो लोग = लोगों को हरि-भक्ति

से भगा दिया है। निगम = वेद। नियोग = आज्ञा। केलि ही = खेल ही में। **छरो सो है** = छल लिया है।

भावार्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारो वर्णों ने अपना-अपना धर्म छोड़ दिया है; ब्रह्मचर्यादि आश्रमों में रहकर अपने जीवन को व्यतीत करना भी लोगों ने छोड़ दिया है। अधर्म के भय से भयभीत होकर वर्णाश्रम धर्मों में भगदड पड़ गई है। कुवासनाओं ने कर्म और उपासना का नाश कर दिया। ज्ञानियों के से वचन बोलकर और विरागियों का सा वेश धारण कर संसार को ठग सा लिया है। गोरख ने लोगों में योग क्या फैलाया, उनको राम-भक्ति से विमुख कर दिया तथा वेदों की आज्ञाओं को तो खेल ही में छल लिया है अर्थात् वेद की आज्ञा का कपट से निर्वाह कर देते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जिसको कर्म-मन-वचन से स्वभावतः रामनाम का भरोसा है उसी का सच्चा भरोसा है। (कलिकाल में मोक्ष के अन्य साधन सफल नहीं हो सकते हैं।)

मत्तगयंद सवैया

बेद पुरान बिहाइ सुपंथ कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल, नृपाल कृपालन राजसमाज बड़ोई छली है।
बर्न-बिभाग न आश्रम-धर्म, दुनी दुख-दोष दरिद्र-दली है।
स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नाम-प्रताप बली है॥८५॥

टिप्पणी—बिहाइ = छोड़कर। सुपंथ = सुमार्ग। राजसमाज = मंत्री आदि। दुनी = दुनिया को। दली है = पीड़ित कर दिया है।

भावार्थ—कलियुग के कारण लोगों ने वेदों और पुराणों में कहे हुए सुन्दर मार्ग को छोड़ दिया है; और कुमार्ग में चलकर करोड़ों कुचालें की हैं। समय भी विपरीत हो गया है। राजा अगर कृपालु भी हैं तो उनके दीवान, मंत्री आदि कर्मचारी बड़े कपटी है। वर्णविभाग और आश्रमधर्म सब मिट गये हैं। दुःख, दोष और दरिद्रता ने संसार को पीड़ित कर दिया है। इतना सब कुछ होते हुए भी इस कलिकाल में सांसारिक सुख-भोग के लिए और मोक्ष प्राप्त करने के लिए रामचंद्रजी के नाम का प्रताप ही बड़ा बली है।

न मिटै भवसंकट दुर्घट है, तप तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलि में न बिराग न ज्ञान कहूँ, सब लागत फोकट झूठ-जटो।
नट ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाठ ठटो।
'तुलसी' जु सदा सुख चाहिये तौ रसना निसिबासर राम रटो॥८६॥

टिप्पणी—दुर्घट = न कर सकने के योग्य। अटो = घूमो। फोकट = निस्सार, झूठ। जटो = झूठ से जड़ा हुआ, दिखावा मात्र, पाखंड। जनि = मत। कुपेटक = बुरे पिटारे से (जैसा बाजीगर रखते हैं)। चेटक = मंत्र टोटके इत्यादि। कौतुक ठाट जनि ठटो = कौतुक की सामग्री मत रचो, हँसी मत कराओ। रसना = जिह्वा से। निसिबासर = रात-दिन।

भावार्थ—तप करना कठिन है, अतः सांसारिक दुःख नहीं मिट सकते। अनेक जन्मों तक तीर्थों में भ्रमण करो पर कलियुग में ज्ञान और वैराग्य कहीं भी प्राप्त न होगा, सब निस्सार और पाखंडमय है। अतः नट की तरह अपने पेट रूपी बुरे पिटारे से मंत्रों द्वारा करोड़ों खेल-तमाशे मत करो। तुलसीदास कहते हैं कि जो सदा सुख चाहते हो तो जिह्वा से रात-दिन राम का नाम रटो।

दम दुर्गम, दान, दया, मख-कर्म, सुधर्म अधीन सबै धन को।
तप तीरथ साधन जोग बिराग सों होइ नहीं दृढ़ता तन को।
कलिकाल कराल में, राम कृपालु यहै अवलंब बड़ो मन को।
'तुलसी' सब संजम हीन सबै इक नाम अधार सदा जन को॥८७॥

टिप्पणी—दम = इंद्रियों को रोकना। दुर्गम = कठिन। मख = यज्ञ। तन को = शरीर को। अवलंब = सहारा।

भावार्थ—इस भयंकर कलिकाल में इंद्रियों को दमन करना कठिन है। दान, दया, यज्ञकर्म और सुधर्म सब ही धन के अधीन हैं। तपस्या, तीर्थ, साधना, योग और वैराग्य हो नहीं सकते; अतः शरीर दृढ़ नहीं होता। तुलसीदास कहते हैं कि इस कलिकाल में मन का सबसे बड़ा अवलंब यही है कि रामचन्द्रजी कृपालु हैं। सब ही सब संयमों से हीन हैं, अतः भक्तों को सदा एक आपके नाम का ही आधार है।

पाइ सुदेह बिमोह-नदी-तरनी न लही, करनी न कछू की।
रामकथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रहलाद न ध्रू की।
अब जोर जरा जरि गात गयो, मन मानि गलानि कुबानि न मूकी।
नीके कै ठीक दई 'तुलसी' अवलंब बड़ी उर आखर दू की॥८८॥

टिप्पणी—सुदेह = नरदेह। बिमोह-नदी-तरनी = अज्ञानतारूपी नदी को पार करने के लिए नाव। ध्रू = ध्रुव। जोर = जोरदार, भरपूर। जरा = बुढ़ापा। गात = (गात्र) शरीर। गलानि = (ग्लानि) घृणा। कुबानि = बुरा स्वभाव। मूकी = (सं० मुच् धातु से) छोड़ी। नीके कै = अच्छी तरह से। ठीक दई = निश्चय कर दिया है। आखर दू की = दो अक्षर अर्थात् 'र' और 'म' की।

भावार्थ—अगर नरदेह के समान सुन्दर देह पाकर अज्ञानता रूपी नदी को पार करने के लिए नाव न पाई, इस संसार में आकर कुछ अच्छा कर्तव्य भी न किया, रामचंद्रजी के चरित्र की कथा बनाकर औरों से न कही, प्रह्लाद और ध्रुव की कथा भी न सुनी; और अब भरपूर वृद्धावस्था से शरीर गल गया है तब भी मन में ग्लानि मानकर अपने बुरे स्वभाव को न छोड़ा, अर्थात, इनमें से कुछ भी न किया तो तुलसीदास कहते है कि मैंने अच्छी तरह से निश्चय कर लिया है कि ऐसे समय में दो अक्षर 'राम' नाम का ही मन में बड़ा भारी सहारा है।

राम बिहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कबि-कोकिल हू की।
नामहि तें गज की, गनिका की, अजामिल की चलि गै चल-चूकी।
नाम-प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पांडुबधू की।
ताको भलो अजहूँ 'तुलसी' जेहि प्रीति प्रतीति है आखर दू की ॥८९॥

टिप्पणी—बिहाय (सं०) = छोड़कर। **कबि-कोकिल** = वाल्मीकि। **चल-चूकी** = चंचलता और अपराध। **चलि गै** = चल गई, निभ गई। **कुसमाज** = दुष्ट दुर्योधन की सभा में। **पति** = प्रतिष्ठा, लाज। **बजाइ रही पति** = प्रतिष्ठा (रामनाम के प्रताप का डंका बजाकर बनी रही)। **पांडु-बधू** = द्रौपदी।

भावार्थ—शुद्ध 'राम' शब्द को जपना छोड़कर महामुनि वाल्मीकि ने 'मरा' शब्द को जपा, तब भी उनकी बिगड़ी हुई बात सुधर गई। नाम ही के प्रताप से हाथी की, वेश्या की और अजामिल की चंचलता और उनके सब अपराध निभ गये। रामनाम के प्रताप से दुष्ट दुर्योधन की बड़ी भारी सभा मे द्रौपदी की प्रतिष्ठा डंका बजाकर बनी रही। तुलसीदास कहते हैं कि जिसको दो अक्षर 'रा' और 'म' पर प्रीति और विश्वास है उसका अब भी भला है।

नाम अजामिल से खल तारन तारन बारन बार-बधू को।
नाम हरे प्रहलाद बिषाद, पिताभय साँसति-सागर सूको।
नाम सों प्रीति प्रतीति बिहीन गिल्यो कलिकाल कराल न चूको।
राखिहैं राम सो जासु हिये, 'तुलसी' हुलसै बल आखर दू को ॥९०॥

टिप्पणी—तारन = तारनेवाले। **बारन** = हाथी। **बार-बधू** = वेश्या। **बिषाद** = दुःख। **पिताभय साँसति-सागर सूको** = पिता के भय के कष्ट का समुद्र सूख गया, अर्थात् पिता द्वारा कष्ट पाने का भय दूर हो गया। **गिल्यो** = निगल गया। **न चूको** = चूका नहीं अर्थात् नहीं छोड़ा। **हुलसै** = उमगता है।

भावार्थ—रामनाम ने ही अजामिल के समान पापियों को तारा और हाथी

और वेश्या को भी तारा। नाम ही ने प्रह्लाद के दुःखों को दूर किया और नाम ही ने पिता के डर का संकटरूपी सागर सुखा दिया अर्थात् पिता के भय न छुआ दिया। जिसको रामनाम से प्रीति और प्रतीति न थी उसको कराल कलि-युग निगल ही गया, छोड़ा नहीं। तुलसीदास कहते हैं कि जिसके हृदय में उसी रामनाम के दो अक्षरों का बल उमगता है उसकी रामचंद्रजी रक्षा करेंगे।

जीव जहान में जायो जहाँ सो तहाँ 'तुलसी' तिहुँ दाह दहो है।
दोस न काहू, कियो अपनो, सपनेहु नहीं सुख लेस लहो है।
राम के नाम तें होउ सो होउ, न सोउ हिये, रसना ही कहो है।
कीयो न कछू, करिबे न कछू, कहिबे न कछू मरिबोई रहो है ॥९१॥

टिप्पणी—जहान=संसार। जायो=पैदा होता है। तिहुँ दाह=त्रिताप (दैहिक, दैविक, भौतिक)। **दहो है**=जलता है, पीड़ित होता है। **लेस**= थोड़ा भी। **लहो है**=पाता है। **सोउ**=रामनाम। रसना=जिह्वा।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि संसार में जहाँ कहीं प्राणी पैदा होता है वहाँ तीनों प्रकार के दुःखों से पीड़ित होता है। इसमें किसी का भी दोष नहीं है, सब अपने पूर्वकृत कर्मों का फल है जो स्वप्न में भी जरा सा सुख नहीं पाया। न मैंने आज तक कुछ किया, न अब मुझे कुछ करना है, न कुछ कहना है, केवल मरना ही रह गया है, अतः रामनाम के ही प्रताप से जो हो सो हो। उस रामनाम को भी मन से नहीं जपता हूँ, केवल मुख से ही कहता हूँ।

जीजे न ठाउँ, न आपन गाउँ, सुरालय हू को न संबल मेरे।
नाम रटा जमबास क्यों जाउँ, को आइ सकै जम-किंकर नेरे?
तुम्हरो सब भाँति, तुम्हारिय सौं, तुम ही, बलि हौं मोकों ठाहरु हेरे।
बैरख बाँह बसाइए पै, 'तुलसी' घरु ब्याध अजामिल खेरे ॥९२॥

टिप्पणी—**जीजे**=जीवित रहने को। **ठाउँ**=स्थान। **सुरालय हू को न संबल मेरे**=स्वर्ग में जाने के लिए भी मेरे पास संबल नहीं है, अर्थात् मैंने इतने पुण्य नहीं किये हैं जो मैं स्वर्ग जा सकूँ। **जमबास**=यमलोक। **जमकिंकर**=यमदूत। **नेरे**=निकट। **तुम्हारि सौं**=आपकी ही शपथ। **ठाहरु**= स्थान। **हेरे**=दिखलाई देता है। **बैरख**=(तु० बैरक) पताका, झंडा। प्राचीन काल में अगर किसी को घर, कुआँ, मंदिर आदि बनाने होते थे तो जिस भूमि में बनाना चाहता था उसी भूमि को राजा से माँग लेता था और उस भूमि में राजा की अनुमति सूचित करने को एक झंडा गाड़ दिया जाता था जिससे

कोई उसमें राजा की आज्ञा समझकर बाधा नहीं पहुँचा सकता था। **पै**—निश्चय। **तुलसी-घर**—तुलसीदास का घर। **खेरे**—घरों का एक छोटा समूह।

भावार्थ—जीवित रहने को न कोई स्थान है, न मेरा कोई अपना गाँव है, न मेरे पास स्वर्ग में जाने को ही संबल है (अर्थात् मैंने ऐसे सुकृत भी नहीं किये जो मेरे स्वर्ग जाने में सहायक हों)। यमलोक मैं जाऊँ क्यों कर? मैं राम का नाम रटता हूँ, कौन यमदूत मेरे निकट आ सकता है? तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचन्द्रजी, मुझे आपकी ही शपथ है, मैं सब प्रकार से आपका हूँ। मैं आपकी बलि जाऊँ, आप ही मुझको स्थान दिखलाई देते हैं। अपनी आज्ञासूचक पताका देकर अपनी शरण में बसाइए। तुलसीदास का घर व्याध और अजामिल के ही गाँव में हो (अर्थात् मैं उन्हीं के साथ आपके लोक में बसूँ)।

का कियो जोग अजामिल जू, गनिका कबहीं मति पेम पगाई?
ब्याध को साधुपनो कहिये, अपराध अगाधनि मैं ही जनाई।
करुनाकर की करुना करुना-हित, नाम-सुहेत जो देत दगाई।
काहे को खीझिय? रीझिय पै तुलसीहु सों है बलि सोई सगाई॥९३॥

टिप्पणी—**जोग**=योग। **पेम**=प्रेम। **मति पेम पगाई**=प्रेम में मन लगाया। **करुना-हित**=करुणा के लिए है। **नाम सुहेत जो देत दगाई**=नाम से प्रेम करने में जो धोखा करते थे, अर्थात् जो धोखे से भी राम का नाम नहीं लेते थे। **खीझिय**=अप्रसन्न होइए। **रीझिय**=प्रसन्न होइए। **तुलसीहु सों**=तुलसीदास से भी। **सगाई**=संबंध, प्रेम।

भावार्थ—अजामिल ने क्या योग किया था? वेश्या की बुद्धि क्या कभी आपके प्रेम में अनुरक्त हुई थी? व्याध (वाल्मीकि) की साधुता को क्या कहें, वह तो भारी अपराधों में ही जनाई पड़ती थी अर्थात् वह नरहत्या को ही अच्छी बात समझता था। दयालु रामचन्द्रजी की दया, दया करने के लिए है। (अर्थात् अकारण ही दयापात्र के ऊपर दया करना रामचन्द्रजी का काम है) उनका नाम जपकर जो उनसे अपने ऊपर करुणा कराना चाहता है वह तो उनसे दगा ही करता है अर्थात् उनको कलंकित करना चाहता है (कि रामजी नाम जपने पर दया करते हैं) तुलसीदास कहते है कि हे भगवान्, मैं आपकी बलैया लूँ, मुझसे भी वही नाता है। (अर्थात् पापी हूँ अतः अकारण ही मुझ पर दया कीजिए।) अतः आप मुझसे अप्रसन्न क्यों होते हैं? मेरे ऊपर तो आपको निश्चय अकारण कृपा करनी चाहिए (क्योंकि मैं यह दावा नहीं करता कि मैं आपका नाम जपता हूँ)।

जे मद-मार-बिकार भरे ते अचार-बिचार समीप न जाहीं।
है अभिमान तऊ मन में जन भाखिहै दूसर दीन न पाहीं ?
जो कछु बात बनाइ कहौं 'तुलसी' तुम तें तुम हौ उर माहीं।
जानकी-जीवन जानत हौ हम हैं तुम्हरे, तुममें सक नाहीं ॥९४॥

टिप्पणी—**मद-मार-बिकार भरे**=घमंड और कामदेव के विकार से भरे हुए, अर्थात् मदोन्मत्त और कामपीड़ित। **अचार-बिचार**=(मुहावरा) धार्मिक कृत्य, शौच, पूजा-पाठ आदि। **जानकी-जीवन**=जानकी के प्राणनाथ (रामचन्द्रजी)। **सक नाहीं**=इसमें कुछ संदेह नहीं।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जो मदोन्मत्त और कामपीड़ित हैं वे धार्मिक कृत्यों के पास भी नहीं फटकते। तब भी अपने मन में अभिमान रखते हैं कि यह जन दूसरे से दीन वचन न बोलेगा (तात्पर्य यह कि घमंड के मारे औरों को तुच्छ समझकर उनसे बोलने में भी अपनी हीनता समझते हैं) यदि मैं आपसे कुछ झूठ कहता हूँ तो आप मेरे हृदय में हैं ही (अतएव झूठ या सच आपसे छिपा नहीं रहेगा)। हे सीतापति रामचंद्रजी, आप जानते ही हैं कि मैं आपका ही हूँ और आपकी शरणागतपालकता में मुझे तनिक भी संदेह नहीं है।

दानव देव अहीस महीस महामुनि तापस सिद्ध समाजी।
जाचक, दानि दुतीय नहीं तुम ही सबकी सब राखत बाजी।
एते बड़े तुलसीस तऊ सबरी के दिए बिनु भूख न भाजी।
राम गरीबनेवाज ! भए हौ गरीब-नेवाज गरीब नेवाजी ॥९५॥

टिप्पणी—**अहीस**=शेषनाग आदि बड़े-बड़े सर्प। **महीस**=राजा लोग। **महामुनि**=बड़े-बड़े मुनि। **तापस**=तपस्वी। **समाजी**=सांप्रदायिक जन। **सब बाजी राखत**=सब कार्य निभाते हो, सब मनोरथ पूर्ण करते हो। **गरीब** (**अ०**)=दीन। **नेवाज** (**फ०**)=रक्षक। **गरीब-नेवाज**=दीनदयालु। **अलंकार**—विधि।

भावार्थ—हे रामचंद्रजी ! दानव, देवता, बड़े-बड़े सर्पों के राजा, राजा लोग, बड़े-बड़े मुनि-जन, तपस्वी, सिद्ध और अन्य सम्प्रदायों के लोगों समेत सारा संसार माँगनेवाला है। पर दानी आपके अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं, आपही सब याचकों के संपूर्ण मनोरथों को पूर्ण करते हैं। आप ऐसे महानुभाव हैं, तब भी शबरी के दिये हुए (जूठे) बेर खाये बिना आपकी भूख न मिटी। अतएव हे दीनों के रक्षक आप दीनों की रक्षा करके ही दीन-दयालु कहलाये हैं

मनहरण कवित्त

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी भाट
चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन बन अहन अखेटकी।
ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।
'तुलसी' बुझाइ एक राम घनश्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की ॥९६॥

टिप्पणी—किसबी = परिश्रमी, मजूर। भाट = गा-गाकर माँगनेवाले। चाकर = नौकर, सेवक। चार = हल्कारे। चेटकी = तमाशा करनेवाले, बाजीगर। पेट को = पेट भरने के लिए, आजीविका करने के लिए। अटत = भटकते हैं। अहन = दिन-दिन भर (सं० अहः = दिन)। अखेटकी = शिकारी। पेट ही को पचत = पेट भरने के लिए मरे मिटते हैं। बेटकी = बेटी। घनश्याम = काला बादल। ('घनश्याम' शब्द यहाँ पर साभिप्राय है। आग बुझाने के लिए रामचंद्रजी को 'घनश्याम' कहना अति ही उपयुक्त हुआ है।) बड़वागि = समुद्र की अग्नि। आगि पेट की = जठराग्नि। अलंकार—'घनश्याम' में परिकर अलंकार है।

भावार्थ—मजदूर, किसानों का समूह, बनिये, भिखारी, भाट, नौकर, चंचल नट, चोर, हल्कारे, बाजीगर आदि सब लोग पेट भरने के लिए ही पढ़ते हैं और (पेट भरने को ही) अपने मन से अनेक गुणों को गढ़ते हैं (अर्थात् अनेक उपाय करते हैं), (पेट ही के लिए) पहाड़ों पर चढ़ते हैं और (पेट ही के लिए) शिकारी लोग घने वनों में दिन भर भटकते फिरते हैं। भले-बुरे सब प्रकार के कर्म और धर्म-अधर्म करके पेट के लिए मर मिटते हैं। यहाँ तक कि पेट के लिए अपने बेटा-बेटी तक को बेच देते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि यह पेट की अग्नि (जठराग्नि) बड़वाग्नि से भी बड़ी है और केवल घने बादल रूपी रामचंद्रजी से ही बुझ सकती है।

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-विहीन लोग सीद्यमान, सोचबस,
कहैं एक एकन सों "कहाँ जाई, का करी?"
वेद हू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।

दारिद-दसानन दबाई दुनी दीनबंधु !
दुरित-दहन देखि 'तुलसी' हहा करी ॥९७॥

टिप्पणी—**सोच्यमान**=(सं०) दुःखित। **साँकरे**=संकट के अवसर पर। **दारिद-दसानन**=दारिद्र्य रूपी रावण ने। **दुनी**=दुनिया। **दबाई दुनी**=संसार को पीड़ित किया है। **दुरित-दहन**—पापों को जलाने वाला। **हहा करी**=विनती करता है। **अलंकार**—रूपक (दारिद-दसानन)।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलि जाऊँ अब ऐसा कुसमय आ गया है कि किसान की तो खेती नहीं लगती, भिखारी को भीख नहीं मिलती, बनिये के पास वाणिज्य का साधन नहीं और नौकर को कहीं नौकरी नहीं मिलती। इस प्रकार जीविका से हीन होने के कारण सब लोग दुःखित हैं और शोक के वश होकर एक दूसरे से कहते हैं कि कहाँ जायँ, क्या करें (कुछ नहीं सूझ पड़ता)। हे रामजी, वेद और पुराणों में भी कहा है और संसार में देखा भी जाता है कि संकट पड़ने पर आपने सब पर कृपा की है। दरिद्रता रूपी रावण ने संसार को पीड़ित किया है, अतः दीनबंधु रामचन्द्रजी, आपको पाप नाशक समझ कर मैं विनती करता हूँ।

कुल, करतूति, भूति, कीरति, सुरूप, गुन,
जोबन जरत जुर, परै न कछू कही।
राजकाज कुपथ, कुसाज, भोग रोग ही के,
बेद-बुध बिद्या पाइ बिबस बलकही।
गति तुलसीस की लखै न कोऊ जो करत,
पब्बइ तें छार, छारै पब्बइ पलक ही।
कासों कीजै रोष ? दोष दीजै काहि ? पाहि राम !
कियो कलिकाल कुलि खलल खलक ही ॥९८॥

टिप्पणी—**कुल**=वंश। **करतूति**=अच्छे काम, बड़े-बड़े काम। **भूति**=ऐश्वर्य। **जुर**=ज्वर। **बिबस**=बेबस होकर। **बलकही**=प्रलाप करते हैं। **तुलसीस**=श्री रामजी। **पब्बई**=पर्वत। **कुलि**=समस्त। **खलक** (अरबी)=संसार। **खलल**=बाधा, अस्त-व्यस्त दशा। **अलंकार**—रूपक (प्रथम दो चरणों में)।

भावार्थ—यौवन रूपी ज्वर में वंश-मर्यादा, पुरुषों के अच्छे काम, ऐश्वर्य, सुयश, सुन्दर रूप और गुण सब जल रहे हैं। (अर्थात् युवावस्था पाकर लोग अविचार से ये सब नष्ट कर डालते हैं।) कुछ कहा नहीं जाता कि क्या होगा। (यौवन रूपी ज्वर में) राज्याधिकार कुपथ्य है, उसका बुरा सामान भोग करना

रोग को बढ़ाता है। (ज्वर में कुपथ्य हुआ और रोग बढ़ा तब) वेदपाठी जन (विद्वान् लोग) विद्या पाकर विवश होकर अंडबंड बकने लगते हैं (तात्पर्य यह कि जवानी, अधिकार और विद्या पाकर लोगों को कलिकाल में त्रिदोष ही हो जाता है), (परंतु) रामजी की महिमा कोई नहीं जानता, जो पर्वत को छार और छार को एक पल मात्र में पर्वत बना देते हैं। अतः हे रामजी, मेरी रक्षा करो। मैं किससे क्रुद्ध हूँ और किसको दोष दूँ; कलियुग ने तो सारे संसार की दशा को अस्तव्यस्त कर डाला है।

बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत,
रूँधिबे को सोई सुरतरु काटियतु है।
गारी देत नीच हरिचंद हू दधीच हू को,
आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु है।
आप महा पातकी हँसत हरि हर हू को,
आपु है अभागी, भूरिभागी डाटियतु है।
कलि को कलुष, मन मलिन किये महत,
मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियतु है ॥९९॥

टिप्पणी—रूँधिबे को=रक्षार्थ बाग को घेरने के लिए। सुरतरु=कल्पवृक्ष। भूरिभागी=भाग्यवानों को। डाटियतु है=फटकारते हैं। कलुष=(सं०) पाप। मसक=मच्छर। पाँसुरी=हड्डी, पसली। पयोधि=समुद्र। अलंकार—छेकोक्ति।

भावार्थ—इस कलियुग में नीच लोग बबूल और बहेड़े के बागों को अच्छे प्रकार लगाते हैं और उस बाग की रक्षा करने के लिए, बारी लगाने के लिए कल्पवृक्ष को काटते हैं, (ऐसे निर्बुद्धि हैं) हरिश्चंद्र और दधीचि के समान दानियों को गाली देते हैं, पर आप इतने कंजूस हैं कि चना चबाकर भी हाथ चाटते हैं (कि कहीं कुछ लगा तो नहीं है)। आप तो बड़े पापी हैं पर संपूर्ण पापों को नाश करने में समर्थ विष्णु और शिवजी की भी हँसी करने लगते हैं। आप तो भाग्यहीन हैं पर बड़े-बड़े भाग्यवानों को भी ऐसी फटकार देते हैं मानो वे उनको कुछ समझते ही नहीं। कलियुग के पापों ने बड़े लोगों के मन को अति ही मलिन कर दिया है। पर वे मच्छर की पसलियों से समुद्र को पाटना चाहते हैं) अर्थात् बड़े पाप करने पर भी यह समझते हैं कि हम भवसागर पार हो जायँगे।)

सुनिये कराल कलिकाल भूमिपाल तुम!
जाहि घालो चाहिये कहौ धौं राखै ताहि को?

हौं तौ दीन दूबरो, बिगारो ढारो रावरो न,
मैं हूँ तैं हूँ ताहि को सकल जग जाहि को।
काम कोह लाइ कै देखाइयत आँखि मोहि,
एते मान अकस कीबे को आपु आहि को ?
साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो,
रामबोला नाम, हौं गुलाम राम-साहि को ॥१००॥

टिप्पणी—घालो चाहिये = नाश करना चाहते हो। दूबरो = (सं०) दुर्बल। बिगारो ढारो रावरो न = (मुहावरा) आपका कुछ भी बिगाड़ा, गिराया नहीं। देखाइत आँखि = डराते हो। एते मान = इतने परिमाण में, इतना। अकस = बिरोध। आहि (सं० असि) हो। सुजान = जानकार। स्वान = (सं० श्वान) अधम का कुक्कुर। पच्छ कियो = तरफदारी की।

भावार्थ—हे कराल कलिकाल! तुम आज राजा हो, पर मेरी बात सुनो। जिसको तुम मारना चाहते हो उसे कौन बचा सकता है? मैं तो दीन और निर्बल हूँ और मैंने आपका कुछ बिगाड़ा या गिराया नहीं। (अर्थात् मेरा आपका कुछ सरोकार नहीं है।) मैं भी और आप भी उसी ईश्वर के हैं जिसका सारा संसार है, फिर मुझसे इतना विरोध करनेवाले आप हैं कौन जो काम और क्रोध को मेरे पीछे लगाकर मुझे डराते हैं। मेरे स्वामी सुजान रामचन्द्रजी हैं, जिन्होंने कुत्ता का भी पक्ष किया था। मैं स्वामी रामचन्द्रजी का सेवक हूँ और मेरा नाम 'रामबोला' है।

मत्तगयंद सवैया

साँचो कहौं कलिकाल कराल मैं, ढारो बिगारो तिहारो कहा है ?
काम को, कोह को, लोभ को, मोह को, मोहि सों आनि प्रपंच रहा है।
हौं जगनायक लायक आजु, पै मेरियौ टेव कुटेव महा है।
जानकीनाथ बिना, 'तुलसी' जग दूसरे सों करिहौं न हहा है ॥१०१॥

टिप्पणी—प्रपंच = माया, जाल। मोहि सौं आनि प्रपंच रहा है = मेरे ही ऊपर जाल फैलाना है। जगनायक = संसार के स्वामी। लायक = बड़े योग्य (व्यंग्य से, बड़े खराब)। पै—पर। मेरियौ = मेरी भी। कटेव = बुरी बान, हठ। हहा करिहौं = विनती करूँगा।

भावार्थ—हे कराल कलियुग, मैं सच कहता हूँ। मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है जो तू मेरे ऊपर काम, क्रोध, लोभ, मोह का जाल फैलाता है। (अर्थात् मुझे काम, क्रोध, लोभ और मोह में फँसाता है। तुम संसार के स्वामी हो और

सब कुछ करने में समर्थ हो, पर मेरा भी यह बड़ा भारी हठ है कि मैं सीतापति रामचंद्रजी के अतिरिक्त किसी दूसरे से विनती नहीं करूँगा।

नोट—सत्संग में सुना है कि 'मेवा' नामक एक भक्त की स्त्री ने गोस्वामी जी की परीक्षा लेनी चाही थी। कई बार एकांत में उनके पास आई। पर गोस्वामीजी उसके चरणों पर गिर कर समझा-बुझाकर लौटा देते थे। उसी समय ये छंद (नं० १००,१०१, १०२) गोस्वामीजी ने कहे थे।

भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौं।
मोको न लेनो न देनो कछू, कलि! भूलि न रावरी ओर चितैहौं।
जानि कै जोर करौ, परिनाम, तुम्हैं पछितैहौ पै मैं न भितैहौं।
ब्राह्मन ज्यों उगिल्यौ उरगारि, हौं त्योंही तिहारे हिये न हितैहौं॥१०२॥

टिप्पणी—नाम द्वै = सीता-राम। नितै = प्रतिदिन। चितैहौं = देखूँगा। **जोर करौ** = जबर्दस्ती करो। **परिनाम** = अंतिम फल। पै = परन्तु। **भितैहौं** = डरूँगा। **उगिल्यौ** = वमन कर दिया। **उरगारि** = गरुड़। **हौं** = मैं। **त्योंही** = उसी प्रकार। **हिये** = (यहाँ पर) पेट में। **हितैहौं** = पचूँगा, हितकारक हूँगा।

भावार्थ—प्रतिदिन गंगाजी का जल पीता हूँ और सीता-राम ये दो नाम लेता हूँ। हे कलि! मेरा तुमसे लेना-देना कुछ नहीं है (अर्थात् मेरा तुमसे कुछ भी सरोकार नहीं), अतः मैं भूलकर भी कभी तुम्हारी ओर नहीं देखूँगा। अंतिम फल समझकर मुझ पर अत्याचार करो; अन्त में तुम्हीं पछताओगे, पर मैं तुमसे न डरूँगा। जैसे गरुड़ ने ब्राह्मण को न पचा सकने के कारण वमन कर दिया था वैसे ही मैं भी तुम्हारे पेट में न पचूँगा (और अन्त में तुमको मुझे छोड़ ही देना पड़ेगा)।

नोट—गरुड़ ने एक समय धोखे से एक ब्राह्मण को निगल लिया था। उससे उनके पेट में जलन पैदा हुई। अन्त में उन्हें उसे अपने पेट से निकाल देना पड़ा।

राजमराल के बालक पेलि कै, पालत लालत खूसर को।
सुचि सुन्दर सालि सकेलि सुबारि कै बीज बटोरत ऊसर को।
गुन-ज्ञान-गुमान भभेरि बड़ो, कलपद्रुम काटत मूसर को।
कलिकाल बिचार अचार हरो, नहिं सूझै कछू धमधूसर को॥१०३॥

टिप्पणी—राजमराल = राजहंस। पेलि कै = ठेलकर। **खूसर** = उलूक, खूसट। **सुचि** = (शुचि) पवित्र। **सालि** = (शालि) धान। **सकेलि** = (सं०) सकलन से बटोरकर। **सुबारि कै** = जलाकर। **ऊसर** = अनुत्पादक भूमि। **गुमान**

=घमंड भभरि=भ्रम। मराल को=मराल बनाने के लिए। विचार=धर्म कर्म का विचार। अचार=तप शौचादि का आचरण। घमघूसर=निर्बुद्धि।

भावार्थ—सुन्दर राजहंसों के बालकों को (अर्थात् विवेकियों को) ठेलकर अब के लोग उल्लू के बच्चों का लालन-पालन करते हैं, सुन्दर धानों को एकत्र करके उनको जलाकर ऊसर भूमि में खाने के लिए दाने बटोरते फिरते हैं। उन्हें गुण और ज्ञान का बड़ा घमंड है पर मूर्ख इतने बड़े हैं कि मराल बनाने के लिए कल्पवृक्ष का पेड़ काटते हैं। इस कलियुग ने उनका सब आचार-विचार हर लिया है, पर बेवकूफों को कुछ सूझता नहीं।

कीबे कहा पढ़िबे को कहा? फल बूझि न बेद को भेद बिचारै।
स्वारथ को परमारथ को कलि कामद राम को नाम बिसारै।
बाद बिबाद बिसाद बढ़ाइ कै छाती पराई औ आपनी जारै।
चारिहु को, छहु को, नव को, दस आठ को, पाठ कुकाठ ज्यों फारै॥१०४॥

टिप्पणी—**स्वारथ**=सांसारिक सुख। **परमारथ**=मोक्ष। **कामद**=सब कामनाओं को देनेवाला। **बिसारै**=भला देता है। **बिसाद**=दुःख। **चारिहु**=चारों बेद (ऋक्, यजुः, साम, अथर्व)। **छहु**=छः शास्त्र (मीमांसा, सांख्य, वैशेषिक, न्याय, योग, वेदांत)। **नव**=नौ व्याकरण (इंद्र, चंद्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, पिशालि, पाणिनि, अमर, जनेन्द्र, सरस्वती)। **दस-आठ**=अठारह पुराण। **पाठ कुकाठ ज्यों फारै**=इन सब का पढ़ना ऐसा निष्फल है जैसा कुकाठ का फाड़ना निष्फल होता है, क्योंकि कुकाठ सीधा नहीं फटता।

भावार्थ—क्या करना चाहिए, क्या पढ़ना चाहिए, यह समझ-बूझ कर वेद का भेद न विचारा तो नर-देह पाकर क्या किया? और इस प्रकार बिना विचारे पढ़ने का क्या फल रहा? यदि स्वार्थ और परमार्थ के देनेवाले, और कलियुग के सब मनोरथों के पूर्ण करनेवाले राम के नाम को भुला दिया, और व्यर्थ के वादविवाद से दुःख बढ़ाकर अपनी और दूसरों की भी छाती जलाई अर्थात् अपने को और दूसरों को भी चिंतित कर दिया तो चारों वेदों, छहों शास्त्रों, नवों व्याकरणों और अठारहों पुराणों का पढ़ना ऐसा ही निष्फल हुआ जैसा कुकाठ का फाड़ना।

आगम बेद पुरान बखानत मारग कोटिक जाहिं न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपु को ईस कहावत सिद्ध सयाने।
धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप जोग बिराग लै जीव पराने।
को करि सोच मरै, 'तुलसी' हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने॥१०५॥

टिप्पणी—आगम = शास्त्र । **लै ओड़ पराले** = प्राणों को लेकर अर्थात् डर के मारे भाग गये ।

भावार्थ—शास्त्र, वेद और पुराण वर्णन करते हैं कि मोक्ष-साधन के अनेक उपाय हैं परन्तु वे तो समझ में नहीं आते और जो मुनिगण हैं वे अपने ही को ईश्वर और सयाने सिद्ध कहलवाते हैं, परन्तु इस कलियुग ने सब धर्मों को ग्रस लिया है; जप, योग, विराग आदि तो डर के मारे लोप हो गये हैं। अतएव तुलसीदास कहते हैं कि (जब मोक्ष-साधन के उपायों की यह दशा है तो) व्यर्थ की चिंता में पड़कर अपने को क्यों कष्ट दें ? हम तो रामचन्द्रजी के हाथों बिक गये हैं, अर्थात् रामचन्द्रजी की शरण में हो गये हैं (हमें किसी की कुछ परवाह नहीं है) ।

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगारौं न सोऊ ।
'तुलसी' सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहौ कछु ओऊ ।
माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ ।।१०६।।

टिप्पणी—**धूत** = (धूर्त) छली । **अवधूत** = जोगी, भिखमंगा । **रजपूत** = क्षत्रिय (सं० राजपुत्र से) । **जोलहा** = तंतुवाय, कपड़ा बुननेवाली एक जाति-विशेष । **सरनाम** = प्रसिद्ध । **गुलाम** (अ०) = सेवक । **रुचै** = अच्छा लगे । **ओऊ** = वह भी । **मसीत** = मसजिद (देवालय) । **लैबे को एक न दैबे को दोऊ** = "लेना एक न देना दो"—(एक लोकोक्ति है) कुछ भी सरोकार नहीं ।

भावार्थ—कोई चाहे मुझे धूर्त कहे, चाहे भिखमंगा कहे, चाहे क्षत्रिय कहे, चाहे जोलहा कहे, मुझे कुछ परवाह नहीं । न मुझे किसी की लड़की से अपने लडके का ब्याह ही करना है (जो मैं पतित होने का डर करूँ), न मैं किसी जाति के साथ संपर्क रख के उसे बिगाड़ूँगा जिसको जो अच्छा लगे वह वही कहे । तुलसी तो रामचंद्रजी का प्रसिद्ध सेवक है । माँगकर खाना और निश्चिन्त होकर देवालय में सो रहना, यही मेरा काम है; और किसी से मेरा कुछ प्रयोजन नहीं (न मैं कलिकाल की 'गुलामी' लूँगा, न 'राम' नाम के दोनों अक्षर छोड़ूँगा)।

मनहरण कवित्त

मेरे जाति-पाँति, न चहौं काहू की जाति-पाँति,
मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम को ।

लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब,
भारी है भरोसो 'तुलसी' के एक नाम को।
अति ही अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग,
"साह ही को गोत गोत होत हैं गुलाम को।"
साधु कै असाधु कै भलो कै पोच, सोच कहा,
का कहू के द्वार परौं? जो हौं सो हौं राम को॥१०७॥

टिप्पणी—जाति-पाँति = (मुहावरा) जाति-भेद। पाँति = (सं०) पंक्ति। अयाने = अज्ञान। उपखानो = उपाख्यान को, कहावत को। साह = स्वामी। गोत = (सं०) गोत्र। पोच = नीच। का काहू के द्वार परौं? = क्या किसी की शरणा माँगता हूँ, अथवा क्या किसी के द्वार पर रक्षा पाने के लिए धरना दिये बैठा हूँ।

भावार्थ—मुझे जाति-भेद का घमंड नहीं, न मैं किसी की जाति-पाँति चाहता हूँ। न किसी से मेरा कोई कार्य सिद्ध होता है, न मैं ही किसी का कुछ प्रयोजन साध सकता हूँ। मेरा तो लोक और परलोक दोनों ही रामचन्द्रजी के हाथ हैं और मुझे तो केवल रामनाम का बड़ा भरोसा है। लोग अत्यंत मूर्ख हैं जो इस कहावत को नहीं समझते कि सेवक भी स्वामी के ही गोत्र का होता है। सज्जन हूँ अथवा दुर्जन, भला हूँ चाहे बुरा, मुझे इसकी परवाह नहीं। क्या मैं किसी के दरवाजे धरना दिये पड़ा हूँ। मैं जैसा कुछ भी हूँ, रामचन्द्रजी का हूँ, अन्य किसी से मुझे कोई सम्बन्ध नहीं।

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो,
कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।
साधु जानैं महासाधु, खल जानैं महा खल,
बानी झूठी साँची कोटि उठत हबूब है।
चहत न काहू सों, न कहत काहू की कछु,
सब की सहत उर अंतर न ऊब है।
'तुलसी' को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के,
राम की भगति भूमि, मेरी मति दूब है॥१०८॥

टिप्पणी—कुसाज = कुसंग, बुरी वस्तुओं का संग्रह। खरो खूब है = अत्यंत निष्कपट है। बानी = बातें। हबूब = (अ० हुबाब = पानी के बुलबुले) चर्चा। ऊब = घबराहट।

भावार्थ—कोई कहते हैं कि यह तुलसी बुरी वस्तुओं का संग्रह करता है, अतः बड़ा छली है, और कोई कहते हैं कि यह राम का सच्चा सेवक है। सज्जन तो मुझे (तुलसीदास को) बड़ा भारी सज्जन समझते हैं और दुष्ट लोग दुर्जन

ही समझते हैं। इस प्रकार करोड़ों भाँति की झूठी-सच्ची चर्चाएँ उठती रहती हैं। पर मैं न किसी से कुछ चाहता हूँ, न किसी के विषय में कुछ भला-बुरा ही करता हूँ। सबका कथन सुन लेता हूँ, चित्त में कोई घबराहट नहीं है। मेरा तो भला-बुरा सब श्रीरामचंद्रजी के ही हाथ है। रामचंद्रजी की भक्ति भूमि है जिसमें मेरी बुद्धि दूब होकर जमी है। (अर्थात् मेरी बुद्धि रामचंद्रजी की भक्ति में ही लगी हुई है।)

जागैं जोगी जंगम, जती जमाती ध्यान धरैं,
डरैं उर भारी लोभ मोह कोह काम के।
जागैं राजा राजकाज सेवक समाज साज,
सोचैं सुनि समाचार बड़े बैरी बाम के।
जागैं बुध बिद्याहित पंडित चकित चित,
जागैं लोभी लालच धरनि धन धाम के।
जागैं भोगी भोग ही, बियोगी रोगी सोगबस,
सोवै सुख 'तुलसी' भरोसे एक राम के ॥१०९॥

टिप्पणी—जोगी=योगी। जंगम=भ्रमण करनेवाले संन्यासी। जती= (यती) संयमी। जमाती=समूह में रहनेवाले संन्यासी। बाम=कुटिल। भोग ही=भोग करने के लिए।

भावार्थ—योगी, जंगम, यती, जमायती आदि संन्यासी जागते रहते हैं क्योंकि वे एक तो परमेश्वर के ध्यान में लगे रहते हैं और दूसरे लोभ, मोह, क्रोध और काम से हृदय में सदा डरते हैं (कहीं वे उनको अपने वश में न कर लें, इस भय से वे सदा सावधान रहते हैं)। राजा लोग अपने राजकाज की चिंता के कारण जागते रहते हैं और सेवकगण अपने काम-काज की देख-भाल के लिये जागते रहते हैं; वे अपने बड़े कुटिल शत्रु के समाचार सुनकर (उसके निवारण का उपाय) सोचते रहते हैं। बुद्धिमान् पंडित जन सावधान चित्त से विद्योपार्जन के लिए जागते रहते हैं। लोभी जन भूमि और धन के पाने के लालच के वश होकर जागते रहते हैं। सुख-भोग करनेवाले सुख भोग करने के लिए और विरही और रोगी शोक के कारण जागते रहते हैं, परंतु मैं (तुलसीदास) केवल रामचन्द्रजी के भरोसे सुख से सोता हूँ।

छप्पय छंद

राम मातु, पितु, बंधु, सुजन, गुरु पूज्य, परम हित।
साहेब सखा सहाय नेह नाते पुनीत चित।

देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति ।
जाति पाँति सब भाँति लागि रामहिं हमारि पति ।
परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ राम तें सकल फल ।
कह 'तुलसिदास' अब जब कबहुँ एक राम तें मोर भल ॥११०॥

टिप्पणी—**सुजन** = (सं० स्वजन) आत्मीय । **हित** = हितकारी, मित्र । **साहेब** = स्वामी । **नेह** = (सं०) स्नेह । **नाता** = संबंध । **पुनीत** = पवित्र । **कोस** = (कोष) खजाना । **गति** = पहुँच, शरण । **पति** = प्रतिष्ठा । **परमारथ** = मोक्ष । **स्वारथ** = लौकिक सुख ।

भावार्थ—मेरे माता, पिता, बंधु, आत्मीय, पूज्य गुरु, परम हितकारी, स्वामी, सखा, सहायक और जहाँ तक पवित्र मन से स्नेह के संबंध हैं सब कुछ रामचंद्रजी ही हैं । देश, कोष, वंश, कर्म, धर्म, धन, घर, पृथ्वी मेरी पहुँच और सब प्रकार से मेरी जाति-पाँति की प्रतिष्ठा रामचन्द्रजी ही तक है । स्वार्थ, परमार्थ, सुयश आदि सब फल राम-कृपा से ही सुलभ है । तुलसीदास कहते हैं कि इस समय या जब कभी हो, मेरा भला एक रामचन्द्रजी से ही हो सकता है ।

महाराज बलि जाउँ राम सेवक-सुखदायक ।
महाराज बलि जाउँ राम सुन्दर सब लायक ।
महाराज बलि जाउँ राम सब संकट-मोचन ।
महाराज बलि जाउँ राम राजीव-बिलोचन ।
बलि जाउँ राम करुनायतन प्रनतपाल पातकहरन ।
बलि जाउँ राम कलि-भय-बिकल 'तुलसिदास' राखिय सरन ॥१११॥

टिप्पणी—**राजीव** = कमल । **राजीव-बिलोचन** = कमल के समान आँखों वाले । **करुनायतन** = करुणा के घर । **प्रनतपाल** = प्रणत (शरणागत) के रक्षक ।

भावार्थ—हे सेवकों को सुख देने वाले महाराज रामचन्द्रजी मैं आपकी बलि जाऊँ । सुन्दर और सब प्रकार से समर्थ महाराज रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलि जाऊँ । हे सब संकटों से छुड़ानेवाले महाराज रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलि जाऊँ । हे कमलनेत्र महाराज रामचंद्रजी, मैं आपकी बलि जाऊँ । हे दयालु शरणागत-रक्षक, पापों को दूर करनेवाले रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलि जाऊँ । हे रामचन्द्रजी, मैं आपकी बलिहारी जाऊँ कलियुग के भय से व्याकुल इस तुलसीदास को शरण में लीजिए ।

जय ताड़का-सुबाहु-मथन, मारीच-मानहर ।
मुनि-मख रच्छन-दच्छ सिलातारन [illegible] ।

नृप-गन-बलमद सहित संभु-कोदंड-बिहंडन ।
जय कुठारधर-दर्पदलन, दिनकरकुल-मंडन ।
जय जनकनगर-आनंदप्रद, सुखसागर सुखमा-भवन ।
कह 'तुलसिदास' सुर-मुकुटमनि जय जय जय जानकि-रवन ॥११२॥

टिप्पणी—मानहर=घमंड चूर करने वाले । मख=(सं०) यज्ञ । दच्छ=(सं० दक्ष) चतुर । सिलातारन=शिलारूप में परिणत अहल्या का उद्धार करने वाले । करुनाकर=(करुणा+आकर=खदान) दयालु । कोदंड=धनुष । बिहंडन=(विखंडन) तोड़ने वाले । कुठारधर=परशुराम । मंडन=भूषण । सुखमा=(सं० सुषमा) अत्यंत शोभा । जानकि-रवन=(जानकी-रमण) रामचन्द्रजी । अलंकार—आशिषालंकार (केशव के मत से) ।

भावार्थ—ताड़का और सुबाहु को मारने वाले और मारीच का दर्प दूर करनेवाले रामचन्द्रजी की जय हो । विश्वामित्र मुनि के यज्ञ की रक्षा करने में चतुर, शिलारूप में परिणत अहल्या के उद्धार करने वाले, दयासागर रामचंद्रजी की जय हो । राजसमूह के घमंड सहित शिवधनुष को तोड़नेवाले (अर्थात् राजाओं के बल का घमंड चूर कर शिवधनुष को तोड़नेवाले), परशुराम के दर्प का नाश करनेवाले, सूर्य-कुल को भूषित करनेवाले रामचंद्रजी की जय हो । जनक-पुरी को आनंद देनेवाले, सुख के सागर और अत्यन्त सुन्दर रामचंद्रजी की जय हो । तुलसीदास कहते हैं कि देवताओं में श्रेष्ठ जानकीपति रामचंद्रजी की जय हो, जय हो, जय हो ।

जय जयंत-जयकर, अनंत, सज्जन-जन-रंजन ।
जय बिराध-बध-बिदुष, बिबुध-मुनिगन भय-भंजन ।
जय निसिचरी-बिरूप-करन रघुबंस-बिभूषन ।
सुभट चतुर्दस-सहस-दलन त्रिसिरा खरदूषन ।
जय दंडकबन-पावन-करन 'तुलसिदास' संसय-समन ।
जग बिदित जगतमनि जयति जय जय जय जय जानकि-रमन ॥११३॥

टिप्पणी—जयन्त=इंद्र का पुत्र । अनंत=जिसका अन्त न पाया जाय । सज्जन-जन-रंजन=सज्जनगणों को आनंदित करनेवाले । बिराध-बध-बिदुष=बिराध नामक राक्षस के वध करने में निपुण । बिबुध=(विशेष प्रकार से बुद्धिमान्) देवता । निसिचरी-बिरूप-करन=शूर्पनखा को (उसके नाक, कान काटकर) कुरूपा कर देनेवाले । सुभट=योद्धा । पावन=पवित्र । संसय-समन=(संशय-शमन) सन्देह को दूर करनेवाले । बिदित=प्रख्यात, प्रकट । जगत-मनि=संसार में सबसे श्रेष्ठ ।

भावार्थ—जयंत पर जय प्राप्त करनेवाले, अनंत और सज्जनगणों को

आनन्दित करनेवाले रामचंद्रजी की जय हो। विराध को मारने में पंडित और देवता और मुनिगण का भय दूर करनेवाले रामचंद्रजी की जय हो। शूर्पनखा को कुरूप करनेवाले रघुवंश के विभूषण-स्वरूप रामचन्द्रजी की जय हो। त्रिशिरा, खर, दूषण के चौदह सहस्र योद्धाओं को मारनेवाले रामचन्द्रजी की जय हो। दंडकारण्य को पवित्र करनेवाले और तुलसीदास के सब संदेहों को दूर करनेवाले रामचन्द्रजी की जय हो। संसार में प्रख्यात जगत्मणि सीतापति रामचन्द्रजी की जय हो, जय हो, जय हो, जय हो।

जय मायामृग-मथन गीध-सबरी-उद्धारन।
जय कबंध-सूदन बिसाल तरु-ताल-बिदारन।
दवन बालि बलसालि, थपन सुग्रीव, संत-हित।
कपि-कराल-भट-भालु कटक पालन कृपालु चित।
जय सियबियोग-दुखहेतु-कृत-सेतु-बंध बारिधि-दमन।
दससीस-बिभीषन अभयप्रद जय जय जय जानकि-रमन॥११४॥

टिप्पणी—**मायामृग-मथन** = माया से हरिण बने हुए मारीच को मारने वाले। **कबंध-सूदन** = कबंध नामक राक्षस को मारनेवाले। **तरुताल** = सात ताल के वृक्ष। **दवन** = (दमन) मारनेवाले। **थपन** = स्थापित करनेवाले। **संत-हित** = सज्जनों के हितकर्ता। **कटक** = सेना। **सियबियोग-दुःखहेतु-कृत-सेतु-बंध** = सीता के वियोग के दुःख के कारण किया है सेतु-बंध जिसने ऐसे रामचंद्रजी (बहुव्रीहि समास)। **बारिधि** = समुद्र। **दससीस-बिभीषन अभय-प्रद** = रावण से भयभीत विभीषण को अभय देनेवाले।

भावार्थ—कपट के मृग को मारनेवाले, गृद्धराज जटायु और शवरी का उद्धार करनेवाले रामचंद्रजी की जय हो। कबंध नामक राक्षस को मारनेवाले और बड़े भारी (सात) ताल के वृक्षों को (एक बाण से) गिरा देनेवाले रामचंद्रजी की जय हो। बली बालि को मारनेवाले, सुग्रीव को राजगद्दी पर स्थापित करनेवाले, सज्जनों के हितकर्ता, वानर और भयंकर योद्धा-भालुओं की सेना के रक्षक, दयालु रामचंद्रजी की जय हो। सीता के वियोग के दुःख के कारण सेतु बँधानेवाले और समुद्र का दमन करनेवाले रामचन्द्रजी की जय हो। रावण द्वारा भयभीत विभीषण को अभय देनेवाले जानकीपति रामचन्द्रजी की जय हो, जय हो, जय हो।

कनक-कुधर केदार, बीज सुंदर सुरमनि बर।
सींचि कामधुक-धेनु सुधामय पय बिसुद्धतर।
तीरथपति अंकुर-सरूप, जच्छेस रच्छ तेहि।
मरकत-मय साखा-सुपत्र, मंजरि सुलच्छि जेहि।

कैवल्य सकल फल कल्पतरु सुभ सुभाय सब सुख बरिस।
कह 'तुलसिदास' रघुबंसमनि तौ कि होहिं तुव कर सरिस॥११५॥

टिप्पणी—कनक-कुधर-केदार = सुमेरु पर्वत रूपी क्यारी में। कनक = सोना। कुधर = (कु = पृथ्वी + धर) पर्वत। केदार = क्यारी। सुरमनिबर = चिंतामणि। कामधुक = कामनाओं को दुहनेवाली अर्थात् मनोरथों को पूर्ण करनेवाली। धेनु = गाय। कामधुक-धेनु = कामधेनु नाम की देवताओं की एक गाय। सुधामय = अमृतमय। पय = दुग्ध। बिसुद्धतर = अति शुद्ध। तीरथ-पति = प्रयागराज। जच्छेस = यक्षों के स्वामी, कुबेर। रच्छ = रक्षा करते हों। मरकत = पन्ना। मंजरि = बौर। लच्छि = लक्ष्मी। कैवल्य (सं०) = मोक्ष। बरिस = बरसावें। सरिस = (सं० सदृश) समान। अलंकार—समस्त वस्तुविषयक सांग रूपक से पुष्ट अतिशयोक्ति।

भावार्थ—सुमेरु पर्वत रूपी क्यारी में चिंतामणि रूपी श्रेष्ठ बीज बोया जाय, उसको कामधेनु के अत्यन्त शुद्ध अमृतमय दूध से सींचे, तीर्थराज प्रयाग उसके अंकुर स्वरूप उत्पन्न हों, कुबेर उसकी रखवाली करते हों, पन्ना रत्न ही जिसकी शाखा और पत्र हों और लक्ष्मी ही जिसकी सुन्दर मंजरी हो, ऐसा सुन्दर स्वभाव वाला, सब सुखों को बरसाने वाला, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि सब फलों का देनेवाला जब कोई कल्पवृक्ष हो तब भी (तुलसीदास कहते हैं कि) हे रामचन्द्रजी, क्या वह दान देने में आपके हाथ की बराबरी कर सकता है (अर्थात् नहीं ?)

नोट—अत्यन्त ऊँची कल्पना है। इसी प्रकार की एक दूसरी कल्पना सीताजी के सौंदर्य के विषय में रामायण के बालकांड में है जिसका आरंभ—"जो छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई" से होता है।

जाय सो सुभट समर्थ पाइ रन रारि न मंडै।
जाय सो जती कहाय बिषय-बासना न छंडै।
जाय धनिक बिनु दान, जाय निर्धन बिनु धर्महि।
जाय सो पंडित पढ़ि पुरान जो रत न सुकर्महि।
सुत जाय मातु-पितु-भक्ति बिनु, तिय सो जाय जेहि पति न हित।
सब जाय दास 'तुलसी' कहै जौ न रामपद नेह नित॥११६॥

टिप्पणी—जाय = व्यर्थ। पाइ रन रारि न मंडै = युद्ध करने का सु-अवसर पाकर भी युद्ध न करे। जती = संयमी। बिषय-बासना = सांसारिक वस्तुओं के सुख-भोग की इच्छा। छंडै = छोड़े। रत = अनुरक्त, लगा हुआ। पति न हित = पति प्यारा न हो।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि वह शक्तिमान् योद्धा व्यर्थ है जो युद्ध करने का सुअवसर पाकर युद्ध न करे। वह संयमी व्यर्थ कहाता है जो सांसारिक विषय-भोग से विरक्त न हो। दान न देनेवाला धनवान व्यर्थ है। धर्महीन निर्धन व्यर्थ है। वह पंडित भी व्यर्थ है जो पुराणों का अध्ययन करने पर भी पुण्यकर्म में नहीं लगता। माता-पिता की भक्ति से रहित पुत्र व्यर्थ है। वह स्त्री भी व्यर्थ है जिसको पति से प्रेम न हो। परन्तु यदि रामचन्द्रजी के चरणों से नित्य स्नेह नहीं है तो उपर्युक्त सब ही व्यक्ति व्यर्थ हैं।

को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहिं कीन्हों ?
को न लोभ दृढ़ फंद बाँधि त्रासन कर दीन्हों ?
कौन हृदय नहिं लाग कठिन अति नारिनयन-सर ?
लोचनजुत नहिं अंध भयो श्री पाइ कौन नर ?
सुर-नागलोक-महिमंडलहु को जो मोह कीन्हों जय न ?
कह 'तुलसिदास' सो ऊबरै जेहि राख राम राजिवनयन ॥११७॥

टिप्पणी—निरदह्यो = जलाया, संतप्त किया। त्रासन = भयभीत। कीन = किसके। नारिनयन-सर = स्त्रियों के कटाक्ष। लोचनजुत = लोचनयुक्त होते हुए भी। श्री = लक्ष्मी, धन, संपत्ति। नागलोक = पाताल। ऊबरै = छूट जाता है, बच जाता है। अलंकार—काकुवक्रोक्ति।

भावार्थ—ऐसा कौन है जिसको क्रोध ने नहीं जलाया? काम ने किसको वश में नहीं किया? लोभ ने दृढ़ फंदे में बाँधकर किसको भयभीत नहीं किया? स्त्रियों के तीव्र कटाक्ष ने किसके हृदय में कुछ असर नहीं किये? धन-वैभव पाकर आँख होते हुए भी कौन मनुष्य अंधा नहीं हुआ? स्वर्ग, पाताल और पृथ्वीमंडल में ऐसा कौन है जिसको मोह ने न जीता हो? (तात्पर्य यह कि ऐसा कोई भी नहीं जो काम, क्रोध, लोभ, मोह और स्त्री के वश में न हुआ हो)। तुलसीदास कहते हैं कि इनसे तो वही बच सकता है जिसको कमलनेत्र रामचन्द्रजी अपनी शरण में ले लें।

सवैया

भौंह-कमान-सँधान सुठान जे नारि-बिलोकनि-बान तें बाँचे।
कोप कृसानु गुमान अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे।
लोभ सबै नट के बस ह्वै कपि ज्यों जग में बहु नाच न नाचे।
नीके हैं साधु सबै 'तुलसी' पै तेई रघुबीर के सेवक साँचे ॥११८॥

टिप्पणी—भौंह-कमान-संधान सुठान = भौंह रूपी धनुष में अच्छे प्रकार किया गया है संधान जिनका। नारि-बिलोकनि बान = स्त्रियों के कटाक्ष रूपी बाण। कोप-कृसानु = कोप रूपी अग्नि। गुमान-अवाँ = अहंकार रूपी भट्ठी में। आँच न आँचे = गरमी से संतप्त नहीं हुए।

भावार्थ—जो साधु स्त्रियों के भौंह रूपी धनुष में अच्छे प्रकार संधान, किये हुए कटाक्ष रूपी बाणों से बच गये हों (अर्थात् उनके लक्ष्य न हुए हों), अहंकार रूपी भट्ठी में क्रोध रूपी अग्नि की आँच से जिनके मन घड़े की तरह न तपे हों, लोभरूपी नट के वश में होकर जो संसार में अनेक प्रकार नाच न नाचे हों (अर्थात् लोभ के कारण जिन्होंने अनेक भाँति के कृत्य न किये हों), तुलसीदास कहते हैं कि वे ही साधु रामचन्द्रजी के सच्चे सेवक हैं; यों तो सब साधु अच्छे कहे ही जाते हैं।

मनहरण कवित्त

भेष सुबनाइ, सुचि बचन कहैं चुवाइ,
जाइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की।
कोटिक उपाय करि लालि पालियत देह,
मुख कहियत गति राम ही के नाम की।
प्रगटै उपासना, दुरावै दुरबासनाहि,
मानस निवास-भूमि लोभ, मोह काम की।
राग रोष ईरषा कपट कुटिलाई भरे,
'तुलसी' से भगत भगति चहैं राम की ! ॥११२॥

टिप्पणी—भेष सुबनाइ = सुन्दर साधुओं का-सा वेश बनाकर। चुवाइ = शांत और मधुर करके। गति = पहुँच, शरण। उपासना = पूजा-पाठ, भक्ति। दुरावै = छिपाता है। दुरबासनाहि = दुर्वासना को, बुरी इच्छाओं को। मानस = मन। निवास-भूमि = रहने का स्थान। राग = सांसारिक विषयों से प्रेम। रोष = क्रोध। ईरषा = (सं० ईर्ष्या) पराई उन्नति देखकर जलना।

भावार्थ—मन से पृथ्वी, धन और घर की चिंता नहीं छूटती, पर सुन्दर साधुओं का वेश बनाकर मुख से शांत और मीठे वचन बनाकर कहते हैं। करोड़ों प्रकार के भले-बुरे उपायों से अपनी देह का लालन-पालन करते हैं, पर मुख से कहते हैं कि हम तो राम-नाम की शरण हैं। उपासना को तो प्रगट करते हैं, पर अपने मन में कुवासनाओं को छिपाये रखते हैं। मन तो लोभ, मोह और काम का निवासस्थान ही है। इस प्रकार के राग-रोष ईर्ष्या कपट

और कुटिलता से भरे तुलसीदास के समान भक्त भी राम की भक्ति चाहते हैं। क्या ही आश्चर्य की बात है !

'काल्हि ही तरुन तन' 'काल्हि ही धरनि धन',
'काल्हि ही जितौंगो रन', कहत कुचालि है ।
'काल्हि ही साधौंगो काज,' 'काल्हि ही राजा समाज,'
मसक ह्वै कहै 'भार मेरे मेरु हालिहै' ।
'तुलसी' यही कुभाँति घने घर घालि आई,
घने घर घालति है, घने घर घालिहै ।
देखत सुनत समुझत हू न सूझै सोई,
कबहूँ कह्यो न 'कालहू को काल काल्हि है' ॥१२०॥

टिप्पणी—साधौंगो = सिद्ध करूँगा। मसक = मच्छर। हालिहै = हिल जायगा। यही कुभाँति = इसी प्रकार की दुर्बुद्धि। घने = बहुत, असंख्य। घालना = नष्ट करना। सूझै न = समझ में नहीं आता।

भावार्थ—कुचाली लोग कहते हैं कि कल ही हमारे शरीर में यौवन आएगा, कल ही पृथ्वी और धन पैदा करेंगे, कल ही युद्ध में जय प्राप्त करेंगे, कल ही अपने सब कार्य साधन कर लेंगे और कल ही राज-समाज जोड़ लेंगे (अर्थात् राजा हो जायेंगे)। मच्छर के समान छोटे होकर भी कहते है कि हमारे बोझ से सुमेरु पर्वत भी हिल जायगा। तुलसीदास कहते हैं कि यही दुर्बुद्धि बुरी तरह से असंख्य घरों को नष्ट कर आई, अनेक घर उजाड़ रही है, और अनेक घरों को उजाड़ेगी। ऐसा सब देखते-सुनते और समझते हुए भी किसी की बुद्धि में यह न सूझा और न किसी ने कभी यह कहा कि 'कल ही काल (मौत) का भी काल है।' (कौन निश्चय है कि 'कल' आवेगा ही, सम्भव है आज ही अंतिम दिवस हो।)

भयो न तिकाल तिहुँ लोक 'तुलसी' सो मंद,
निंदै सब साधु सुनि मानौं न सकोचु हौं।
जानत न जोग, हिय हानि मानैं जानकीस,
काहे को परेखो पातकी प्रपंची पोचु हौं।
पेट भरिबे के काज महाराज को कहायो
महाराज हू कह्यो है, 'प्रनत बिमोचु हौं'।
निज अघ-जाल, कलिकाल की करालता,
बिलोकि होत ब्याकुल, करत सोई सोचु हौं ॥१२१॥

टिप्पणी—तिकाल = त्रिकाल (भूत, भविष्यत्- वर्तमान तीनों कालों में)।

परेखो = उलाहना। पातकी = पापी। प्रपंची = छली। पोचु = नीच। प्रनत = भक्त, शरणागत। प्रनत-बिमोचु = भक्तों को संकट से छुड़ानेवाला। अघ-आल = पापों का समूह।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मेरे समान तीनों कालों में (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों लोकों में (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल) कोई बुरा नहीं हुआ; इसलिए सब सज्जन लोग मेरी निंदा करते हैं पर मैं इस पर कुछ भी सकोच नहीं मानता। रामजी मुझे अपने योग्य नहीं मानते, इसलिए मुझे अपनाने में अपनी हानि (बदनामी) समझते हैं। अतः जानकीश, मैं आपको क्योंकर उलाहना दूँ। मैं वास्तव में पापी, छली और नीच हूँ। मैं अपना पेट भरने के लिए आपका कहलाता हूँ; और आपने भी कहा है कि "मैं शरणागतों को संकट से बचानेवाला हूँ।" परंतु मैं अपने असंख्य पाप, और उस पर कलियुग की कड़ाई देखकर व्याकुल होता हूँ। इसी कारण मुझे चिंता है।

धरम के सेतु जगमंगल के हेतु भूमि,
भार हरिबे को अवतार लियो नर को।
नीति औ प्रतीति-प्रीति-पाल प्रभु चालि मान,
लोक बेद राखिबे को पन रघुबर को।
बानर बिभीषन की ओर के कनावड़े हैं,
सो प्रसंग सुने अंग जरै अनुचर को।
राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजै, बलि,
'तुलसी' तिहारो घरजायक है घर को॥१२२॥

टिप्पणी—धरम के सेतु = धर्म की मर्यादा। हेतु = कारण। पन = प्रण। कनावड़े = एहसानमंद, ऋणी। प्रसंग = कथा, वार्ता। अनुचर = सेवक (तुलसीदास)। घरजायक = घरजाया, गुलाम।

भावार्थ—श्रीरामचन्द्रजी धर्म की मर्यादा हैं। उन्होंने संसार का मंगल करने और पृथ्वी का भार हरण करने के लिए मनुष्य का अवतार लिया है। प्रभु की चाल है कि विश्वास और प्रीति का पालन करते हैं। लोक और वेदों की मानरक्षा करना रामचन्द्रजी का प्रण है। तुलसीदास कहते हैं कि हे रामचन्द्रजी, आप बिभीषण और वानरों के ऋणी हैं, यह कथा सुनकर मुझ सेवक को ईर्ष्या होती है (कि मेरे भी ऋणी क्यों न हुए)। अतएव, मैं आपकी

बलैया लूँ, अपने प्रण की रक्षा करके जो हो सके वही कीजिए। मैं तो आपके घर का घरजाया सेवक हूँ।

> नाम महाराज के निबाहु नीको कीजै उर,
> सबही सोहात, मैं न लोगनि सोहात हौं।
> कीजै राम बार यहि मेरी ओर चखकोर
> ताहि लगि रंक ज्यों सनेह को ललात हौं।
> 'तुलसी' बिलोकि कलिकाल की करालता,
> कृपालु को सुभाव समुझत सकुचात हौं।
> लोक एक भाँति को, तिलोकनाथ लोकबस,
> आपनो न सोच, स्वामी-सोच ही सुखात हौं ॥१२३॥

टिप्पणी—नाम महाराज के निबाहु नीको कीजै उर=उर (में) महाराज के नाम के संग नीको निबाहु कीजै। बार यहि=इस बार। चखकोर कीजै=सुदृष्टि फेरिए। ताहि लगि=उस सुदृष्टि के लिए। रंक ज्यों=दरिद्र की तरह। सनेह=घी। ललात हौं=इच्छुक रहता हूँ। लोक एक भाँति को=लोग बहुत बुरे हो गये हैं। तिलोकनाथ लोकबस=क्या त्रिलोकीनाथ भी लोगों की तरह हो गये?

भावार्थ—रामचन्द्रजी के नाम के साथ अच्छे प्रकार निर्वाह करनेवाला (अर्थात् रामनाम जपनेवाला) सब को मन से अच्छा लगता है; पर मैं लोगों को अच्छा नहीं लगता, अतः हे रामचन्द्रजी, इस बार मेरी ओर अपनी शुभ दृष्टि फेरिए। आपकी उस सुदृष्टि के लिए मैं उसी प्रकार लालायित रहता हूँ जैसे दरिद्री घृत के लिए (अच्छे पकवानों का) इच्छुक रहता है। तुलसीदास कहते हैं कि कलियुग की इस करालता को देखकर (अर्थात् घोर कलियुग देखकर) और कृपालु रामचंद्रजी का स्वभाव समझकर (अर्थात् रामचन्द्रजी पापियों का उद्धार करनेवाले हैं यह समझकर) मैं सकुचता हूँ (कि रामचन्द्रजी किस-किस का उद्धार करेंगे और उनमें मेरा नंबर कैसे आवेगा?) संसार के लोग तो बहुत बुरे हो गये हैं, पर क्या त्रिलोकीनाथ भी वैसे ही हो गये हैं? हे स्वामी, मुझे अपने बुरे होने का सोच नहीं, मैं तो आपके सोच से सूखा जाता हूँ (कि लोग यह कहने लगेंगे कि रामजी भी कलियुग में अपना स्वभाव छोड़कर ऐसे करुणारहित हो गये कि अपने भक्त तुलसी को न तार सके।)

नोट—निहायत उत्तम व्यंग्य है।

तौ लौं लोभ-लोलुप ललात लालची लबार,
बार बार लालच धरनि धन धाम को।
तब लौं बियोग-रोग सोग, भोग जातना को
जुग सम लगत जीवन जाम जाम को।
तौ लौं दुख-दारिद दहत अति नित्त तनु,
'तुलसी' है किंकर बिमोह कोह काम को।
सब दुख आपने, निरापने सकल सुख,
जौ लौं जग भयो न बजाइ राजा राम को ॥१२४॥

टिप्पणी—तौ लौं = तब तक। लोलुप = इन्द्रिय-सुखों का लालची। लबार = झूठा। जातना = (सं० यातना) कष्ट। जुग = युग। जाम = (याम) प्रहर। तनु = शरीर। किंकर = सेवक। निरापने = (निर + आपने) अपने नहीं अर्थात् पराये। जन = भक्त। बजाइ = डंके की चोट, खुल्लमखुल्ला। जौ लौं = जब तक।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जब तक मनुष्य खुल्लमखुल्ला राजा रामचन्द्रजी का भक्त नहीं हो जाता तभी तक वह इन्द्रिय-सुख-लोलुप, टुकड़े-टुकड़े को लालायित रहनेवाला, धन-संपत्ति का लालची, बार-बार झूठ बोलने वाला और पृथ्वी, धन तथा घर का लालची रहता है। तभी तक बियोग और रोग का शोक रहता है, तभी तक कष्ट भोगने पड़ते हैं, और पहर-पहर का जीवन युग के समान प्रतीत होता है, तभी तक दुःख और दारिद्रय नित्य ही शरीर को अतिशय कष्ट देते हैं, तभी तक वह लोभ, मोह, काम और क्रोध का दास रहता है जिससे सब दुःख तो अपने हो जाते हैं और सब सुख पराये हो जाते हैं।

अन्वय—तौ लौं लोभ, मोह, कोह, काम को किंकर है। प्रथम पाद में 'लोभ' का समन्वय तृतीय पाद के उत्तरार्द्ध से करना ठीक है।

तब लौं मलीन हीन दीन, सुख सपने न,
जहाँ तहाँ दुखी जन भाजन कलेस को।
तब लौं उबेने पायँ फिरत पेटै खलाय,
बाए मुँह सहत पराभौ देस देस को।
तब लौं दयावनो, दुसह दुख दारिद को,
साथरी को सोइबो, ओढ़िबो झूने खेस को।
जब लौं न भजै जीह जानकीजीवन राम,
राजन को राज सो तौ साहेब महेस को ॥१२५॥

टिप्पणी—उबेने पायँ नंगे पाँव पेटै खलाय—लोगों को अपना

खाली पेट दिखाकर । बाए मुँह = मुँह खोलकर । पराभौ = (सं० पराभव) तिरस्कार, अपमान । दयावनो = दया का पात्र । साथरी = चटाई । झूने = झीने, झाँझरे, बारीक । खेस = पुरानी रुई के पहले का बना हुआ खुरखुरा कपड़ा । जीह = जिह्वा । साहेब = स्वामी ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि तभी तक मनुष्य पापी, दीन, हीन रहता है, (तभी तक) स्वप्न में भी उसे सुख नहीं मिलता, (तभी तक) वह दुखी मनुष्य जहाँ कहीं भी जाता है क्लेश का पात्र होता है, तभी तक वह नंगे पाँव, भूखे पेट और मुँह खोले हुए भटकता हुआ जगह-जगह अपमान सहता है, तभी तक वह दयापात्र है, (तभी तक) उसे दरिद्रता का असह्य दुःख है, (तभी तक) उसे चटाई पर सोना और बारीक खुरखुरे कपड़े को ओढ़ना पड़ता है, जब तक उस मनुष्य की जीभ जानकीपति रामचन्द्रजी को न भजे, जो राजाओं के भी राजा और महादेवजी तक के स्वामी हैं।

ईसन के ईस, महाराजन के महाराज,
देवन के देव, देव ! प्रान हूँ के प्रान हौ ।
काल हू के काल, महाभूतन के महाभूत,
कर्म हूँ के करम, निदान के निदान हौ ।
निगम को अगम, सुगम 'तुलसी' हू से को,
एते मान सीलसिंधु करुनानिधान हौ ।
महिमा अपार काहू बोल को न वारापार,
बड़ी साहबी में नाथ बड़े सावधान हौ ॥१२६॥

टिप्पणी—**महाभूत** = पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पंच महाभूत हैं । **महाभूतन के महाभूत** = पंच महाभूतों से सम्पूर्ण सृष्टि बनती है उन पंच-महाभूतों के भी आदि कारण । **निदान** = कारण । **निगम** = वेद । **अगम** = जहाँ कोई न जा सके, जिसकी थाह कोई न ले सके । **एते मान** = इतने । **बोल** = वचन । **अलंकार**—अत्युक्ति ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि देव रामचन्द्रजी, आप समर्थों के भी स्वामी हैं, महाराजाओं के भी महाराजा हैं, देवताओं के भी देवता हैं, प्राणों के भी प्राण हैं, काल के भी काल हैं, पंच महाभूतों के भी आदि कारण हैं, कर्म के भी कर्म हैं और कारण के भी कारण हैं । आप वेद को भी अगम हैं और मुझ ऐसों को (भक्तों को) सुलभ हैं । आपकी महिमा अपार है, आपके किसी वचन का वारापार नहीं (अर्थात् आपकी आज्ञा अटल है) । हे स्वामी, आप अपने इस बड़े प्रभुत्व को निबाहने में बड़े सावधान हैं ।

मत्तगयंद सवैया

> आरत-पालु कृपालु जो राम, जेही सुमिरे तेहि को तहँ ठाढ़े।
> नाम प्रताप महा महिमा, अँकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढ़े।
> सेवक एक तें एक अनेक भए 'तुलसी', तिहुँ ताप न डाढ़े।
> प्रेम बदौं प्रहलादहि को जिन, पाहन तें परमेसुर काढ़े ॥१२७॥

टिप्पणी—**आरत-पालु** = दुखियों के रक्षक। **जेहि** = जिसने भी। **सुमिरे** = स्मरण किया। **अँकरे** = (सं० अक्रय) महँगा। **खोटेउ** = निकम्मे भी। **तिहुँ ताप** = दैहिक, दैविक, भौतिक तीन प्रकार के ताप। **डाढ़े** = दग्ध, जले हुए। **बदौं** = मानता हूँ। **पाहन** = (सं० पाषाण) पत्थर। **काढ़े** = निकाले, प्रकट करा दिया।

भावार्थ—तुलसीदास कहते हैं कि रामचन्द्रजी कृपालु और दुखियों के रक्षक हैं। जिसने भी (जिस स्थान पर) उनका स्मरण किया, उनके लिए उसी स्थान पर उपस्थित हो जाते हैं। रामनाम के प्रताप की महिमा बड़ी भारी है। इसने खोटों को भी बहुमूल्य और छोटों को भी बड़ा कर दिया। यद्यपि सेवक तो एक-से-एक बढ़कर अनेक हुए जो तीनों तापों से दग्ध नहीं हुए, पर मैं तो प्रह्लाद का ही प्रेम श्लाघनीय मानता हूँ जिसने पत्थर से भी परमेश्वर को प्रकट करा दिया।

> काढ़ि कृपान, कृपा, न कहूँ पितु काल कराल बिलोकि न भागे।
> 'राम कहाँ?' 'सब ठाउँ हैं' 'खंभ में?' 'हाँ' सुनि हाँक नृकेहरि जागे।
> बैरी बिदारि भये बिकराल, कहे प्रहलादहि के अनुरागे।
> प्रीति प्रतीति बढ़ी 'तुलसी' तब तें सब पाहन पूजन लागे ॥१२८॥

टिप्पणी—**काढ़ि** = निकालकर। **कृपान** = (सं० कृपाण) तलवार। **ठाउँ** = स्थान। **नृकेहरि** = नृसिंह अवतार। **जागे** = प्रकट हुए। **बिदारि** = फाड़कर, विदीर्ण करके।

भावार्थ—हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद को मारने के लिए तलवार खींची। उसने अपने पुत्र पर कुछ भी कृपा न की, परंतु प्रह्लाद भयंकर काल के समान अपने पिता को देखकर भगे नहीं। हिरण्यकश्यप ने पूछा, "बता तेरा रक्षक राम कहाँ है (इस समय तुझे क्यों नहीं बचाता) ?" प्रह्लाद ने उत्तर दिया, "मेरे राम सर्वत्र विराजमान हैं।" हिरण्यकश्यप ने पूछा, "क्या इस (जिसमें प्रह्लाद को बाँधा था) खंभे में भी है ?" उसने उत्तर दिया, "हाँ।" प्रह्लाद की इस 'हाँ' को सुनते ही नरसिंह खंभा फाड़कर प्रकट हो गये और हिरण्यकश्यप को अपने नखों से विदीर्ण करके बड़े भयंकर बन गये। परंतु प्रह्लाद की विनम

से फिर भक्त के प्रेम के कारण शांत हो गये। तुलसीदास कहते हैं कि तब से भगवान् पर सब का प्रेम और विश्वास बढ़ गया, और इसी कारण तब से लोग पत्थरों को (उसमें ईश्वर का अस्तित्व समझकर) पूजने लगे।

विशेष—तुलसीदासजी ने इस छंद द्वारा बड़ी युक्ति से मूर्तिपूजा का समर्थन किया है।

> अंतरजामिहु तें बड़ बाहरजामि हैं राम, जे नाम लिये तें।
> धावत धेनु पन्हाई लवाई ज्यों बालक बोलनि कान किये तें।
> आपनी बूझि कहै 'तुलसी', कहिबे की न बावरी बात बिये तें।
> पैज परे प्रह्लादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिये तें ॥१२९॥

टिप्पणी—अंतरजामी=अंतस् ही में जानने योग्य, निर्गुण। बाहरजामी=बाह्य जगत् में जानने योग्य, सगुण रूप। धेनु=गाय। पन्हाई=थन में दूध उतारती हुई। लवाई=हाल की ब्यायी हुई गाय। बावरी=पागलपन की सी बुरी। बिये तें=दूसरे से। पैज=(सं०) प्रतिज्ञा (प्रा० पइज्जा)।

भावार्थ—ईश्वर के निर्गुण रूप से सगुण रूप श्रेष्ठ है, क्योंकि सगुण रूप ईश्वर नाम लेते ही अपने भक्त पर कृपा करने को उसी प्रकार दौड़ आते हैं जैसे हाल की ब्याई हुई गाय दूर से अपने बछड़े का रंभाना सुनते ही स्तनों में दूध उतारकर दौड़ी आती है। तुलसीदास कहते हैं कि मैं अपनी समझ से कहता हूँ, अपनी पागलपने की सी बातें दूसरे से कहने योग्य नहीं हैं। प्रह्लाद की प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिए भगवान् पत्थर से प्रकट हुए, न कि हृदय से।

> बालक बोलि दियो बलि काल को, कायर कोटि कुचाल चलाई।
> पापी है बाप, बड़े परिताप तें आपनी ओर तें खोरि न लाई।
> भूरि दई बिषमूरि, भई प्रह्लाद सुधाई सुधा की मलाई।
> रामकृपा 'तुलसी' जन को, जग होत भले को भलोई भलाई ॥१३०॥

टिप्पणी—बालक=पुत्र (प्रह्लाद)। खोरि न लाई=कसर न की। भूरि=बहुत। सुधाई=सीधेपन के कारण। सुधा=अमृत। जन=भक्त।

भावार्थ—हिरण्यकश्यप ने अपने पुत्र प्रह्लाद को बुलाकर काल को बलि दे दिया। उस कायर ने पुत्र को मारने के लिए करोड़ों कुचालें चलीं। वह बड़ा पापी पिता था, अतः उसने अपने पुत्र को बड़े-बड़े कष्ट देने में अपनी ओर से कुछ कसर न की। प्रह्लाद को बहुत-सी विष-मूलें दीं; पर प्रह्लाद की सिधाई के कारण वह भी अमृत की मलाई के समान गुणकारी हुई। तुलसी-

दास कहते हैं कि इसका कारण भक्तों पर रामचन्द्रजी की कृपा है, और संसार में रामकृपा से भले आदमी को भलाई-ही-भलाई है।

कंस करी ब्रजबासिन पैं करतूति कुभाँति, चली न चलाई।
पांडु के पूत सपूत, कुपूत सुजोधन भो कलि छोटो छलाई।
कान्ह कृपाल बड़े नतपालु गए खल खेचर खीस खलाई।
ठीक प्रतीति कहै 'तुलसी' जग होइ भले को भलोई भलाई ॥१३१॥

टिप्पणी—**सुजोधन**=दुर्योधन का ही नाम है। **भो**=हुआ। **कलि छोटो**=कलियुग का छोटा भाई। **छलाई**=छल में। **कान्ह**=कृष्णजी। **नतपालु**=शरण में आए हुए के रक्षक। **नत**=झुका हुआ (सं० नम्=झुकना)। **खेचर**=(खे=आकाश में + चर=भ्रमण करने वाले) राक्षस, घमंडी या अत्याचारी। **खीस गए**=नष्ट हो गये। **खलाई**=दुष्टता के कारण।

भावार्थ—कंस ने ब्रजवासियों से बहुत बुरा व्यवहार किया, पर (ब्रजवासियों के रक्षक कृष्ण थे, अतः) उसके किये कुछ न हो सका ; पांडु के पुत्र सुपुत्र थे, और कुपुत्र दुर्योधन तो छल करने में इतना निपुण था मानो वह कलियुग का छोटा भाई हो; (पर कृष्णजी पांडवों के सहायक थे अतः उनको कुछ भी हानि न पहुँचा सका।) कृष्णजी बड़े कृपालु और शरणागतों के रक्षक हैं; अतः अपनी दुष्टता के कारण दुष्ट अत्याचारी नष्ट हो गये। तुलसीदास विश्वासपूर्वक ठीक कहते हैं कि संसार में भले को भलाई ही भलाई है।

अवनीस अनेक भए अवनी जिनके डर तें सुर सोच सुखाहीं।
मानव-दानव-देव-सतावन रावन घाटि रच्यो जग माहीं।
ते मिलए धरि, धूरि, सुजोधन जे चलते बहु छत्र की छाँहीं।
बेद पुरान कहैं, जग जान, गुमान गोविंदहि भावत नाहीं ॥१३२॥

टिप्पणी—**अवनीस** (सं० अवनि=पृथ्वी + ईश)=राजा। **दानव**=कश्यप की दनु नाम्नी स्त्री से उत्पन्न संतान दानव कहलाती है (दानव लोग भी देवताओं के वैरी थे)। **सतावन**=सतानेवाला। **घाटि रच्यो**=बुराई का आयोजन किया। **ते**=वे। **जग जान**=संसार भी जानता है। **जे चलते बहु छत्र की छाँहीं**=जिनके ऊपर राजछत्र सदा छाया रहता था, छत्र की छाया में चलने के कारण जिन पर धूल भी नहीं पड़ने पाती थी। **गुमान**=अभिमान। **भावत**=अच्छा लगना।

भावार्थ—इस पृथ्वी में अनेक बड़े-बड़े राजा हुए हैं जिनके डर के कारण देवता सोच से सूख जाते थे। मनुष्य दानव और देवताओं का

रावण, जिसने संसार में बुरा आयोजन किया, और दुर्योधनादिक बड़े-बड़े प्रताप-शाली राजा, जिनके ऊपर सदा राजछत्र तने रहते थे, केवल अभिमान के कारण धूल में मिल गये। वेद और पुराणों ने भी कहा है, और सारा संसार भी इस बात को जानता है कि भगवान् को घमण्ड अच्छा नहीं लगता।

जब नैनन प्रीति ठई ठग स्याम सों, स्यानी सखी हठि हौं बरजी।
नहिं जान्यो बियोग सो रोग है आगे झुकी तब हौं तेहि सों तरजी।
अब देह भई पट नेह के घाले सों, ब्योंत करै बिरहा दरजी।
ब्रजराज-कुमार बिना सुनु, भृंग! अनंग भयो जिय को गरजी ॥१३३॥

टिप्पणी—**ठई**=ठानी। **स्याम**=कृष्ण। **स्यानी**=(सं० सज्ञान) चतुर। **हौं**=मुझे। **बरजी**=मना किया, प्रीति करने से रोका। **जान्यो**=जानती है। **झुकी**=नाराज हुई। **तरजी**=दंड दिया, निरादर किया। **पट**=वस्त्र। **नेह के घाले सों**=स्नेह करने से। **ब्योंत करै**=काट-छाँट करता है, दुबला बना देता है। **बिरहा दरजी**=विरह रूपी दरजी। **भृंग**=भौंरा। **अनंग**=कामदेव। **जिय को गरजी**=प्राणों का ग्राहक।

प्रकरण—कृष्ण जी के मथुरा जाने पर गोपियाँ कृष्ण के विरह में व्याकुल थीं। कृष्ण ने उद्धवजी को गोपियों को समझाने के लिए भेजा। उद्धवजी उनको प्रेम-मार्ग छोड़कर योगमार्ग में जाने का उपदेश देने लगे। अतः प्रेम-मार्ग की उपासिका गोपियाँ उद्धव को भ्रमर मानकर उलाहना देती हैं। ऐसे काव्य को 'भ्रमर-गीत' कहते हैं। इसके आगे के २ छंद और भी 'भ्रमर-गीत' के है।

भावार्थ—एक गोपी उद्धव को भ्रमर संज्ञा देकर कहती है—जब मेरे इन नेत्रों ने ठग कृष्ण से प्रीति लगाई तब चतुर सखी ने मुझे (कृष्ण से प्रीति करने से) मना किया। उसने अप्रसन्न होकर कहा कि नहीं जानती कि आगे वियोग रूपी कोई रोग भी है। तब मैंने उसको निरादर रूपी दंड दिया। अब मेरा शरीर स्नेह करने के कारण वस्त्र के समान हो गया है और विरह रूपी दरजी उस वस्त्र की काट-छाँट करता है। (तात्पर्य यह है कि विरह के कारण मेरी देह दुर्बल होती जाती है।) हे भ्रमर! सुनो, नन्द के कुमार श्रीकृष्ण के विना कामदेव हमारे प्राणों का ग्राहक हो गया है। (अर्थात् कृष्ण के वियोग के कारण हमारे प्राण छूटना चाहते हैं।)

जोग-कथा पठई ब्रज को सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी।
ऊधो जू! क्यों न कहै कुबरी जो बरी नटनागर हेरि हलाकी।

जाहि लगै पर जानै सोई 'तुलसी' सो सुहागिनि नंदलला की ।
जानी है जानपनी हरि की, अब बाँधियैगी कछु मोटिकला की ॥१३४॥

टिप्पणी—**पठई** = भेजी । **सठ चेरी** = दुष्टा दासी अर्थात् कुब्जा, कुबड़ी । **चाल चलाकी** = (मुहावरा) धूर्तता, चालाकी की चाल । **कूबरी** = (१) कुबड़ी (२) कु (बुरी) + बरी (ब्याहा) । **जो** = जिसको । **बरी** = ब्याहा । **नटनागर** = चतुर खिलाड़ी । **हलाकी** = मार डालनेवाला, घातक । **जाहि लगै पर जानै सोई** = जिस पर बीतती है वही जानता है । **सुहागिनि** = सौभाग्यवती । **जानपनी** = ज्ञानपना, ज्ञानीपन । **हरि** = कृष्ण । **बाँधियैगी** = (हम भी) बाँधेंगी । **मोटि** = गठरी ।

भावार्थ—हे उद्धवजी ! कृष्ण ने ब्रज को (आपके द्वारा हमें सिखलाने को) योग की कथा भेजी है, वह सब उसी दुष्टा कुबड़ी की धूर्तता है, जिसने चतुर खिलाड़ी और घातक कृष्ण को भी एक दृष्टि देखते ही वरण कर लिया, भला वह कुबरी क्यों न ऐसा सन्देश भेजे । परन्तु जिस पर बीतती है वही जानता है कि वियोग की व्यथा क्या पदार्थ है । वह तो कृष्ण की सौभाग्यवती (सयोगिनी) है । (हमारे वियोग के दुःख को क्या समझे ।) अब हमने कृष्ण का ज्ञानीपन जान लिया है । (वे उसकी कुबड़ी पीठ देखकर लुब्ध हो गये) । अत हम भी किसी कला की गठरी अपनी पीठ पर बाँध लेंगी ।

मनहरण कवित्त

पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहूँ कहूँ,
खोजि कै खवास खासो कूबरी सी बाल को ।
ज्ञान को गढ़ैया, बिनु गिरा को पढ़ैया, बार,
खाल को कढ़ैया, औ बढ़ैया उर-साल को ।
प्रीति को बधिक, रसरीति को अधिक, नीति,
निपुन बिबेक है, निदेस देसकाल को ।
'तुलसी' कहे न बनै, सहे ही बनैगी सब
जोग भयो जोग को, बियोग नंदलाल को ॥१३५॥

टिप्पणी—**पठयो है** = भेजा है । **छपद** = (सं० षट्पद) भ्रमर । **छबीले** = छबिवाले, सुन्दर । **कैहूँ** = किसी प्रकार से । **कहूँ** = कहीं से । **खोजि कै** = ढूंढ कर । **खवास** = सेवक । **खासो** = प्रसिद्ध । **बाल** = (सोलह वर्ष की स्त्री बाल कहलाती है) युवती स्त्री । **ज्ञान को गढ़ैया** = ज्ञान की बातें बनानेवाला । **गिरा** = वाणी । **बिनु गिरा को पढ़ैया** = बिना वाणी के पढ़नेवाला । **बारखाल को कढ़ैया** = बाल की खाल खींचनेवाला । **बढ़ैया उर-साल को** = हृदय के कष्ट को [illegible] **प्रीति को बधिक** प्रीति की हत्या करनेवाला

अधिक = और भी अधिक (हत्यारे से भी बढ़कर)। निदेश = आज्ञा। जोग = संयोग, अवसर। अलंकार—हेतु (द्वितीय)—'नन्दलाल का वियोग ही योग का संयोग, होने से।

भावार्थ—छबीले कृष्ण ने, किसी प्रकार (बड़ी मुश्किल से) कहीं से खोजकर कुबड़ी के उत्तम सेवक को भ्रमर रूप से भेजा है। यह भ्रमर गढ़-गढ़ कर ज्ञान की बातें करनेवाला, बिना वाणी के ही पढ़नेवाला (केवल गुंजार करनेवाला) बाल की खाल खींचनेवाला और हृदय की पीड़ा को बढ़ानेवाला है। यह प्रीति का बधिक है और इस रीति (श्रृंगार-भाव) के लिए तो हत्यारे से भी बढ़कर है, नीति में निपुण और विवेकी है, सो यह बात देश और काल की आज्ञा के अनुसार ही है (हमारा समय ही ऐसा बुरा आ गया है) अतः इसकी बातों का उत्तर देना ठीक नहीं, सब सह लेना ही ठीक है, क्योंकि जब नंदलाल से वियोग हो गया, तब योग करने का संयोग आ ही गया। (अब उनके वियोग में योगिनी बनना ही उचित है।)

हनुमान ह्वै कृपालु, लाड़िले लखन लाल,
भावते, भरत कीजै सेवक सहाय जू।
बिनती करत दीन दूबरो दयावनो सो,
बिगरे ते आपु ही सुधार लीजै भाय जू।
मेरी साहिबनी सदा सीस पर बिलसति
देवि! क्यों न दास को दिखाइयत पाय जू।
खीझहू में रीझिबे की बानि राम रीझत हैं,
रीझे ह्वै हैं राम की दुहाई रघुराय जू ॥१२६॥

टिप्पणी—ह्वै = होकर। लाड़िले = प्यारे। भावते = प्यारे। बिगरे ते = बिगड़ने से, अर्थात् यदि मुझसे बिनती न करते बनी हो। भाय जू = भाईजी। साहिबिनी = स्वामिनी। बिलसत = विशेष प्रकार से लसती है अर्थात् शोभायमान है। खीझहू में = क्रोध में भी। रीझिबे की बानि = प्रसन्न होने के स्वभाव से। रीझे ह्वै हैं = प्रसन्न हुए होंगे।

भावार्थ—हे हनुमानजी, हे प्यारे लक्ष्मणजी, हे प्यारे भरतजी, कृपालु होकर मुझ सेवक की सहायता कीजिए। मैं दीन, दुर्बल और दया का पात्र आपसे बिनती करता हूँ। अगर मुझसे बिनती करते न बनी हो तो आप बात सुधार लीजिएगा। हे मेरी मालकिन सीताजी, (अथवा तुलसीजी) आप तो सदा ही सब की शिरोभूषण हो अतः हे देवि मुझ दास को अपने चरण क्यों नहीं

दिखलातीं (दर्शन क्यों नहीं देतीं) । श्रीरामजी का तो यह स्वभाव है कि वे क्रोध में भी रीझते हैं। अतएव मैं रामचन्द्रजी की शपथ लेकर कहता हूँ कि रामचन्द्रजी मुझसे प्रसन्न ही होंगे (अतः आप भी सिफारिश कर दीजिए तो मेरा काम बन जाय) ।

मत्तगयंद सवैया

> **बेष बिराग को, राग भरो मनु, माय ! कहौं सतिभाव हौं तोसों ।**
> **तेरे ही नाथ को नाम लै बेंचि हौं पातकी पामर प्रानन्हि पोसों ।**
> **एते बड़े अपराधी अघी कहुँ, तैं कहु अंब ! कि मेरो तू मोसों ।**
> **स्वारथ को परमारथ को परिपूरन भो फिरि घाटि न होसों ॥१३७॥**

टिप्पणी—राग = सांसारिक सुखों से प्रेम । **सतिभाव** = सत्य भाव से, निष्कपट मन से। **पामर** = नीच। **पोसों** = पुष्ट करता हूँ, पालन करता हूँ। **एते** = तने । **अघी** = पापी। **घाटि** = कमती । **घाटि न होसों** = कमती न होगी ।

भावार्थ—तुलसीदास कहते है कि हे माता, मैं आपसे शुद्ध चित्त से कहता हूँ कि यद्यपि मेरा बेश वैरागियों का-सा है तथापि मन अभी सांसारिक सुखो मे लगा हुआ है। मैं नीच पापी आपके ही स्वामी रामचन्द्रजी का नाम बेचकर अर्थात् राम के नाम पर भीख माँगकर अपने प्राणो की रक्षा करता हूँ। हे माता, इतने बड़े अपराधी और पापी से तू कह दे, 'तू मेरा है' तो बस फिर स्वार्थ और परमार्थ सब पूरे हो जायँगे, किसी बात की कमती न होगी'। (ऐसा मेरा विश्वास है।)

कवित्त—सीतामढ़ी का बर्णन

> **जहाँ बाल्मीकि भए ब्याध ते मुनींद्र साधु;**
> **'मरा-मरा' जपे सुनि सिख ऋषि सात की ।**
> **सीय को निवास लव-कुश को जनमथल**
> **'तुलसी' छुवत छांह ताप गरै गात की ।**
> **बिटप-महीप सुरसरित-समीप सोहै**
> **सीताबट पेखत पुनीत होत पातकी ।**
> **बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि**
> **अंकित जो जानकी चरन-जलजात की ॥१३८॥**

टिप्पणी—**सिख** = (सं०) शिक्षा। **ऋषि सात की** = सप्तर्षियों की । **गरै** = गल जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। **गात** = (सं० गात्र) शरीर। **बिटप** = (स०) वृक्ष । **सुरसरित** = गंगाजी । **सीताबट** = उस वृक्ष का नाम, जहाँ सीताजी रही थीं । **पेखत** = (सं० प्र + ईक्ष्) देखने से । **बारिपुर** = ग्राम विशेष । **दिगपुर** = ग्राम विशेष । **जलजात** = कमल । **अंकित** चिह्नित ।

भावार्थ—जिस स्थान पर सप्तर्षियों का उपदेश सुनकर 'मरा-मरा' (राम-नाम का उल्टा) जपने से ही वाल्मीकि जी वधिक से सज्जन और मुनियों में श्रेष्ठ हो गये, जो स्थान सीता के रहने की जगह थी, जो लवकुश की जन्म-भूमि थी, जिस स्थान की छाया के स्पर्श से भी शरीर के (दैहिक, दैविक, भौतिक) तीनों प्रकार के ताप नष्ट हो जाते हैं, जिस भूमि पर गंगाजी के समीप सीतावट नामक वृक्षों का राजा (अर्थात् अति श्रेष्ठ वृक्ष) शोभायमान है, जिसको देखने से ही पापी पवित्र हो जाता है, और जो सीताजी के चरण-कमलों से चिह्नित है (अर्थात् जिस स्थान पर सीताजी के चरण पड़े हैं) 'सीतामढ़ी' नामक वह भूमि बारिपुर और दिगपुर के बीच शोभायमान है।

नोट—यह स्थान झूंसी से कुछ दूर पूर्व 'भीटी' नामक स्टेशन के पास गंगातट पर है। 'दिगपुर' को अब 'दीप' वा 'दिघउर' कहते हैं। 'बारिपुर' का मुझे पता नहीं चला।

मरकत - बरन परन, फल मानिक से,
लसै जटाजूट जनु रूख बेष हरु है।
सुषमा को ढेरु, कैधौं सुकृत सुमेरु कैधौं,
संपदा सकल मुद-मंगल को घरु है।
देत अभिमत जो समेत प्रीति सेइये,
प्रतीति मानि 'तुलसी' बिचार काको थरु है।
सुरसरि निकट सोहावनि अवनि सोहै।
रामरमनी को बट कलि-काम तरु है ॥१३९॥

टिप्पणी—**मरकत-बरन**=पन्ना रत्न के समान, अर्थात् हरे वर्ण के। **बरन**=(सं० वर्ण) रंग। **परन**=(सं० पर्ण) पत्ते। **लसै**=सुशोभित है। **रूख**=(सं० वृक्ष; प्रा० रुक्ख) पेड़। **हरु**=शिवजी। **सुषमा**=(सं० सुषमा) परम शोभा (अत्यंत शोभा को सुषमा कहते हैं)। **सुकृत सुमेरु**=पुण्यों का पर्वत। **सुमेरु**=यहाँ 'पर्वत' अर्थ में प्रयुक्त है। **मुद**=(सं०) आनंद। **अभिमत**=मन का इच्छित पदार्थ। **काको थरु है**=यह किसका स्थान है। (ध्वनि से यह अर्थ निकलता है कि यह स्थान सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाली जगज्जननी सीताजी का है, किसी ऐसे वैसे का नहीं)। **अवनि**=पृथ्वी। **रामरमनी**=सीताजी। **कलि**=कलियुग में। **कामतरु**=मनकामनाओं को देने-वाला कल्पवृक्ष।

भावार्थ—(सीतावट के) पन्ना के रंग के पत्ते और माणिक-समान फल हैं। उस पर जटाजूट ऐसे शोभायमान हैं मानो साक्षात् शिवजी वृक्ष के वेष में विराजे हों, यह वृक्ष अत्यंत शोभा का ढेर है, या पुण्यों का पर्वत है, अथवा

सम्पत्ति और संपूर्ण आनन्द-मंगल का घर है। अगर प्रीति-सहित उसकी सेवा करो तो वह संपूर्ण मनोरथों को पूर्ण करता है। तुलसीदास कहते हैं कि वह स्थान किसका है (अर्थात् सब मनोरथों की दात्री जगज्जननी सीताजी का है)। यह विचार कर मेरी बात पर विश्वास करो। गंगा के निकट सुन्दर (सीतामढी नामक) स्थान में वह सीतावट शोभायमान है, जो कलियुग में कल्पवृक्ष है।

देवधुनि-पास मुनिबास सी-निवास जहाँ,
प्राकृत हूँ बट बूट बसत पुरारि हैं।
जोग जप जाग को बिराग को पुनीत पीठ,
रागिन पै सीठि, डीठि बाहरी निहारि हैं।
'आयसु', 'आदेश', 'बाबा', 'भलो भलो', 'भाव सिद्ध',
'तुलसी' बिचार जोगी कहत पुकारि हैं।
रामभगतन को तो कामतरु तें अधिक,
सीयवट सेए करतल फल चारि हैं ॥१४०॥

टिप्पणी—धुनी = (सं०) नदी। **देवधुनि** = गंगाजी। **सी** = सीताजी। **प्राकृत बट** = साधारण वट वृक्ष। **बूट** = वृक्ष। **पुरारि** = त्रिपुर नामक दैत्य के अरि शिवजी। **पीठ** = पवित्र स्थान। **रागिन पै** = सांसारिक विषयों से अनुरक्तों के लिए। **सीठि** = नीरस। **डीठि** = (सं०) दृष्टि। **आयसु**.......... 'भावसिद्ध' = साधु सन्तों की बोलचाल के वाक्य; अर्थात् वहाँ के रहने वाले इसी प्रकार के शिष्ट और मधुर शब्दों का व्यवहार करते हैं। **करतल फल चारि हैं**—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों फलों का पाना तो इतना सुलभ है जैसे हथेली में रखी हुई वस्तु का पाना अर्थात् अत्यंत सुलभ है। अधिक इस कारण कि कल्पवृक्ष केवल अर्थ, धर्म, काम का देने वाला है, पर यह वट मोक्ष भी देता है। **अलंकार** = समुच्चय और व्यतिरेक।

भावार्थ—साधारण वट वृक्ष भी शिव का निवास माना जाता है, फिर यह वट तो गंगा के निकट है, जहाँ मुनियों की कुटियाँ हैं और जहाँ सीताजी का निवास-स्थान रहा है। वह स्थान योग, जप और यज्ञ करने के लिए और वैराग्य-साधन के लिए पवित्र है। पर सांसारिक सुखों में लिप्त और बाहरी दृष्टि से देखने वालों के लिए वह स्थान नीरस है। तुलसीदास कहते हैं कि वहाँ ऐसे योगी बसते हैं जो परस्पर शिष्टाचारसूचक 'आयसु', 'आदेश', 'बाबा', 'भलो भलो', 'भावसिद्ध' आदि शब्दों का व्यवहार करते हैं। (अर्थात् अत्यंत शिष्ट साधुजन का निवास वहाँ अब भी है)। रामभक्तों के लिए तो यह सीतावट कल्पवृक्ष से भी बढ़कर है, और इसकी सेवा करने से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों फल (अत्यन्त सुलभ हो जाते हैं।

चित्रकूट-माहात्म्य

जहाँ बन पावनो, सुहावने, बिहंग मृग,
देख अति लागत अनंद खेत खूंट सो।
सीतारामलषन निवास, बास मुनिन को,
सिद्ध साधु साधक सबै बिबेक बूट सो।
झरना झरत झारि सीतल पुनीत 'बारि,
मंदाकिनी मंजुल महेस जटाजूट सो।
'तुलसी' जो राम सों सनेह साँचो चाहिये,
तौ सेइये सनेह सों बिचित्र चित्रकूट सो ॥१४१॥

टिप्पणी—**खेत खूंट सो**=खेत के टुकड़े की भाँति अत्यन्त हरा-भरा **बिबेक**=भले-बुरे का ज्ञान। **बूट**=वृक्ष। **बारि** (सं०)=जल। **मंजुल**=सुन्दर। **सेइये**=सेवा कीजिए।

भावार्थ—जहाँ पवित्र वन है, सुन्दर सुहावने पक्षी और पशु हैं, जिस स्थान को खेत के टुकड़े की भाँति हरा-भरा देखकर अत्यंत आनन्द होता है, जहाँ सीता, राम और लक्ष्मण रहते थे, जो मुनियों का वासस्थान है, जो सिद्ध, साधु और साधक सभी के लिए ज्ञान रूपी वृक्ष है (अर्थात् जहाँ सभी ज्ञान प्राप्त करते हैं), जहाँ ठंडा और पवित्र जल गिराते हुए झरने झरते हैं, जहाँ महादेवजी के जटाजूट से निकली हुई सुन्दर मंदाकिनी जी हैं (यथा—सुरसरिधार नाम मंदाकिनि), तुलसीदास कहते है कि अगर रामचन्द्रजी से सच्चा स्नेह चाहते हो तो स्नेहपूर्वक ऐसे (उपर्युक्त प्रकार के) विचित्र चित्रकूट पर्वत की सेवा करो (अर्थात् वहाँ रहो)।

मोहबन कलिमल-पल पीन जानि जिय,
साधु गाय बिप्रन के भय को निवारिहै।
दीन्ही है रजाइ राम, पाइ सो सहाइ लाल,
लषन समर्थ बीर हेरि हेरि मारिहै।
मंदाकिनी मंजुल कमान असि, बान जहाँ,
बारि-धार, धरि धरि सुकर सुधारिहै।
चित्रकूट-अचल अहेरी बैठ्यो घात मानों,
पातक के ब्रात घोर सावज सँहारिहै ॥१४२॥

टिप्पणी—**मोहबन**=अज्ञान रूपी वन में। **कलिमल**=पाप। **पल**—मांस। **पीन**=पुष्ट, मोटा। **पल पीन**=मांस के मोटे ताजे। **नेवारिहै**=हटायेगा। **रजाइ**=आज्ञा। **पाइ सो**=उस आज्ञा के बल पर। **सहाइ लाल-लषन**—और ——— की सहायता पाकर। **हेरि हेरि**—खोज-खोजकर **मंजुल** सुन्दर। **कमान धनुष असि**=एसी समान। **बारि-धार**=मया

किनी के जल की लहरें। सुकर = (स्वकर) अपने हाथ से। अचल = (अ + चल) जो चले नहीं, यहाँ 'पर्वत' से तात्पर्य है। अहेरी = आखेटी, शिकारी। घात बैठ्यो = दाँव ताक कर बैठा है। पातक के व्रात = पाप के समूह। सावज = जंगली जानवर। अलंकार—रूपक।

भावार्थ—चित्रकूट पर्वत एक शिकारी है जो दाँव ताक कर बैठा है, मानो पाप-समूह रूपी जंगली जानवरों को अवश्य मारेगा। मोह रूपी वन में इन पापों को मोटा-ताजा समझकर (उन्हें मारकर) साधु, गाय और ब्राह्मणों के भय को हटायेगा। ऐसा करने के लिए श्रीरामजी ने उसे आज्ञा दी है, वह आज्ञा पाकर और समर्थ वीर लक्ष्मणलाल की मदद पाकर समस्त पाप रूपी सावजों को खोज-खोजकर मारेगा। ऐसा शिकार करने के लिए उसके पास सुन्दर मंदाकिनी ऐसी कमान और उसकी जल तरंगें ही बाण सम हैं; उन्हीं को वह धैर्यपूर्वक अपने हाथों में धारण करेगा।

नोट—मेरी सम्मति में, लेखकों के प्रमाद से, कवित्त के लिखते समय दूसरे चरण के स्थान पर तीसरा और तीसरे के स्थान पर दूसरा चरण लिख गया है क्योंकि ऐसा करने से रूपक के संगठन में सुसंगति आ जाती है, अन्यथा कुछ शिथिलता जान पड़ती है।

सवैया

लागि दवारि पहार ठही, लहकी कपि लंक जथा खर-खौकी।
चारु चुवा चहुँ ओर चलें, लपटें झपटें सो तमीचर तौंकी।
क्यों कहि जाति महा सुषमा, उपमा तकि ताकत है कवि कौं की।
मानों लसी 'तुलसी' हनुमान हिये जगजीति जराय की चौकी॥१४३॥

टिप्पणी—दवारि = वन की अग्नि। ठही = ठहरकर, जमकर, अच्छी तरह। लहकी = लहकाई, प्रज्वलित की। खर-खौकी = तृण को खानेवाली अर्थात् आग। चारु = सुन्दर। चुवा = चौवा, चतुष्पद (मृगादि)। लपटें = ज्वालाएँ। तमीचर = राक्षस। तौंकी = तौंककर, आँच से तपकर। कौं की = कब की, बड़ी देर से। तकि = तर्कना करके, विचार करके। लसी = शोभायमान हुई। जराय की चौकी = जड़ाऊ चौकी नगदार पदिक। अलंकार—उत्प्रेक्षा।

प्रकरण—एक समय चित्रकूट में हनुमान धारा के पास दावाग्नि लगी। तुलसीदासजी उस समय वहाँ उपस्थित थे। उसी दृश्य का वर्णन इस छंद में है।

भावार्थ—पहाड़ में दावाग्नि खूब अच्छी तरह से इस प्रकार लगी हुई है जैसे हनुमान ने लंका मे आग लगाई थी। दावाग्नि के ताप से तपकर सुन्दर

पशु चारों ओर को इस प्रकार भागे जाते हैं, जैसे लंका में आग की लपक से तपकर राक्षस लोग इधर-उधर भागे थे। उस समय की अत्यधिक सुषमा का वर्णन कैसे किया जाय। कवि (तुलसीदास) उसकी उपमा को विचारते हुए बड़ी देर से ताकता रह गया है। जब कोई उपमा न सूझी तब (तुलसीदास) उत्प्रेक्षा करते हैं कि मानो संसार भर में सर्वोत्तम विजयी होने के कारण हनुमानजी के हृदय में रामचंद्रजी की ओर से जड़ाऊ पदिक (पुरस्कार-स्वरूप) शोभायमान है।

गंगा-यमुना संगम-वर्णन

> **देव कहैं अपनी अपना अवलोकन तीरथराज चलो रे।**
> **देखि मिटैं अपराध अगाध, निमज्जत साधु-समाज भलो रे।**
> **सोहै सितासित को मिलिबो, 'तुलसी' हुलसै हिय हेरि हलोरे।**
> **मानों हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे ॥१४४॥**

टिप्पणी—अपनी अपना = परस्पर। **अवलोकन** = दर्शन को। **तीरथ राज** = प्रयाग। **निमज्जत** = स्नान करते हैं। **सितासित** = (सित = सफेद + असित = काला) गंगा-यमुना। **हुलसै** = उल्लसित होता है, आनंदित होता है। **हेरि** = देखकर। **हलोरे** = तरंगें। **चारु** = सुन्दर। **बगरे** = फैले हुए। **सुरधेनु** = कामधेनु। **धौल** = (सं० धवल) सफेद। **कलोरे** = बछड़े। **अलंकार—उत्प्रेक्षा**।

भावार्थ—सब देवता परस्पर कहते हैं कि तीर्थराज प्रयाग के दर्शन को चलो। प्रयागराज के दर्शन से बड़े-बड़े अपराध नष्ट हो जाते हैं। वहाँ साधुओं के समूह स्नान करते हैं। श्वेत जलवाली गंगा और नीले जलवाली यमुना का संगम अति ही सुहावना है। उस स्थान पर दोनों नदियों की तरंगें देखकर मेरा (तुलसीदास का) मन आनंदित होता है। वह दृश्य ऐसा दिखलाई देता है मानो इधर-उधर फैले हुए कामधेनु के सफेद बछड़े (गंगा की तरंगें) सुन्दर हरे-हरे तृणों को (यमुना की तरंगों को) चर रहे हैं।

नोट—संगम में यमुना की लहरें गंगा की लहरों में लीन हो जाती हैं (यमुनाजी गंगाजी में लीन हो जाती हैं) अत्यंत विचारपूर्ण और उत्तम उत्प्रेक्षा है।

> **देवनदी कहँ जो जन जान किये मनसा, कुल कोटि उधारे।**
> **देखि चले, झगरैं सुरनारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे।**
> **पूजा को साज बिरंचि रचैं, 'तुलसी' जे महातम जाननहारे।**
> **ओक की नींव परी हरिलोक बिलोकत गंग तरंग तिहारे ॥१४५॥**

टिप्पणी—**देवनदी**=गंगा। **उधारे**=उद्धार किया। **सुरनारि**=यहाँ अप्सराओं से तात्पर्य है। **सुरेस**=इंद्र। **बिरंचि**=ब्रह्मा। **ओक**=घर। **हरिलोक**=बैकुंठ। **अलंकार**—अत्यंतातिशयोक्ति।

भावार्थ—ज्यों ही किसी ने गंगास्नान को जाने की इच्छा की त्यों ही उस मनुष्य के करोड़ों पीढ़ी के पुरखा तर जाते हैं। उसको गंगास्नान करने को चला हुआ देखकर अप्सराएँ उसको वरण करने के लिए झगड़ने लगती हैं। इंद्र उसको स्वर्ग में ले जाने के लिए विमान सजाकर तैयार करने लगते हैं। ब्रह्मा जो गंगा का माहात्म्य जानते हैं उसकी पूजा करने की सामग्री एकत्र करने लगते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि हे गंगाजी, आपकी तरंगों के दर्शन से ही (निकट पहुँचते ही) दर्शक के लिए वैकुंठ में घर की नींव पड़ जाती है (तो स्नान करने का माहात्म्य मैं क्या कहूँ?)।

> **ब्रह्म जो व्यापक बेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन-ज्ञान गुनी को।**
> **जो करता भरता हरता सुर-साहिब, साहिब दीन दुनी को।**
> **सोइ भयो द्रवरूप सही जु है नाथ बिरंचि महेस मुनी को।**
> **मानि प्रतीति सदा 'तुलसी' जल काहे न सेवत देवधुनी को॥१४६॥**

टिप्पणी—**जो**=जिसको। **गम नाहिं**=गम्य नहीं है। (जिसको जान नहीं सकते)। **गिरा**=सरस्वती। **करता**=उत्पन्न करनेवाला। **भरता**=भरण-पोषण करनेवाला। **हरता**=संहार करनेवाला। **दुनी**=दुनिया। **द्रवरूप**=जल रूप। **सही**—सत्य ही, वास्तव में। **देवधुनि**—गंगा।

भावार्थ—जिस परब्रह्म परमात्मा को वेद सर्वव्यापी कहते हैं, जिस परमात्मा के गुण और ज्ञान की थाह गुणीजन और शारदा भी नहीं पा सके, जो ब्रह्म सृष्टि का कर्ता, भर्ता और हर्ता है, देवताओं में श्रेष्ठ और दीन-दुनिया का स्वामी है, जो वास्तव में ब्रह्मा, शिव और मुनियों का स्वामी है, वही विष्णु भगवान् जलरूप हुए हैं। तुलसीदास कहते हैं कि यह विश्वास मानकर नित्य गंगा-जल का सेवन क्यों नहीं करते हो?

विशेष—गंगाजी विष्णु के चरणों से निकली हैं और ऐसा ही माना जाता है कि गंगाजी परमेश्वर का द्रव रूप हैं।

> **बारि तिहारो निहारि, मुरारि भए परसे पद पाप लहौंगो।**
> **ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं, प्रभु की समता बड़ दोष दहौंगो।**
> **बरु बारहिं बार सरीर धरौं, रघुबीर को ह्वै तव तीर रहौंगो।**
> **भागीरथी! बिनवौं कर जोरि बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो॥१४७॥**

टिप्पणी—**बारि**=जल। **मुरारि**=मुर नामक दैत्य के शत्रु विष्णु भगवान्। **परसे**=स्पर्श करने से। **पद**=पैरों से। **लहौंगो**=(सं० लभ् से लह) प्राप्त करूँगा। **ईस**=शिव। **दोष दहौंगो**=दोष से दग्ध हूँगा। **बरु**=भले ही। **बारहिं बार शरीर धरौं**=बार-बार जन्म धारण करूँ। **तीर**=तट पर। **बहोरि**=फिर। **न खोरि लगै**=दोष न लगे।

भावार्थ—हे गंगे! यह जानकर कि तुम जलरूप ईश्वर ही हो, तुम्हें अपने चरणों से स्पर्श करने से मुझे पाप लगेगा (इसी से मैं तुममें पैठकर स्नान नहीं करता), शिव के समान शिर पर धारण करने में भी डरता हूँ कि बड़ों की बराबरी करने से बड़े भारी दोष में दग्ध हो जाऊँगा। (इसी से सिर पर भी तुम्हारा जल नहीं छिड़कता)। (तुम्हारा इस प्रकार अनादर करने से) मुझे भले ही अनेक बार जन्म लेना पड़े, पर मैं तो रामचंद्रजी का भक्त होकर तुम्हारे तट पर निवास करूँगा (स्नान चाहे न करूँ)। हे गंगे, मैं हाथ जोड़कर विनती करता हूँ कि जिससे फिर मुझे दोष न लगे मैं ऐसा ही सत्य वचन कहूँगा। (तात्पर्य यह है कि गंगातट पर रहकर भी जो मैं गंगा-स्नान करने नहीं जाता उसका कारण आपका निरादर नहीं वरन् रामभजन में संलग्नता है)।

कवित्त

लालची ललात, बिललात द्वार द्वार दीन,
बदन मलीन, मन मिटै न बिसूरना।
ताकत सराध कै, बिबाह कै, उछाह कछु,
डोलै लोल बूझत सबद ढोल तूरना।
प्यासें हू न पावै बारि, भूखे न चनक चारि,
चाहत अहारन पहार, दारि घूरना।
सोक को अगार दुःखभार-भरो तौ लौं जन,
जौ लौं देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना॥१४८॥

टिप्पणी—**बिसूरना**=चिन्ता, सोच। **सराध**=(सं० श्राद्ध) पितृ-कर्म। **उछाह**=उत्सव। **डोलै**=भटकता है। **लोल**=चंचल। **बूझत सबद ढोल तूरना**=ढोल और तुरी का शब्द सुनकर पूछने लगता है (कि यहाँ कोई उत्सव तो नहीं)। **अहारन पहार**=अहारों के पहाड़, अर्थात् अपरिमित भोजन। **दारि**=दाल का दाना। **घूरना**=घूरे पर बिनने से भी नहीं मिलता। **दुख भार भरो**=दुःख के बोझ से भरा हुआ। **द्रवै**=पिघले अर्थात् दया करे।

भावार्थ—लालची टुकड़े-टुकड़े के लिए लालायित होकर दरवाजे-दरवाजे दीन होकर बिलखाता है, उसका मुँह मलिन हो जाता है और मन की चिन्ता

नही मिटती। कहीं श्राद्ध या विवाह या कोई उत्सव तो नहीं, इसकी टोह में लगा रहता है। अस्थिर होकर इधर-उधर फिरता रहता है और ढोल और तूरी के शब्द सुनकर पूछने लगता है कि यहाँ कोई उत्सव तो नहीं जिसमें कुछ खाने को मिले। अत्यंत प्यासा होने पर भी उसे पीने को जल नही मिलता, अतिशय भूखा होने पर भी उसे खाने को चार दाने चने के नहीं मिलते। वह चाहता तो है अपरिमित भोजन पर उसे घुरबिनिया करने पर भी एक दाना दाल का भी नहीं मिलता। ऐसा आदमी तभी तक शोक का घर है और दुःख के बोझ से दबा हुआ रहता है जब तक उस पर भवानी अन्नपूर्णाजी कृपा न करें।

छप्पय

भस्म अंग, मर्दन, अनंग, संतत असंग हर।
सीस गंग, गिरिजा अर्धंग, भूषन भुजंगबर।
मुंडमाल बिधुबाल, भाल, डमरू कपालकर।
बिबुध-बृन्द-नवकुमुद-चंद, सुख कंद, सूलधर।
त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग्बसन विष भोजन भव-भय-हरन।
कह 'तुलसिदास' सेवत सुलभ सिव सिव सिव संकरसरन।।१४९।।

टिप्पणी—**मर्दन**=नाश करनेवाले। **अनंग**=कामदेव। **संतत असंग**= निरंतर एकांत मे रहनेवाले। **हर**=संहारकर्ता। **गिरिजा**=गिरि (हिमालय) की पुत्री पार्वतीजी। **अर्धंग**=(सं० अर्द्धांग) आधे (वाम) अंग में। **भुजंग बर**=श्रेष्ठ सॉप। **बालबिधु**=द्वितीया का चंद्रमा। **भाल**=मस्तक पर। **डमरू**=शिवजी का बाजा। **कपाल**=खप्पर। **बिबुध-बृन्द-नवकुमुद-चंद** देव-समूह रूपी नवीन कुमुदों को प्रफुल्ल करने के लिए चंद्रमा के समान। **सुखकंद**=सुख के मूल। **सूल**=त्रिशूल। **त्रिपुरारि**=त्रिपुर नामक दैत्य शत्रु। **दिग्बसन**=दिशाएँ ही हैं वस्त्र जिनके; नंगे।

भावार्थ—अंग पर विभूति रमाये हुए, कामदेव को भस्म करनेवाले, सदा एकाकी रहनेवाले, जगत् के संहारकर्ता, शिर पर गंगा, बाएँ अंग में पार्वतीजी को धारण किये हुए, श्रेष्ठ सर्पों के भूषण पहने हुए, गले में मुंडमाला, ललाट पर द्वितीया का चंद्रमा और हाथों में डमरू और खप्पर लिये हुए, देवगण रूपी नवीन कुमुदों को प्रफुल्लित करने के लिए चंद्रमा के तुल्य, सुख के मूल, त्रिशूल धारण किए हुए त्रिपुर दत्य के शत्रु त्रिलोचन, नग्न, कालकूट विष को भक्षण करनेवाले, सांसारिक अर्थात् जन्म-मरण के भय से छुड़ानेवाले और जिनकी सेवा करने से तीनों लोकों, तीनों कालों में कल्याण प्राप्त करना सुलभ है, तुलसीदास कहते हैं कि मैं ऐसे शंकर (कल्याण-कर्ता) की शरण हूँ।

गरल असन, दिग्बसन, ब्यसन-भंजन, जन-रंजन,
कुंद - इंदु - कर्पूर - गौर, सच्चिदानंद घन।
बिकट बेष, उर सेष, सीस सुरसरित सहज सुचि।
सिव, अकाम, अभिराम, धाम, नित रामनाम रुचि।
कन्दर्प-दर्प दुर्गम, दवन, उमारवन गुनभवन हर।
तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन-पर, त्रिपुर-मथन, जय त्रिदस-वर ॥१५०॥

टिप्पणी—गरल = विष, हलाहल। असन = (सं० अशन) भोजन। ब्यसनऽभंजन = बुरे स्वभाव को तोड़नेवाले। जन-रंजन = दासों को आनंदित करनेवाले। कुन्द = एक प्रकार का फूल। इंदु = चंद्रमा। कुन्द-इंदु-कर्पूर-गौर = कुन्द, चंद्रमा और कर्पूर के समान श्वेत वर्ण वाले। सच्चिदानन्द घन = सत्, चित् और आनन्द का समूह। बिकट = भयंकर। सेष = सर्प। अकाम = इच्छा रहित। सिव = (सं० शिव) कल्याण-स्वरूप। अभिराम = आनंद। धाम = घर। कंदर्प = कामदेव। दुर्गम कंदर्प-दर्प दवन (दमन) = कामदेव के बड़े भारी अभिमान को नाश करनेवाले। उमा-रवन = उमारमण। हर = संहार-कर्त्ता। त्रिगुन पर—सत्व, रज, तम तीनों गुणों से परे। त्रिदस-वर—देवताओं में श्रेष्ठ।

भावार्थ—विषभोजी, नग्न, दुःखों का नाश करनेवाले, लोगों को आनंददायक; कुन्द, चंद्रमा और कर्पूर के समान गौर वर्ण; सत्, चित् और आनन्द के समूह; भयंकर वेश धारण किए हुए; छाती पर साँप का जनेऊ पहने हुए, सिर पर स्वभाव से ही पवित्र गंगाजी को धारण किये हुए; कल्याण-स्वरूप इच्छारहित, आनंद के घर, नित्य रामनाम से प्रेम करनेवाले, कामदेव के बड़े भारी अभिमान को चूर-चूर करनेवाले, पार्वतीजी के स्वामी, समस्त सद्गुणों के घर, जगत् के संहार-कर्ता, तुलसीदास के स्वामी, त्रिलोचन, सत्व-रज-तम इन तीनों गुणों से परे, त्रिपुर का नाश करनेवाले और देवताओं में श्रेष्ठ ऐसे शिवजी की जय हो।

अर्ध-अंग अंगना, नाम जोगीस जोगपति।
बिषम असन, दिग-बसन, नाम बिस्वेस बिस्वगति।
कर कपाल, सिर माल ब्याल, बिष भूति बिभूषन।
नाम सुद्ध अबिरुद्ध, अमर, अनवद्य, अदूषन।
बिकराल भूत-बैताल-प्रिय, भीम नाम भवभय-दमन।
सब बिधि समर्थ, महिमा अकथ 'तुलसिदास' संसयसमन ॥१५१॥

टिप्पणी—अंगना = स्त्री। जोगीस = योगियों के स्वामी। जोगपति = योग के पति बिषम असन भाँग धतूरा आदि भोजन करनेवाले। बिस्वेस

(सं० विश्वेश) संसार के स्वामी । **बिस्वगति** = संसार भर को शरण देने वाले । **ब्याल** = सर्प । **भूति** = विभूति । **अबिरुद्ध** = जिसका कोई प्रतिद्वंद्वी न हो । **अमर** = कभी न मरनेवाले । **अनबद्य** = निन्दा के अयोग्य अर्थात् स्तुत्य, प्रशंसनीय । **अदूषन** = दोषरहित । **भीम** = भयंकर । **भवभय** = जन्म-मरणादि के भय । **महिमा अकथ** = जिसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता । **संसय समन** = (संशय समन) सन्देह को हटानेवाले ।

भावार्थ—शिवजी के बाएँ अंग में स्त्री बिराजमान है, पर नाम है योगियों के स्वामी और योग के पति । भाँग, धतूरा आदि का भोजन करते हैं और नग्न रहते हैं, पर नाम है संसार के स्वामी और संसार को शरण देने वाले । हाथ में खप्पर है, सिर पर साँपों की माला लिपटाये हुए हैं, विष (गले में कालकूट विष की नीलिमा) और भस्म ही इनके आभूषण हैं, तिस पर भी नाम है शुद्ध । जिनका प्रतिद्वन्द्वी कोई नहीं है, जो अमर हैं, स्तुति करने योग्य हैं, दोष-रहित हैं, विकराल भूत-वैताल-प्रिय ऐसा भयंकर नाम है, तब भी सांसारिक भयों को दूर करते हैं । जो सब प्रकार से समर्थ हैं और जिनकी महिमा कही नहीं जा सकती, वही शंकर तुलसीदास के सब संदेहों को मिटानेवाले हैं ।

भूतनाथ भयहरन, भीम, भय-भवन भूमिधर ।
भानुमंत, भगवंत, भूति भूषन भुअंग बर ।
भव्य, भाव-बल्लभ, भवेस भवभार-बिभंजन ।
भूरि भोग, भैरव, कुजोग-गंजन, जनरंजन ।
भारती-बदन, बिष-अदन सिव, ससि-पतंग-पावक-नयन ।
कह 'तुलसिदास' किन भजसि मन भद्रसदन मर्दन-मयन ॥१५२॥

टिप्पणी—**भूतनाथ** = भूतों के स्वामी । **भीम** = भयंकर । **भानुमंत** = प्रकाशवान्, दिव्य प्रभा से युक्त । **भगवंत** = ऐश्वर्यवान् । **भूति** = विभूति, भस्म । **भुअंगबर भूषन** = सर्पों के भूषण पहने हुए । **भव्य** = सुन्दर, रोबदार । **भाव-बल्लभ** = प्रेम अथवा भक्ति को चाहनेवाले । **भवेस** = संसार के स्वामी । **भवभार-बिभंजन** = संसार के भार (पाप) को नाश करने वाले । **भूरिभोग** = जिसे सब भोग सुलभ हैं । **भैरव** = भयंकर शब्द करनेवाले । **कुजोग-गंजन** = दुर्भाग्य को मिटानेवाले । **जनरंजन** = दासों को आनंदित करनेवाले । **भारती** = सरस्वती । **भारती-बदन** = मुंह पर जिनके सरस्वती है । **अदन** = खाने वाले । **सिव** = कल्याणकारी । **ससि-पतंग-पावक-नयन** = चंद्रमा, सूर्य और अग्नि जिनकी आँखें हैं । **किन भजसि** = क्यों नहीं भजता ? **भद्र-सदन** = कल्याण के घर । **मयन** = (सं० मदन, प्रा० मअन) कामदेव ।

भावार्थ—शिवजी भूत-प्रेतों के नाथ हैं, पर लोगों के भय को दूर करते

है। वे भयकरों के लिए भी भय के घर है पृथ्वी को धारण करने वाले हैं, प्रकाशवान् और ऐश्वर्यवान् हैं। विभूति और श्रेष्ठ साँप ही (उनके भूषण हैं)। सुन्दर प्रेमभाव ही उनको प्यारा है। वे संसार के स्वामी और पापों को नाश करनेवाले हैं। वे अनेक भोगों के भोक्ता हैं, भयंकर कुयोग के नाशक और दासों को आनंद-प्रद है। उनके मुख में सरस्वती रहती हैं अर्थात् बड़े वक्ता हैं। वे विष का भोजन करते हैं, पर कल्याण-कर्ता हैं; चंद्रमा, सूर्य और अग्नि उनकी तीनों आँखें है। तुलसीदासजी कहते हैं कि अरे मन, तू ऐसे कल्याण के घर, कामदेव के नाशकर्ता शिवजी को क्यों नहीं भजता?

नाँगो फिरैं, कहै माँगनो देखि "न खाँगो कछु, जनि माँगिये थोरो"।
राँकनि नाकप रीझि करैं, 'तुलसी' जग जो जुरैं जाचक जोरो।
"नाक सँवारत आयो हौं नाकहिं, नाहिं पिनाकिहिं नेकु निहोरो"।
ब्रह्म "कहै गिरिजा! सिखवो, पति रावरो दानि है बावरो भोरो" ॥१५३॥

टिप्पणी—न खाँगो कछु=मेरे पास (धन-सम्पति किसी वस्तु की भी) कमी नहीं है। **राँकनि**=रंकों को, दरिद्रों को। **नाकप**=(सं० नाक=स्वर्ग+प) इंद्र। **रीझि**=प्रसन्न होकर। **जग जो जुरैं जाचक जोरो**=संसार में जितने भी याचक जोड़े जुड़ सकते हैं, उन्हें एकत्र करते हैं। **नाक सँवारत**=स्वर्ग बनाते बनाते। **आयो हौं नाकहिं**=मेरी नाक में दम आ गया, मैं हैरान हो गया। **नाहिं पिनाकहिं नेकु निहोरो**=शिवजी मेरा थोड़ा भी एहसान नहीं मानते। **सिखवो**=हट को (कि ऐसा न करें)। **बावरो**=बावला। **भोरो**=सीधा-सादा, भोला।

भावार्थ—ब्रह्माजी पार्वतीजी से कहते हैं कि हे पार्वती, अपने पति को हटको। तुम्हारा पति दानी तो है, पर साथ ही बड़ा पागल और भोला है। (अर्थात् किसको किस प्रकार दान देना चाहिए यह ज्ञान नहीं है); नंगा होकर तो इधर-उधर घूमता फिरता है, पर भिखारियों को देख कर कहता है, कि मेरे पास कुछ कमती नहीं है, अतएव जो कुछ माँगना हो भरपूर माँग लो, थोडा मत माँगना। संसार के जितने भी भिखारी उसके जोड़े जुड़ सकते हैं जोड़ता है, और प्रसन्न होकर दरिद्रों को इन्द्र बना देता है। उन इंद्रों के लिए स्वर्ग बनाते-बनाते मेरी नाक में दम आ गया है, पर शिवजी मेरा जरा भी एहसान नहीं मानते।

विष-पावक-ब्याळ कराल गरे, सरनागत तौ तिहुँ ताप न डाढ़े।
भूत बैताल सखा, भव नाम दलै पल में भव के भय गाढ़े।

तुलसीस दरिद्र-सिरोमनि सो सुमिरे दुख दारिद होहिं न ठाढ़े ।
भौन में भाँग, धतूरोई आँगन नाँगे के आगे हैं माँगने बाढ़े ॥१५४॥

टिप्पणी—पावक = (सं०)अग्नि । **ब्याल** = साँप । **गरे** = गले में । **तिहुं-ताप** = दैहिक, दैविक, भौतिक तीन प्रकार के कष्ट । **न डाढ़े** = दग्ध नहीं होते, पीड़ित नहीं होते । **भव** = (१) शिव का नाम, (२) संसार । **दलै** = नाश करते हैं । **गाढ़े** = कठिन । **भौन** = (सं० भवन) घर । **माँगने** = भिखारी । **बाढ़े हैं** = बढ़ गये हैं ।

भावार्थ—शिवजी के कंठ में विष है, आँखों में अग्नि है और गले में भयंकर सर्प लटकाये हुए हैं, परंतु तिस पर भी शरणागत तीनों तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक अथवा विष-अग्नि सर्प) से दग्ध नहीं होते । भयंकर भूत-बैताल इनके सखा हैं और नाम इनका 'भव' है; फिर भी संसार के बड़े-बड़े भयों को क्षण में नाश कर देते हैं । तुलसीदास के स्वामी शिवजी स्वयं तो बड़े दरिद्री से हैं, पर उनको स्मरण करने से दुःख और दारिद्रय पास भी नहीं फटकते । यद्यपि (शिवजी के) घर में भंग और आँगन में धतूरे के वृक्षों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, तब भी इस नंगे के सामने माँगनेवालों की भीड़ लगी रहती है ।

सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ्यो बरदा, धरन्यौ बरदा हैं ।
धाम धतूरो बिभूति को कूरो, निवास जहाँ सब लै मरे दाहैं ।
ब्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँग की टाटनि के परदा हैं ।
राँक-सिरोमनि काकिनिभाग बिलोकत लोकप को ? करदा हैं ॥१५५॥

टिप्पणी—बरदा = (१) वर देनेवाली गंगा, (२) बैल । **धाम** = घर । **कूरो** = ढेर । **सव** = लाश । **दाहैं** = जलाते हैं । **ब्याली** = साँपों को (भूषण की तरह) धारण करनेवाला, शिवजी का नाम । **कपाली** = कपाल (खप्पर) धारण किये हुए, शिव का नाम । **ख्याली** = कौतुकी । **राँक-सिरोमनि** = (रंकशिरोमणि) दरिद्रों में श्रेष्ठ । **काकिनिभाग** = एक कौड़ी पाने की योग्यता रखनेवाला । **बिलोकत** = दयादृष्टि से देखते ही । **लोकप** = लोकपाल । **करदा** = धूल, मैल । **लोकप को** = लोकपाल क्या हैं । **करदा हैं** = धूल हैं, तुच्छ हैं ।

भावार्थ—शिवजी के सिर पर वर देनेवाली गंगाजी विराजमान् हैं, स्वयं भी वर देनेवाले (अथवा श्रेष्ठ दानी) हैं, बरदा (बैल) पर ही चढ़े रहते हैं, गृहणी पार्वती भी वर देने वाली हैं । पर घर में धतूरे और बिभूति का ही ढेर है और निवास भी वहाँ है जहाँ मृतकों के शरीर ले जाकर जलाये जाते हैं । (मसान) । सर्प और खप्पर धारण करनेवाले शिवजी बड़े कौतुकी हैं । भांग

की टट्टियों का तो घर के चारों ओर परदा है, पर दरिद्रों में श्रेष्ठ और कौड़ी पाने की योग्यता रखनेवाले को भी देखते ही इतना संपत्तिवान बना देते हैं लोकपाल भी उसके सामने क्या हैं ? केवल धूल से जान पड़ते हैं।

दानी जो चारि पदारथ को त्रिपुरारि तिहूँ पुर में सिर टीको।
भोरो भलो, भले भाय को भूखो, भलोई कियो सुमिरे 'तुलसी' को।
ता बिन आस को दास भयो, कबहूँ न मिट्यो लघु लालच जी को।
साधो कहा करि साधन तैं जोपै राधो नहीं पति पारबती को ॥१५६॥

टिप्पणी—चारि पदारथ = धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष। सिर टीको = शिरोमणि। भोरे = भोले हैं। भले भाय = सद्भाव, शुद्ध भक्ति। सुमिरे = स्मरण करने से। साधो = सिद्ध किया, लाभ उठाया। राधो = आराधना की।

भावार्थ—जो त्रिपुरारि शिवजी धर्मार्थ काममोक्ष चारों पदार्थों को देनेवाले हैं, और तीनों लोकों में सबके शिरोमणि हैं, बड़े भोले-भाले (अर्थात् थोड़े में प्रसन्न हो जाने वाले) हैं, अपने भक्तों से शुद्ध भक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहते और जिन्होंने केवल स्मरण करने से ही तुलसीदास का भला किया, ऐसे शिवजी को स्मरण करना छोड़कर तू आशा का दास बना रहा (अर्थात् सांसारिक सुखों की आशा लगाये रहा) और तेरे मन से लालच थोड़ा भी दूर न हुआ। अगर ऐसे पार्वतीपति शिवजी की आराधना नहीं की तो योगादि साधनों से तूने क्या लाभ उठाया ?

जात जरे सब लोक बिलोकि त्रिलोचन सो विष लोकि लियो है।
पान कियो विष, भूषन भो, करुना-बरुनालय साँइ हियो है।
मेरोई फोरिबे जोग कपार, किधौं कछु काहू लखाय दियो है।
काहे न कान करो बिनती 'तुलसी' कलिकाल बिहाल कियो है ॥१५७॥

टिप्पणी—लोकि लियो है = झपटकर ले लिया, देख कर विष का प्रभाव कम कर दिया। पान कियो = पी लिया। बरुनालय = (वरुण = जल + आलय = घर) समुद्र (वरुण जल के अधिष्ठाता देवता हैं)। करुना-बरुनालय = दया के सागर। किधौं कछु काहू लखाय दियो है = अथवा किसी ने आपको मेरा दोष दिखला दिया है। कान करना = (मुहावरा) सुनना। बिहाल = व्याकुल।

भावार्थ—सब लोगों को (विष से) जलता हुआ देख कर त्रिलोचन शिवजी ने उस विष को झपट कर ग्रहण कर लिया और पी गये जिससे वह भूषण की भांति कंठ में स्थित हो गया। अतः हे स्वामी, आप का हृदय तो करुणा का समुद्र है, पर मेरा ही कपाल फोड़ने योग्य है (अर्थात् मैं ही अभागा हूँ)। अथवा किसी ने आप को मेरा कोई अपराध दिखलाया है (जो आप मुझ पर कृपा नहीं

करते) तुलसीदास कहते हैं कि हे शिवजी मुझे कलियुग ने पीड़ित किया है, मेरी बिनती क्यों नहीं सुनते ।

कवित्त

खायो कालकूट, भयो अजर अमर तनु,
भवन मसान, गथ गाठरी गरद की ।
डमरु कपाल कर भूषन कराल ब्याल,
बावरे बड़े की रीझ बाहन बरद की ।
'तुलसी' बिसाल गोरे गात बिलसति भूति,
मानो हिमगिरि चारु चाँदनी सरद की ।
धर्म अर्थ काम मोक्ष बसत बिलोकनि में,
कासी करामाति जोगी जागति मरद की ॥१५८॥

टिप्पणी—कालकूट = हलाहल विष । अजर = जिसकी जरा (वृद्धावस्था) न आवे । अमर = जो मरे नहीं । भवन = घर । मसान = (सं० श्मशान) मरघट । गथ = धन । गरद = विभूति । डमरू = बाजा विशेष । रीझ = प्रसन्न होते हैं । बरद = बैल । गात = (सं० गात्र) शरीर । बिलसति = सुशोभित होती है । सरद = शरद ऋतु । चारु = सुन्दर, निर्मल । बिलोकनि = दयादृष्टि में । जोगी मरद की करामाति कासी (में) जागति = इस योगी व्यक्ति की अर्थात् शिवजी की उपर्युक्त करामात काशी में प्रकट होती है । जागति = प्रकट होती है ।

भावार्थ—शिवजी ने कालकूट विष को पिया, पर मरने के बदले उनका शरीर अजर और अमर हो गया । उनका घर श्मशान में है, भस्म की पोटली ही उनका धन है, हाथों में डमरू और खप्पर है, भयंकर साँप उनके आभूषण हैं, बड़े भारी गौर-वर्ण शरीर में विभूति इस प्रकार शोभा देती है मानो हिमालय में शरद् ऋतु की चाँदनी फैली हो; और इनकी दयादृष्टि से ही धर्मार्थ काम मोक्ष प्राप्त हो जाते हैं । तुलसीदास कहते हैं कि योगिराज शिवजी की सामर्थ्य काशी में प्रकट होती है ।

पिंगल जटा कलाप माथे पै पुनीत आप,
पावक नैना प्रताप भ्रू पर बरत है ।
लोचन बिसाल लाल, सोहै बाल चंद्र भाल,
कंठ कालकूट, ब्याल भूषन धरत है ।
सुंदर दिगंबर बिभूति, गात, भाँग खात,
रूरे संगी पूरे काल-कंटक हरत है ।
देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के,
भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत है ॥१५९॥

टिप्पणी—**पिंगल** = भूरी । **कलाप** = समूह । **पुनीत आप** = पवित्र जल अर्थात् गंगाजी । **पावक नैना** = जिसके नेत्रों में अग्नि है । **भ्रू** = भौंह । **बरत है** = बरता है, जलता है । **दिगंबर** = नग्न । **रूरे** = सुन्दर । **सृंगी** = शिवजी का बाजा । **पूरे** = बजाकर । **काल-कंटक** = मृत्यु और बाधा । **अघात न** = तृप्त नहीं होते । **आक ही के पात** = आक के पत्ते को चढ़ाने से । **औढर ढरत है** = बेतरह प्रसन्न होते हैं ।

भावार्थ—शिवजी की भूरी जटाओं के ऊपर गंगाजी विराजमान हैं, आँखो में अग्नि है जिसका प्रताप भौंहों पर दमकता है, बड़ी-बड़ी लाल आँखें हैं, ललाट पर द्वितीया का चंद्रमा सुशोभित है, कंठ में कालकूट का चिह्न वर्तमान है, साँपों के गहने पहनते हैं, सुन्दर और नग्न शरीर में विभूति लगाये हुए हैं, भाँग खाते हैं । अच्छी तरह सिंगी बाजा बजाकर मृत्यु और बाधाओं को हरते हैं । केवल आक की पत्तियों के चढ़ाने से ही प्रसन्न हो जाते हैं, और जब योगी भोलानाथ बेतरह प्रसन्न होते हैं तब देते-देते इनको तृप्ति ही नहीं होती ।

देत संपदा समेत श्रीनिकेत जाचकनि
भवन बिभूति, भाँग, बृषभ बहनु है ।
नाम बामदेव, दाहिनो सदा, असंग रंग,
अर्द्ध अंग अंगना अनंग को महनु है ।
'तुलसी' महेस को प्रभाव भाव ही सुगम,
निगम अगम हूँ को जानिबो गहनु है ।
बेष तौ भिखारि को, भयंक रूप संकर,
दयालु दीनबंधु दानि दारिद-दहनु है ॥१६०॥

टिप्पणी—**श्रीनिकेत** = (श्री = लक्ष्मी + निकेत = घर) वैकुंठ । **असंग रंग** = एकांत प्रेमी । **अंगना** = स्त्री, पार्वतीजी । **महनु** = (सं० मथन) नाशक । **भाव** = प्रेम, भक्ति । **निगम** = वेद । **अगम** = शास्त्र । **जानिबो** = जानना । **गहनु है** = कठिन है । **भयंक** = डरावना । **संकर** = (सं० शं = कल्याण = कर) कल्याणकारी । **दहनु** = जलानेवाले ।

भावार्थ—शिवजी के घर में तो विभूति, भांग और बैल की सवारी ही है, पर याचकों को धन-संपत्ति सहित लक्ष्मी का घर (बैकुंठ) ही दे डालते है । नाम तो बामदेव है पर सदा दाहिने रहते हैं (अर्थात् भक्तों पर सदा अनुकूल रहते हैं) एकाकी रहना पसंद है, आधे शरीर में स्त्री (पार्वती) हैं, पर कामदेव को भस्म करनेवाले हैं । तुलसीदास कहते हैं कि शिवजी का प्रभाव भक्ति से ही सुगम है, क्योंकि उन्हें जानना शास्त्र और वेद के लिए भी कठिन है । उनका

वेश तो भिखारियों का-सा है , रूप भयंकर है, पर वे कल्याण-कर्ता, दयालु, दीनों के बंधु और दानी हैं और दरिद्रता को दूर करनेवाले हैं ।

> चाहै न अनंग-अरि एकौ अंग मंगन को,
> देबोई पै जानिये सुभाव-सिद्ध बानि सो ।
> बारिबुंद चारि त्रिपुरारि पर डारिए तौ,
> देत फल चारि, लेत सेवा साँची मानि सो ।
> 'तुलसी' भरोसो न भवेस भोलानाथ को तौ,
> कोटिक कलेस जरौ, मरौ छार छानि सो ।
> दारिद-दमन, दुख-दोष-दाह-दावानल,
> दुनी न दयालु दूजो दानि सूलपानि सो ॥१६१॥

टिप्पणी—**अनंग-अरि** = कामदेव के शत्रु,शिवजी । **एकौ अंग** = षोडशोपचार पूजा के १६ प्रकार के अंगों में से एक भी अंग । **मंगन को** = माँगनेवाले से । **पै** = निश्चय । **सुभाव-सिद्ध** = स्वाभाविक । **बानि** = आदत । **बारिबुंद** = जल की बूँदें । **भवेस** = संसार के स्वामी । **भोलानाथ** = शिवजी का नाम । **छार छानि मरौ** = धूल छानते-छानते मर जाओ । **छानि** = ढूंढ़कर । **दुख-दोष-दाह दावानल** = दु:ख, दोष और ताप को भस्म करने के लिए दावाग्नि के समान । **दूजो** = दूसरा । **सूलपानि** = हाथ में त्रिशूल धारण करने वाले, शिवजी ।

भावार्थ—महादेवजी भिक्षुक से षोडशोपचार पूजा का एक भी अंग नहीं चाहते । देना ही उनकी स्वाभाविक आदत है, इसे निश्चय जानिए । अगर शिवजी पर चार बूँदें जल की छिड़का दो तो वे उसे सच्ची सेवा मान कर ग्रहण करते है और धर्मार्थ काम मोक्ष चारों फल दे देते हैं । तुलसीदास कहते है कि अगर संसार के स्वामी शिवजी का भरोसा नही है, तो चाहे करोड़ों कष्ट उठाओ, सब जगह की धूल छान कर मर जाओ, तो भी कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा । दारिद्रय को नाश करनेवाला, दु:ख, दोष और संतापों को मिटानेवाला दानी और दयालु संसार में शिवजी के समान दूसरा नहीं है ।

> काहे को अनेक देव सेवत जागै मसान,
> खोवत अपान, सठ होत हठि प्रेत रे !
> काहे को उपाय कोटि करत मरत धाय,
> जाचत नरेस देस देस के, अचेत रे !
> 'तुलसी' प्रतीति बिनु त्यागै तै प्रयाग तनु,
> धन ही के हेतु दान देत कुरु-खेत रे !
> पात द्वै धतूरे के दै, भोरेकै भवेस सों
> सुरेस हू की संपदा सुभाय सों न लेत रे ॥१६२

टिप्पणी—**जागै मसान**=मसाल जगाना, अमावस्या की रात को श्मशान मे उसी दिन के मरे हुए मनुष्य की लाश पर बैठ कर मंत्र जपते है। इसमे अनेक बाधाएँ होती हैं। पर मंत्र सिद्ध होने पर यथेष्ट फल मिलता है। **अपान**=अपनापन, आत्मसम्मान। **भोरे कै**=भोला भाला बनाकर। **तैं**=तू। **भवेस**=संसार के स्वामी, शिवजी।

भावार्थ—अरे मूर्ख, तू अनेक देवताओं की सेवा क्यों करता फिरता है? क्यों मसान जगाता है? क्यों आत्मसम्मान खोता है? और क्यों हठ करके प्रेत बनता है? अरे बेसमझ! तू क्यों करोड़ों उपाय करता हुआ इधर-उधर दौड कर मरता है और देश-देश के राजाओं से क्यों माँगता फिरता है? तुलसीदास कहते हैं कि दूसरे जन्म मे सकल पदार्थों को पाने के लिए बिना विश्राम के भी प्रयाग मे देह-त्याग क्यों करता है? परलोक और अतुल धन-वैभव पाने के लिए कुरुक्षेत्र में दान क्यों देता है? धतूरे के दो पत्ते शिवजी को देकर उनको भोरा कर, संसार के स्वामी से सहज ही मे इन्द्र का ऐश्वर्य क्यों नही प्राप्त कर लेता?

> **स्यंदन, गयंद, बाजिराजि, भले भले भट,**
> **धन धाम-निकर, करनि हू न पूजै क्वै।**
> **बनिता बिनीत, पूत पावन सोहावन औ**
> **बिनय, बिबेक, बिद्या सुभग, सरीर ज्वै।**
> **इहाँ ऐसो सुख, परलोक, सिवलोक ओक,**
> **जाको फल 'तुलसी' सो सुनौ सावधान ह्वै।**
> **जानें, बिनु जानें, कै रिसानें, केलि कबहुँक,**
> **सिवहिं चढ़ाये ह्वै हैं बेल के पतौवा द्वै ॥१६३॥**

टिप्पणी—**स्यंदन**=रथ। **गयंद**=(सं० गजेंद्र) हाथी। **बाजिराजि**=घोड़ों की पंक्ति। **भट**=योद्धा। **निकर**=समूह। **करनिहू न पूजै क्वै**=करतूत म कोई बराबरी नही करता। **क्वै**=कोई। **ज्वै**=जो कुछ। **इहाँ**=इस लोक में। **ओक**=घर। **कै**=अथवा। **रिसानें**=क्रोध में। **केलि**=खेल मे ही। **चढ़ाये ह्वै हैं**=चढाये होंगे। **पतौवा**=पत्ते। **अलंकार**—परिवृत्त।

भावार्थ—रथ, हाथी, घोड़े, अच्छे-अच्छे योद्धा, धन और घरों का समूह, सबसे बढ़कर करतूत, विनीत पत्नी, पवित्र आचरण वाला और सुन्दर पुत्र, विनय, सद्सद का ज्ञान, विद्या, सुन्दर शरीर आदि जो कुछ भी सुन्दर पदार्थ है (सब प्राप्त), इस लोक मे तो इस प्रकार का सुख और मरने पर अन्त में शिव-लोक की प्राप्ति- यह सब जिस कर्म का फल है वह सावधान होकर तुलसी

से सुन लो, (कि) ये सब फल पानेवाले ने जानकर या बेजाने ही, रिस में या खेल में कभी शिव पर दो-दो बेलपत्र चढ़ा दिये होंगे ।

रति सी रमनि, सिंधु-मेखला-अवनिपति,
औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारिकै ।
संपदा समाज देखि लाज सुरराज हू के,
सुख सब बिधि बिधि दीन्हें हैं सँवारि कै ।
इहाँ ऐसो सुख, सुरलोक सुरनाथ-पद,
जाको फल 'तुलसी' सो कहैगो बिचारि कै ।
आक के पतौवा चारि, फूल के धतूरे के द्वै,
दीन्हें ह्वै हैं बारक पुरारि पर डारि कै ॥१६४॥

टिप्पणी—रति—कामदेव की स्त्री । रमनि = (सं० रमणी) स्त्री । सिंधु-मेखला-अवनि-पति = समुद्र पर्यंत का राजा । सिंधु-मेखला-अवनि = सिंधु है करधनी जिसकी ऐसी अवनि (बहुव्रीहि समास)। औनिप । (सं० अवनिप) राजा । सुरनाथ = इंद्र । आक = मदार । कै = अथवा । डारि दीन्हें ह्वै हैं = चढ़ाए होंगे । बारक = एक बार, कभी । अलंकार परिवृत्त

भावार्थ—रति की तरह सुन्दरी पत्नी हो, समुद्र-पर्यंत पृथ्वी का राज्य हो, अनेक राजा उससे हार मानकर हाथ जोड़े हुए उसके सामने खड़े हों, उसकी संपत्ति के समूह को देखकर इन्द्र को भी लज्जा हो, ब्रह्मा ने भी सब प्रकार के सुख एकत्र कर उसको दिये हों, इस लोक में तो ऐसा सुख भोग करे, और मरने पर स्वर्ग में इन्द्र की पदवी को पावे । यह सब जिस कर्म का फल है, वह तुलसीदास विचार कर कहता हूँ कि, उसने कभी (इस जन्म में अथवा पूर्व जन्म में) एक बार शिवजी पर आक के चार पत्ते अथवा धतूरे के दो फूल चढ़ाये होंगे ।

देवसरि सेवौं बामदेव गाउँ रावरे ही,
नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं ।
दीबे जोग 'तुलसी' न लेत काहू को कछुक,
लिखी न भलाई भाल, पोच न करत हौं ।
एते पर हू जो, कोऊ रावरो ह्वै जोर करै,
ताको जोर, देव दीन द्वारे गुदरत हौं ।
पाइकै उराहनो, उराहनो न दीजै मोहि,
काल-कला कासीनाथ कहे निबरत हौं ॥१६५॥

टिप्पणी—देवसरि = गंगा । बामदेव = शिवजी । उदर = पेट । एते पर हू = इतने पर भी । रावरो ह्वै = आपका जन होकर । जोर करै = बल प्रयोग

करे । मुदरत हौं=कहे देता हूँ, प्रकट कर देता हूँ। उराहनो=उलाहना, उपालम्भ । काल-कला=कलिकाल की करनी । कहे=कहकर । निबरत हौं =छुटकारा पाता हूँ ।

प्रकरण—एक बार शिवोपासकों ने तुलसीदास के प्रति ईर्ष्या कर उनको काशी से चले जाने को विवश किया। गोसाईंजी विश्वनाथजी के मन्दिर के कपाट पर उपर्युक्त छंद लिख कर चले गये । दूसरे दिन शिवभक्तों को कपाट बंद मिले और भीतर से वाणी हुई कि तुमने भगवद्भक्त का अपमान करके भगवान् का अपराध किया है। यह सुनकर से सब तुलसीदासजी को लौटा लाये।

भावार्थ—हे शिवजी, मैं आपके गाँव काशी में ही गंगा का सेवन करता हूँ, और रामचन्द्रजी के नाम से माँग कर पेट भरता हूँ । अगर मुझे किसी को देने की योग्यता नही है तो मैं किसी से कुछ लेता भी नहीं हूँ । किसी का उपकार करना तो मेरे भाग्य में नहीं लिखा है पर मैं किसी की हानि भी नहीं करता । इतने पर भी अगर आपका कोई भक्त मुझे कष्ट दे तो हे देव, मैं दीन होकर आप ही के पास उसका कष्ट देना निवेदन किये देता हूँ । मैं रामचंद्रजी का भक्त हूँ, अतः रामचन्द्रजी से उलाहना पाकर (कि आपने अपने भक्तों से मेरे भक्त की रक्षा क्यों न की) आप मुझे उलाहना न दीजिएगा (कि तुमने मुझसे अपना दुःख क्यों नहीं कहा) । अतः हे काशीनाथ, मैं आपसे अपना दुःख कहके छुटकारा पाता हूँ, जिससे आप समय पर उलाहना न दें ।

चेरो राम राय को, सुजस सुनि तेरो हर !
पाइ तर आइ रह्यो सुरसरि तीर हौं ।
बामदेव, राम को सुभाव सील जानि जिय,
नातो नेह जानियत, रघुबीर भीर हौं ।
अधिभूत-बेदन बिषम होत, भूतनाथ !
'तुलसी' बिकल, पाहि, पचत कुपीर हौं ।
मारिए तो अनायास कासी बास खास फल,
ज्याइए तो कृपा करि निरुज सरीर हौं ॥१६६॥

टिप्पणी—**चेरो**=दास । **हर**=शिव । **रघुबीर भीर हौं**=मैं केवल रामचंद्रजी से ही डरता हूँ । **अधिभूत**=आधिभौतिक बाधा । **बेदन**=वेदना, कष्ट, पीडा । **बिषम**=असह्य । **पाहि**=मेरी रक्षा करो । **कुपीर पचत**=बुरी पीडा से पीड़ित हूँ । **अनायास**=सहज ही । **खास**=प्रसिद्ध । **निरुज** (सं०)= रोगहीन

भावार्थ—हे शिवजी, मैं राजा रामचन्द्रजी का दास हूँ, और आपका सुयश सुनकर आपके चरणों के पास आकर गंगा के किनारे रहता हूँ। हे वामदेव, आप अपने मन में राम का शील-स्वभाव जानते ही हो, और उनका मुझसे स्नेह का संबंध है यह भी जानते ही हो। मैं केवल रामचन्द्रजी से ही डरता हूँ। हे भूतनाथ, मुझे बड़ी विषम आधिभौतिक वेदना हो रही है, मैं (तुलसीदास) अत्यन्त व्याकुल हूँ। मेरी रक्षा करो। यह पीड़ा मुझे बुरी तरह से दुःख दे रही है। अगर मुझे मार डाले तो मुख्य फल यही है कि मुझे सहज ही काशी वास का फल प्राप्त होगा। अगर जीवित रखना हो तो ऐसी कृपा कीजिए जिससे मेरा शरीर नीरोग रहे।

जीबे की न लालसा, दयाल महादेव ! मोहिं,
मालूम है तोहिं मरिबेई को रहतु हौं।
कामरिपु ! राम के गुलामनि को कामतरु,
अवलंब जगदंब सहित चहतु हौं।
रोग भयो भूत सो, कुसूत भयो 'तुलसी' को,
भूतनाथ पाहि पदपंकज गहतु हौं।
ज्याइए तौ जानकीरमन जन जानि जिय,
मारिए तौ माँगी मीचु सूधियै कहतु हौं ॥१६७॥

टिप्पणी—**जीबे को**=जीवित रहने की। **लालसा**=इच्छा। **कामतरु**=कल्पवृक्ष, कामनाओं को देनेवाला। **कुसूत**=कुप्रबंध, असुविधा। **तुलसी को**=तुलसीदास के लिए। **पाहि**=रक्षा कीजिए। **गहतु हौं**=पकड़ता हूँ। **ज्याइए**=जीवित रखिए तो।

भावार्थ—रोग से पीड़ित होकर तुलसीदास शिवजी से प्रार्थना करते हैं कि हे दयालु शिवजी, मुझे जीने की इच्छा नहीं है। आपको मालूम ही है कि मैं काशी में मरकर मोक्ष पाने के लिए ही रहता हूँ। हे कामदेव के शत्रु शिवजी आप रामजी के भक्तों की इच्छाएँ पूरी करने के लिए कल्पवृक्ष के समान हैं अतएव मैं माता पार्वती सहित आपका सहारा चाहता हूँ। यह रोग भूत की तरह मुझे पीड़ित करता है जिससे मेरे लिए सब प्रकार की असुविधा हो रही है। अतः हे भूतनाथ, इस रोग रूपी भूत से मेरी रक्षा करो। मैं आपके चरण कमलों को हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि अगर आप मुझे सीतापति रामचन्द्रजी का भक्त जानकर जिला दें तो अच्छा ही है, नहीं तो मैं आपसे सच

कहता हूँ कि अगर आप मुझे मार दें तो मुझे मुँह माँगी मौत मिलेगी (क्योंकि मैं तो काशी में मरने ही के लिए रहता हूँ)।

भूतभव ! भवत पिसाच-भूत-प्रेत -प्रिय,
आपनो समाज सिव ! आपु नीके जानिये।
नाना बेष, बाहन, बिभूषन, बसन, बास,
खान पान, बलि पूजा बिधि को बखानिये ?
राम के गुलामनि की रीति प्रीति सूधी सब,
सबसों सनेह सबही को सनमानिये।
'तुलसी' की सुधरै सुधारे भूतनाथ ही के,
मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिये ॥१६८॥

टिप्पणी—भूतभव = पंच महाभूतों के कारण स्वरूप। भवत = आप। नीके = अच्छी तरह। बसन = वस्त्र। बास = निवासस्थान। को बखानिए = कौन वर्णन कर सकता है। भवानिये = भवानी ही (पार्वतीजी ही)। **अलंकार**—तुल्ययोगिता।

भावार्थ—हे पंच महाभूतों के कारण शिवजी, आप पिशाच, भूत और प्रेतों के प्रिय हैं (सब भूत आपके सेवक हैं)। अत: आप अपने (भूत-प्रेतादि के) समाज को अच्छी प्रकार जानते हैं। उनके अनेक प्रकार के वेष, अनेक प्रकार के बाहन, अनेक प्रकार के आभूषण, अनेक प्रकार के वस्त्र, अनेक प्रकार के निवासस्थान, अनेक ढंग के खानपान और बलिपूजा के विधान का वर्णन कौन कर सकता है ? (मैं कहाँ तक उनको प्रसन्न करने की सामग्री जुटाऊँ)। रामचन्द्रजी के भक्तों की तो रीति-प्रीति सब सीधी-सादी है। वे सबसे स्नेह करते हैं और सबका सम्मान भी करते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरी बात तो शिवजी के सुधारने से ही सुधरेगी, क्योंकि मेरे माई, बाप, गुरु, सब कुछ श्री शिवपार्वती ही तो हैं।

गौरीनाथ, भोलानाथ, भवत भवानीनाथ,
बिस्वनाथ-पुर फिरी आन कलिकाल की।
संकर से नर, गिरिजा सी नारी कासी-बासी,
बेद कही, सही ससिसेखर कृपाल की।
छमुख गनेस तें महेस के पियारे लोग,
बिकल बिलोकियत, नगरी बिहाल की।
पुरी-सुरबेलि, केलि काटत किरात-कलि,
निठुर ! निहारिये उघारि डीठि भाल की ॥१६९॥

शब्दार्थ—भवत = आप । आन = दुहाई । सही की = समर्थन किया । ससिसेखर = (शशिशेखर) शिवजी । छमुख = कार्तिकेय । बिहाल = व्याकल । सुरबेलि = कल्पलता । केलि = खेल ही में । किरातकलि = कलियुग रूपी किरात । डीठि भाल की = ललाट पर का तीसरा नेत्र (जिसको उघारने से कामदेव जलकर राख हो गया था) ।

भावार्थ—हे शिवजी, आप गौरीनाथ, भोलानाथ और भवानीनाथ हैं, आपकी पुरी काशी में कलियुग की दुहाई फिरी है । वेदों ने कहा है कि काशी के रहनेवाले पुरुष महादेवजी के समान और स्त्रियाँ पार्वजी के समान हैं । इस बात को कृपालु शशिशेखर ने अर्थात् आपने समर्थन किया है । जो लोग शिवजी को कार्तिकेय और गणेश से भी प्यारे थे वे ही बड़े व्याकुल दिखलाई देते हैं । सारी काशीपुरी को इस कलियुग ने व्याकूल कर दिया है । यह कलियुग रूपी किरात काशी रूपी कल्पलता को खेल ही खेल में काटना चाहता है । हे निष्ठुर शिवजी, अपने ललाट को आँख को खोलकर इसकी ओर देखिए (अर्थात् उसको भस्म कीजिए) ।

नोट—इस छंद से अंत तक के छंद उस समय कहे गये हैं जब काशी में महामारी फैली थी ।

> **ठाकुर महेस ठकुराइनि उमा सी जहाँ,**
> **लोक बेद हू बिदित महिमा ठहर की ।**
> **भट रुद्रगन, पूत गनपति सेनापति,**
> **कलिकाल की कुचाल काहू तौ न हरकी ।**
> **बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी,**
> **बूझिये न ऐसी गति संकर-सहर की ।**
> **कैसे कहै 'तुलसी' बृषासुर के बरदानि,**
> **बानि जानि सुधा तजि पियनि जहर की ॥१७०॥**

टिप्पणी—ठाकुर = मालिक । ठकुराइन = मालकिन । उमा = पार्वती । ठहर = स्थान । सेनापति = कार्तिकेय । हरकी = मना की, रोकी । बीसी बिस्वनाथ की = साठ (प्रभव से क्षय तक) संवत्सरों को तीन भागों में बाँटा गया है प्रथम बीस ब्रह्मा की बीसी, द्वितीय बीस विष्णु की बीसी, अन्तिम बीस संवत्सर विश्वनाथ की बीसी कहलाते हैं । यह शिवजी की बीसी (रुद्रबीसी) संवत् १६६५ से १६८५ तक रही । बृषासुर = भस्मासुर का दूसरा नाम है ।

भावार्थ—जहाँ के मालिक शिवजी और मालकिन पार्वतीजी के सदृश हैं, जिस स्थान की महिमा लोक और वेद दोनों में प्रकट है, जहाँ योद्धा वीर

भद्रादि शिवजी के गण हैं, जिनके दोनों पुत्र गणपति और सेनापति सरीखे है, वहाँ इस कलियुग की कुचाल को किसी ने नहीं रोका। इस रुद्रबीसी में शिवजी की पुरी में बड़ा भारी दुःख है। शंकरजी के समान कल्याणकर्ता के नगर की ऐसी दशा क्यों हुई यह समझ में नहीं आता। उनको तुलसीदास कैसे कह सकते हैं ? हे वृषासुर को वरदान देनेवाले शिवजी, आपकी तो अमृत छोड़कर विष पीने की आदत प्रकट है। (अतः आप कलियुग को क्यों बरजेंगे ?)

नोट—इस छंद में ध्वनि यह है कि काशी की दुर्दशा आप स्वयं करा रहे हैं, क्योंकि आपकी आदत है कि अंडबंड काम कर बैठते हैं। भस्मासुर को वरदान देकर तथा हलाहल पीकर आप स्वयं हैरान हुए, वैसे ही यह भी आपकी कोई विलक्षण लीला होगी, तुलसी आपसे क्या कहे।

> **लोक बेद हू बिदित बारानसी की बड़ाई,**
> **बासी नरनारि ईस अंबिका-सरूप हैं।**
> **कालनाथ कोतवाल, दंड-कारि दंडपानि,**
> **सभासद गनप से अमित अनूप हैं।**
> **तहाँऊ कुचालि कलिकाल की कुरीति, कैधों,**
> **जानत न मूढ़, इहाँ भूतनाथ भूप हैं।**
> **फलैं फूलैं फैलैं खल, सीदैं साधु पल पल,**
> **खाती दीपमालिका, ठठाइयत सूप हैं ॥१७१॥**

टिप्पणी—**बासी** = रहनेवाले। **कालनाथ** = कालभैरवजी। **दंडकारी** = दंड देनेवाले। **दंडपानि** = दंडपाणि भैरवजी। **गनप** = गणेशजी। **अमित** = अनेक। **तहाऊँ** = वहाँ भी। **कैधों** = या तो, अथवा। **मूढ़** = मूर्ख कलियुग। **फलैं फूलैं** = सफल मनोरथ होते हैं। **सीदैं** = कष्ट पाते हैं। **पल-पल** = हर घड़ी। '**खाती दीपमालिका, ठठाइयत सूप हैं**' = (कहावत है) दिवाली को रात भर तो घी-तेल दियों में भरा जाता है पर प्रभात होते समय सूप खटखटाए जाते हैं, अर्थात् दुष्टता तो करें दुष्ट और वे ही मौज उड़ावें पर दुःख पावें सज्जन। **अलंकार**—छेकोक्ति।

भावार्थ—काशी की बड़ाई लोक और वेद दोनों में विदित है। यहाँ के निवासी पुरुष और स्त्री शिव-पार्वतीजी के स्वरूप हैं। कालभैरवजी के समान तो यहाँ के कोतवाल हैं, दंडपाणि भैरवजी के समान यहाँ दंड देनेवाले जज है, और गणेशजी के समान अनेक अद्वितीय सभासद हैं। यहाँ भी कुचालि कलि-युग ने अपनी कुरीति को चलाया (बड़ा आश्चर्य है) अथवा मूर्ख कलियुग यह

नहीं जानता कि यहाँ के राजा भूतनाथ (शिवजी) हैं। (उनका प्रभाव) ... ज्ञात नहीं है) क्योंकि दुर्जन तो मौज उड़ाते हैं, और सज्जन लोग हर घड़ी दु... पा रहे हैं। मानो वही कहावत है कि घी तो खाय दीपमालिका और पीटा जाय सूप।

> पंचकोस पुन्यकोस स्वारथ परारथ को,
> जानि आप आपने सुपास बास दियो है।
> नीच नरनारि न सँभारि सके आदर,
> लहत फल कादर बिचारि जो न कियो है।
> बारी बारानसी बिनु कहे चक्रपानि चक्र,
> मानि हितहानि सो मुरारि मन भियो है।
> रोष में भरोसो एक, आसुतोष कहि जात,
> बिकल बिलोकि लोक कालकूट पियो है ॥१७२॥

टिप्पणी—**पंचकोस**=असी से वरुणा नदी तक काशी की परिक्रमा पाँच कोस की है। **परारथ**=परमारथ, पारलौकिक सुख। **सुपास**=(स्वपार्श्व) अपने पास। **बारी**=जला दी। **चक्रपानि**=श्रीकृष्ण। **हितहानि**=अपने मित्र शिवजी की हानि मानकर। **मुरारि**=मुर नामक दैत्य के शत्रु श्रीकृष्ण। **मन भियो है**=मन में संकुचित हुए, डरे। **आसुतोष**=शीघ्र ही सन्तुष्ट हो जाने-वाले शिवजी।

भावार्थ—यह पंचकोसी के भीतर की भूमि पुण्यमय है और स्वार्थ तथा परमार्थ साधने के लिए बहुत उत्तम है, ऐसा सोचकर तो आपने यहाँ के निवा-सियों को कृपा करके अपने पास बसाया, पर वे नीच प्रकृति नरनारी इस आदर को न सँभाल सके (मोह-अभिमानवश सुकर्म त्याग कर कुकर्म करने लगे) अतः वे कायर जन अपने अविचार का फल पाते हैं (अर्थात् हे शिवजी ! तुम्हारा कुछ दोष नहीं, यह महामारी यहाँ के निवासियों के कर्मों का फल है)। पर आपसे तो उस समय श्रीकृष्णजी भी (जिन्होंने मुर नामक प्रबल दैत्य को मारा था) प्रेम-हानि समझ कर डर गये थे जब मिथ्या वासुदेव को मारने के लिए उन्होंने सुदर्शन चक्र छोड़ा था और उसने उसे मारकर काशी नगरी को भी (बिना कृष्ण की आज्ञा के ही) जला दिया था—(सो क्या कलिकाल आप से न डरेगा?) और यदि यह कहो कि हम ही ने यहाँ के वासियों के कुकर्मों से नाराज होकर उन्हें दंड देने के हेतु यह महामारी फैलाई है तो हे शंकर, आपके इस क्रोध के समय में भी मुझे एक भरोसा है और मैं उसे कहे डालता हूँ कि आप

का नाम 'आशुतोष' है और आप ऐसे दयालु हैं कि (पहले एक समय) आपने लोगों को बिकल देखकर कालकूट पी लिया था, तो क्या अब आप इस महामारी के विष को नहीं पी सकते—अर्थात् पी सकते हैं—अतः इस महामारी को आप पी जाइए।

नोट—एक समय काशी के एक 'मिथ्या वासुदेव' नामक राजा ने द्वारका पर चढ़ाई की। कृष्ण ने सुदर्शन चक्र छोड़ा। चक्र ने उस राजा को परास्त करके उसकी काशी को भी जला डाला था। उस समय कृष्णजी ने शंकर से माफी माँगी थी कि चक्र ने बिना मेरी आज्ञा के ही तुम्हारी पुरी जला दी है, अतः मुझे क्षमा कीजिए।

रचत बिरंचि, हरि पालत, हरत हर,
तेरे ही प्रसाद जग, अगजग-पालिके।
तोहि में बिकास, बिस्व तोहि में बिलास सब,
तोहि में समात मातु भूमिधर बालिके।
दीजै अवलंब जगदंब न बिलंब कीजे,
करुना-तरंगिनी कृपा-तरंग-मालिके।
रोष महामारी, परितोष महतारी दुनी
देखिये दुखारी मुनि-मानस-मरालिके ॥१७३॥

टिप्पणी—**बिरंचि**=ब्रह्मा। **हरि**=विष्णु। **हरत**=संहार करते हैं। **हर**=शिव। **अग**=अचर। **जग**=जंगम, चर। **बिकास**=उत्पत्ति। **बिस्व**=सृष्टि। **बिलास**=पालन। **भूमिधर**=पर्वत (हिमालय)। **करुनातरंगिनि**=करुणा की नदी अर्थात् करुणामयी। **कृपातरंगमालिका**=कृपा रूपी तरंगों की माला, अर्थात् अत्यंत कृपा करनेवाली। **परितोष**=संतुष्ट हो। **मुनिमानस-मरालिके**=मुनियों के मनरूपी मानसरोवर के लिए हंसी के समान। (अर्थात् जैसे हंसी मानसरोवर में रहती है वैसे ही तुम मुनियों के मन में बसती हो)। **अलंकार**—परिकरांकुर ('जगदंब' शब्द साभिप्राय है)।

भावार्थ—हे चराचर का पालन करनेवाली, तुम्हारी ही प्रसन्नता (इच्छा) से ब्रह्मा संसार को रचते हैं, विष्णु पालन करते हैं, और शिवजी संहार करते हैं। हे हिमालय की पुत्री पार्वतीजी, सारी सृष्टि तुम्हीं से उत्पन्न होती है, तुम्हीं से इसका पालन होता है, और हे माता, अंत में यह संसार तुम्हीं में समाता है। हे करुणा की नदी और कृपा की तरंगमाला जगदंबा, अब सब को सहारा दीजिए, विलंब न कीजिए, यह महामारी इस समय क्रुद्ध होकर सब जगत् को खाये जाती है और तू जगन्माता होकर संतुष्ट होकर बेफिकिर बैठी है। अतः

हे मुनियों के मन रूपी मानसरोवर के लिए हंसी के समान जगदंबे ! संसार को दीन और दुःखी देखकर सब पुत्रों पर प्रसन्न होकर इसका निवारण कीजिए।

निपट अनेरे, अघ औगुन बसेरे, नर
नारि ये घनेरे जगदंब चेरी चेरे हैं।
दारिदी दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीरु,
लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं।
लोकरीति राखी राम, साखी बामदेव जान,
जन की बिनति मानि, मातु ! कहि मेरे हैं।
महामायी, महेसानि, महिमा की खानि, मोद,
मंगल की रासि, दास कासी बासी तेरे हैं ॥१७४॥

टिप्पणी—**निपट** = अत्यंत। **बसेरे** = स्थान, निवासस्थान। **औगुन** = अवगुण। **घनेरे** = बहुत। **अनेरे** = अनीति में रति। **चेरी चेरे** = दासी-दास। **भूसुर** = ब्राह्मण। **कलिमल** = पाप। **लोकरीति राखी** = अपने पुर (अयोध्या) वासियों को सुखी रखा। **साखी** = (सं० साक्षी) गवाह। **महेसानि** = पार्वतीजी। **मोद** = आनंद। **महामाई** = जगदंबा।

भावार्थ—हे जगदंबा, ये निपट अन्यायी, पाप और अवगुणों के घर काशीवासी स्त्री-पुरुष, तेरे ही दास-दासी हैं। यद्यपि इनके आचरण ऐसे हैं कि दरिद्री और दुखी ब्राह्मण और भिखारियों को देखकर डरते हैं (कि कहीं कुछ माँग न बैठें—इतने अदानियाँ हैं) और लोभ, मोह, काम, क्रोध की जमात से घिरे रहते हैं। (तो भी तुझे इन पर दया ही करनी चाहिए)। श्रीरामजी ने इस लोकरीति की (दासी-दासों पर सदा दया करते रहना) अच्छी रक्षा की है, जिसके साक्षी महादेवजी हैं। (तुम भी लोकरीति रखो) मुझ दास की विनय मानकर, हे माता ! तुम भी (महामारी से) कह दो कि ये मेरे दास-दासी हैं, इन्हें मत सता। हे महामाया, हे महेशानी, तुम महिमा की खानि और मोद तथा मंगल की राशि हो, और काशीवासी वास्तव में तेरे सेवक हैं (तुम्हें उन पर दया करनी ही पड़ेगी, नहीं तो संसार में तुम्हारी निन्दा होगी और तुम जगदम्बा कैसे कहलाओगी)।

लोगन के पाप, कैधौं सिद्ध सुर-साप कैधौं
काल के प्रताप कासी तिहूँ-ताप तई है।
ऊँचे, नीचे बीच के, धनिक, रंक, राजा, राय
हठनि बजाय, करि डीठि, पीठि दई है।

देवता निहोरे, महामारिन्ह सों कर जोरे,
भोरानाथ जानि भोरे अपनी सी ठई है।
करुनानिधान हनुमान बीर बलवान
जसरासि जहाँ तहाँ तैं ही लूटि लई है ॥१७५॥

टिप्पणी—कैधौं = अथवा। सिद्ध-सुर-साप = सिद्ध और देवताओं के शाप से। तिहुँ-ताप-तई है = दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों तापों से तप्त हुई है। राय = छोटे-छोटे राजा। हठनि बजाय = हठ करके, खुल्लमखुल्ला। करि डीठि = देखकर। पीठि दई है = विमुख हुए हैं। निहोरे = बिनती की। अपनी सी ठई है = अपनी चाही बात की है, अपना प्रभाव फैलाया है। जस रासि = यश का ढेर। तैंही = तुमने ही।

भावार्थ—लोगों के पाप के कारण, अथवा सिद्ध और देवताओं के शाप के वश, अथवा समय के फेर से इस समय काशी दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों प्रकार के कष्टों से पीड़ित है। उत्तम, अधम, मध्यम, धनी, दरिद्री, बड़े-बड़े राजा, छोटे राजा, सब हठपूर्वक खुले मैदान जान-बूझकर धर्म-कर्म से विमुख हो बैठे हैं (देख-सुनकर जनता की सहायता करने से विमुख हो गये हैं)। देवताओं से भी महामारी के निवारण के लिए प्रार्थना की, स्वयं महामारी से भी हाथ जोड़कर बिनती की; पर सब निष्फल हुआ। शिवजी को सीधा-सादा जानकर महामारी ने अपनी मनसा पूरी की अर्थात् जोजी चाहा सो किया। ऐसे समय में हे दयासागर, बीर और बलवान हनुमानजी, महामारी का निवारण करके आप ही यश लीजिए क्योंकि कठिन समयों में जहाँ-तहाँ आप ही ने यश की ढेरी लूटी है (यश प्राप्त किया है)।

संकर-सहर सर, नरनारि बारिचर,
बिकल सकल महामारी मांजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात,
भभरि भगात, जल थल मीचु मई है।
देव न दयालु, महिपाल न कृपालु चित,
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत,
रामहू की बिगरी तुहीं सुधारि लई है ॥१७६॥

टिप्पणी—संकर-सहर = काशी। सर = तालाब। बारिचर = जलजंतु। हहरात = हाय हाय करते हुए। भभरि = भयभीत होकर, घबराकर। मीचु मई = मृत्युमय। मीचु = (सं०) (प्रा० मिच्चु)। पाहि = रक्षा क

भावार्थ—काशी मानो एक तालाब है, वहां के स्त्री-पुरुष मानो उस तालाब के जलजंतु हैं, वे जलजतु महामारी रूपी मांजा (वर्षा ऋतु के आरंभ का जल) के पानी से व्याकुल हो गये हैं, और उछलते हुए पानी के ऊपर उतराते हुए हाय-हाय करके मरे जाते हैं, और कोई घबराकर भाग रहे हैं। जल-थल सब मृत्युमय है, देवता भी दया नही करते, राजाओं का चित्त भी कृपापूर्ण नही है, क्योंकि काशी में नित्य ही नई-नई अनीति बढ़ रही है। हे रामचंद्रजी, तुम्हीं रक्षा करो। हे रामदूत हनुमानजी तुम्ही रक्षा करो क्योंकि तुमने तो रामचंद्रजी की भी बिगड़ी बात सुधार ली थी (रामचन्द्रजी के भाई लक्ष्मण को सजीवन बूटी लाकर जिलाया था)।

एक तो कराल कलिकाल सूलमूल ता में,
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।
बेद धर्म दूरि गए, भूमि चोर भूप भए,
साधु सीद्यमान, जानि रीति पाप-पीन की।
दूबरे को दूसरो न द्वार, राम दयाधाम,
रावरी ही गति बल बिभव-बिहीन की।
लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहिं,
महाराज आजु जौ न देत दादि दीन की ।।१७७।।

टिप्पणी—**सूलमूल**=दुखों का मूल कारण। **कोढ़ में की खाजु सी**= (कहावत) एक तो कोढ़ स्वयं एक भयानक और कष्टप्रद रोग है, अगर उसमे खाज भी हो जाय तो कष्ट का क्या ठिकाना; अर्थात् और भी अधिक दु:ख देनेवाला। **सनीचरी है मीन की**=मीन राशि पर शनैश्चर की स्थिति की दशा। इसका फल है राजा-प्रजा दोनों का नाश। यह योग संवत् १६६९ के आरम्भ से १६७१ के मध्य तक पड़ा था। **सीद्यमानों**=कष्ट पाते हैं। **जानि रीति पाप पीन की**=इसे बड़े भारी दुष्ट पाप का फल ही जानो। **दूबरे**= (स०) दुर्बल। **द्वार**=गति, शरण। **बिभव**=ऐश्वर्य। **बिरुद**=यश। **जौ**= अगर। **दादि न देत**—न्याय नहीं करते हो तो।

भावार्थ—एक तो स्वयं भयंकर कलियुग ही दुःखदाई है, उस पर भी 'कोढ़ में खाज' की तरह महा उपद्रवकारी मीन की सनीचरी पड़ गई है, जिससे वेद और धर्म लुप्त हो गये हैं, राजा अपनी प्रजा की भूमि का हरण कर लेते हैं, और सज्जन लोग कष्ट पा रहे हैं। इसे भारी पाप का ही परिणाम समझो। हे दयालु रामचंद्रजी, दुर्बल के लिए आपके अतिरिक्त दूसरे का आश्रय नही है। बल और ऐश्वर्य से रहित मनुष्य के लिए आप ही शरण हैं। हे महाराज

अगर आज आप दोनों की फरियाद न सुनेंगे तो निश्चय ही आपके उस सुशोभित यश को लज्जा लगेगी (अर्थात् आप जो दीन-बन्धु कहलाते हैं उस पर बट्टा लगेगा) ।

रामनाम मातुपितु स्वामि, समरथ हितु,
आस रामनाम की, भरोसो रामनाम को।
प्रेम रामनाम ही सों, नेम रामनाम ही को,
जानौं न मरम पद दाहिनो न बाम को।
स्वारथ सकल, परमारथ को रामनाम,
रामनाम-हीन 'तुलसी' न काहू काम को।
राम की सपथ, सरबस मेरे रामनाम,
कामधेनु कामतरु मो से छीन छाम को ॥१७८॥

टिप्पणी—हितु = हितकारी, मित्र । नेम = (सं०) नियम । मरम = भेद । अन्वय—न दाहिनो न बाम पद को मरम जानौं = सुमार्ग और कुमार्ग का भेद नहीं जानता हूं । कामतरु = कल्पवृक्ष । छीन = (सं०) क्षीण, दुर्बल । छाम = (सं० क्षाम) दुर्बल । छीन छाम = अत्यन्त दुर्बल ।

भावार्थ—रामनाम ही मेरा माता, पिता, स्वामी और समर्थ मित्र है। मुझे रामनाम की ही आशा है, रामनाम का ही भरोसा है, रामनाम ही में प्रेम है, रामनाम रटने का ही मैं नियम करता हूँ। रामनाम के अतिरिक्त न तो मैं सुमार्ग जानता हूं न कुमार्ग। संपूर्ण सांसारिक सुख और पारलौकिक सुख प्राप्त करने के लिए मैं रामनाम ही रटता हूँ। तुलसीदास कहते हैं कि रामनामहीन मनुष्य तो किसी काम का नहीं है. मैं राम की शपथ लेकर सत्य कहता हूँ कि रामनाम ही मेरा सर्वस्व है और मेरे समान अत्यन्त दुर्बल के लिए रामनाम ही कामधेनु और कल्पवृक्ष है ।

मारग मारि, महीसुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो।
संकर कोप सों पाप को दाम परीच्छितु जाहिगो जारि कै हीयो।
कासी में कंटक जेते भए, ते गे पाइ अघाइ कै आपनो कीयो।
आजु कि कालिह परौं कि नरौं जड़ जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो ॥१७९॥

टिप्पणी—मारग मारि = पथिकों को लूटकर। महीसुर = ब्राह्मण। कै = करके । दाम = धन । पाप को दाम = पाप से कमाया धन । परीच्छित = (सं० परीक्षित) निश्चय ही यह बात परीक्षा की हुई है। जाहिगो = नष्ट हो जायगा । जारि कै हीयो = हृदय जलाकर, मन में दुःख पैदा करके । कंटक = बाधक । जेते = जितने । ते गे = वे नष्ट हो गये । आपनो कीयो अघाइ कै पाइ—अपने किये का भरपूर फल पाकर तृप्त होकर । जड़ मूर्ख कुमार्गी

जाहिंगे = नष्ट हो जायँगे। चाटि दिवारी को दीयो = ऐसा कहते हैं कि कीट पतंगादि दीवाली का दीया चाटकर चले जाते हैं अर्थात् दीवाली के बाद नहीं रह जाते; समय पर स्वयं नष्ट हो जायँगे।

भावार्थ---कुमार्गी लोग राहगीरों को लूटकर, ब्राह्मणों को मारकर, करोड़ों कुरीतियों द्वारा धन एकत्र करते हैं। तुलसीदास कहते है कि शिवजी के कोप से पाप की कमाई मन में दुःख बढ़ाकर अवश्यमेव नष्ट हो जायगी। क्योंकि काशी में जितने भी बाधक हुए हैं; सब अपनी करनी का भरपूर फल पाकर नष्ट हो गये हैं। जैसे दीवाली के बाद कीट-पतंगादि नहीं रह जाते, उसी प्रकार से मूर्ख भी आज या कल या परसों या नरसों, कभी न कभी समय पर स्वतः नष्ट हो जायँगे।

कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुखचंद सो चंद सो होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्ध चुवै, अवलोकत सोच विषाद हरी है।
गौरी कि गंग बिहंगिनि बेष, कि मंजुल मूरति मोद-भरी है।
पेखि सप्रेम पयान-समै सब सोच-बिमोचन छेमकरी है ॥१८०॥

टिप्पणी---**कुंकुम रंग** = केसरिया रंग। **सुअंग** = चोंच। **जितो** = जीत लिया है। **होड़ परी है** = बाजी लगी है, शर्त लगी है। **समृद्धि** = धन, संपत्ति। **बिहंगिनि** = पक्षिणी। **मंजुल** = सुन्दर। **पेखि** = (सं० प्रेक्ष्य) देखकर। **पयान** = (सं० प्रयाण) यात्रा को जाते समय। **छेमकरी** = (सं० क्षेमकरी) (१) एक पक्षी का नाम, (२) कुशल करनेवाली। **अलंकार**---'मुखचंद सो चंद सो होड़ परी है' में 'ललितोपमा'। तृतीयपाद में 'संदेहालंकार'।

प्रकरण---किसी यात्रा के समय तुलसीदासजी ने क्षेमकरी पक्षी को देखा और उसकी प्रशंसा में यह छंद कहा।

भावार्थ---इस क्षेमकरी ने अपनी चोंच के रंग से कुंकुम को भी जीत लिया है। इसका मुखचंद्र इतना सुन्दर है कि आकाशीय चंद्रमा से समता करता है। इसके वचन बोलते ही मानो धन-वैभव टपकता है, देखते ही यह पक्षी सोच और दुःख को दूर कर देता है। क्या यह चिड़िया के वेश में पार्वती है अथवा गंगा है? अथवा आनंद से परिपूर्ण किसी अन्य सुन्दर देवी की मूर्ति? प्रस्थान करते समय प्रेम-सहित क्षेमकरी के दर्शन पाना सब चिन्ताओं को मिटाकर मंगलकारी होता है।

कवित्त

मंगल की रासि, परमारथ की खानि, जानि,
बिरचि बनाई बिधि केसव बसाई है।

प्रलय हू काल राखी सूलपानि सूल पर,
मीचुबस नीच सोऊ चहत खसाई है।
छाँड़ि छितिपाल जो परीछित भए कृपालु,
भलो कियो खल को, निकाई सो नसाई है।
पाहि हनुमान ! करुनानिधान राम पाहि !
कासी कामधेनु कलि कुहत कसाई है ॥१८१॥

टिप्पणी—रासि = (सं० राशि) ढेर। **खानि** = उत्पत्ति भूमि। **बिरचि बनाई** = अच्छी तरह रचकर बनाई। **केसव** = विष्णु। **बसाई है** = पालन किया है। **सूलपानि** = त्रिशूल हाथ में धारण करनेवाले, शिवजी। **सूल** = त्रिशूल। **चहत खसाई** = नाश करना चाहता है। **छितिपाल** = राजा। **परीछित** = अर्जुन का पौत्र परीक्षित। **निकाई** = भलाई। **कुहत है** = मारता है।

भावार्थ—मंगल-पूर्ण और मोक्ष देनेवाली जानकर ब्रह्मा ने विशेष रीति से काशी को बनाया, विष्णु ने इसका पालन किया, शिवजी ने प्रलय के समय भी इसको अपने त्रिशूल पर रखकर नाश होने से बचाया, उसी काशी को नीच कलियुग मृत्यु के वश में होकर नाश करना चाहता है। राजा परीक्षित इसको छोड़कर इस पर कृपालु हुए और इस दुष्ट का भला किया, उस उपकार को इस दुष्ट ने भुला दिया है। अतः हे हनुमान ! रक्षा करो। हे करुणानिधान रामचन्द्रजी ! रक्षा करो, कलिरूपी कसाई काशी रूपी कामधेनु को मारे डालता है।

बिरची बिरंचि की बसति बिस्वनाथ की जो,
प्रान हू तें प्यारी पुरी केसव कृपाल की।
ज्योतिरूप-लिंगमई, अगनित लिंगमई,
मोक्ष बितरनि बिदरनि जगजाल की।
देवी देव देवसरि सिद्ध मुनिवर बास,
लोपति बिलोकत कुलिपि भोंड़े भाल की।
हा हा करै 'तुलसी' दयानिधान राम ! ऐसी,
कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की ॥१८२॥

टिप्पणी—**बसति** = बस्ती, पुरी। **ज्योतिरूप लिंगमई** = द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक लिंग (विश्वनाथजी का) काशी में भी है। **मोक्ष-बितरनि** = मोक्ष बाँटनेवाली। **बिदरनि** = काटनेवाली। **जगजाल** = सांसारिक प्रपंचों का जाल। **लोपति** = लुप्त हो जाती है। **बिलोकत** = दर्शन मात्र से। **भोंड़े भाल की** = अभागे के कपाल पर लिखी हुई। **कुलिपि** = दुर्भाग्य की रेखा। **हा हा करै** = बिनती करता है। **कदर्थना** = दुर्दशा।

भावार्थ—जो काशी ब्रह्मा ने बनाई, जो शिवजी की पुरी है जो दयालु भगवान् विष्णु की प्राणों से भी प्यारी नगरी है, जहाँ द्वादश में से

एक लिंग (विश्वनाथजी का) विराजमान है, जहाँ असंख्य शिवलिंग हैं, जो मोक्ष देनेवाली है, जो सांसारिक कष्टों का नाश करने वाली है, और जहाँ देवी, देवता, गंगा सिद्धजन और श्रेष्ठ मुनियों का निवासस्थान है, जो अभागों के कपाल पर लिखे हुए दुर्भाग्य की रेखा को मिटा देती है, ऐसी काशी की कराल कलियुग ने दुर्दशा की है। अतएव हे दया के घर रामचन्द्रजी ! मैं विनती करता हूँ कि आप काशी की रक्षा कीजिए।

आश्रम बरन कलि-बिबस बिकल भए,
निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी।
संकर सरोष महामारि ही तें जनियत,
साहिब सरोष दुनी दिन दिन दारदी।
नारि नर आरत पुकारत, सुनै न कोऊ,
काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी।
'तुलसी' सभीत-पाल सुमिरें कृपालु राम,
समय सुकरुना सराहि सनकार दी ॥१८३॥

टिप्पणी—**आश्रम**=ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। **बरन**=(वर्ण) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। **मोटरी**=गठरी। **डार दी**=फेंक दी। **मोटरी सी डार दी**=गठरी सी फेंक दी है, भार समझकर छोड़ दिया है। **दारदी**=दारिद्र्य। **मोटी**=अधिक। **मूठि मार दी**=(मुहावरा) जादू डाल दिया। **समय**=समय पर। **सुकरुना सराहि**=स्व (अपनी) करुणा की प्रशंसा कर। **सनकार दी**—इशारा कर दिया।

भावार्थ—चारों आश्रमों और चारों वर्णों के लोगों ने कलियुग के कारण व्याकुल होकर अपनी-अपनी लोकमर्यादा भार-स्वरूप जानकर छोड़ दी है। शिवजी तो क्रुद्ध हैं, यह महामारी के प्रकोप से ही जाना जाता है। स्वामी के क्रुद्ध होने से संसार में दिन-दिन दारिद्र्य बढ़ता जाता है। पुरुष स्त्री सब आर्त्त होकर प्रार्थना करते हैं पर कोई सुनता नहीं। जान पड़ता है कि कुछ देवताओं ने मिलकर बड़ा भारी जादू कर दिया है। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे समय भयभीतों के रक्षक कृपालु रामचंद्रजी को स्मरण करते ही, उन्होंने अपनी करुणा की प्रशंसा करके ठीक अवसर पर लोगों की सहायता का संकेत कर दिया (राम की कृपा से काशी से महामारी चली गई)।

कथा प्रसंग

१—नारद (छंद १६, बाल०)

नारदजी पूर्वजन्म में वेदवादी ऋषियों के दासी के पुत्र थे। माँ ने इन्हें ऋषियों की सेवा के लिए रख दिया था। ये मन लगाकर श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा करते थे। उन मुनियों का जो जूठन बचता था उसी को खाकर अपना पेट भरते थे; इसके प्रभाव से उनका अंतःकरण शुद्ध हो गया। ऋषियों ने उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें उपदेश दिया जिस से उनके मन में दृढ़ भक्ति पैदा हो गई। ऋषियों के चले जाने पर कुछ दिनों बाद उनकी माता सर्प काट लेने के कारण मर गई। तब वे उत्तर दिशा में जाकर तपस्या करने लगे। लेकिन अनुपयुक्त शरीर होने के कारण ध्यान जमता नहीं था। एक दिन काल पाकर उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया और जब ब्रह्माजी जगत् की रचना करने लगे तब मरीचि, अंगिरा आदि ऋषियों के साथ उत्पन्न हुए। तब से वे वीणा लिए सर्वत्र हरिगुण गाते विचरा करते हैं; उनकी गति कहीं भी नहीं रुकती।

२—अहल्या (छंद २१, बाल०)

एक बार ब्रह्माजी ने अपनी इच्छा से एक परम मनोहर कन्या उत्पन्न की जिसकी सुन्दरता देखकर सभी मोहित होते थे। ब्रह्माजी उसे गौतम जी को धरोहर की भाँति सौंपकर चले गये। कुछ दिन बाद ब्रह्माजी ने उनसे वह कन्या माँगी तब उन्होंने ज्यों की त्यों उन्हें सौंप दी। ब्रह्माजी ने गौतमजी की जितेन्द्रियता देखकर उस कन्या का विवाह उन्हीं के साथ कर दिया। यह बात इन्द्र को बहुत बुरी लगी। एक दिन जब गौतमजी बाहर गये थे, इन्द्र गौतम का बनावटी रूप धारण करके आया और उसने धोखा देकर अहल्या के साथ संभोग किया। वह संभोग कर ही रहा था कि गौतम ऋषि आ पहुँचे। अहल्या ने घबड़ाकर इन्द्र से उनका नाम पूछा; उसने नाम बता दिया। अहल्या इसे छिपाकर देर से द्वार खोलने आई। ऋषि ने देर से आने का कारण पूछा, अहल्या ने उसे छिपाया। तब ऋषि ने अपने तपोबल से सारा हाल जानकर

इन्द्र को शाप दिया कि तेरे शरीर में सहस्र भग हो जायँ और अहल्या को शाप दिया कि तू शिला हो जा। जब रामजी दर्शन देंगे तब तेरा उद्धार होगा। वह शिलारूपिणी अहल्या रामजी के चरणस्पर्श से पवित्र होकर स्त्री-रूप होकर पुनः गौतम के पास चली गई।

३—सहस्रबाहु (छंद ५, लंका०)

एक दिन हैहय-वंशी राजा सहस्रबाहु शिकार खेलते-खेलते जमदग्नि मुनि के आश्रम में पहुँचा। कामधेनु के प्रभाव से मुनि ने सेना-सहित सहस्रबाहु का यथोचित सत्कार किया। मुनि में अपने से अधिक सामर्थ्य देखकर सहस्रबाहु उनसे कुढ़ा; उसकी आज्ञा से उनके नौकर बलपूर्वक बछड़े-सहित उस धेनु को माहिष्मती नगरी में उठा ले गये। जब मुनिजी के पुत्र परशुरामजी को यह समाचार मालूम हुआ तब उन्होंने अपना फरसा लेकर सहस्रबाहु पर चढ़ाई की। सहस्रबाहु ने उनके मारने के लिए १७ अक्षौहिणी सेना भेजी; उसे परशुरामजी ने काट डाला। इस पर जब सहस्रबाहु लड़ने आया तब उसे भी मार डाला।

४—गणिका (छंद ७, उत्तर०)

सत्ययुग का परशुराम वैश्य श्वासरोग से मर गया, तब उसकी स्त्री अपना कुल-धर्म छोड़कर स्वजनों से दूर जाकर वेश्यावृत्ति करने लगी। एक दिन एक बहेलिया एक सुग्गे का बच्चा बेचने आया। उसने सुग्गा खरीदकर पुत्रभाव से उसे पुत्रवत् स्नेह से पाला और उसे रामनाम पढ़ाया। रामनाम पढ़ाते-पढ़ाते दोनों एक ही समय में मर गये; रामनाम के उच्चारण के प्रभाव से दोनों की मुक्ति हो गई।

५—गज (छंद ७, उत्तर०)

किसी प्राचीन सत्ययुग में क्षीरसागर के त्रिकूट नामक पर्वत में वरुण देव का ऋतुमत् नामक बगीचा था; एक दिन उस बगीचे के सरोवर में एक मद-मस्त गजयूथपति हथिनियों सहित नहा रहा था। उसी समय एक बलवान् मकर ग्राह (जो पूर्वजन्म में हूहू नाम का गंधर्व था) ने उसका पैर पकड़ लिया। गजराज तथा उसके साथियों ने भरसक उससे छुड़ाने के लिए चेष्टा की, परन्तु कोई भी उसे जल से निकाल न सका। जब गजराज अपने जीवन से हताश

हो गया तब वह भगवान् का ध्यान करके उनकी स्तुति करने लगा। उसका आर्तनाद सुनकर भगवान् गरुड़ को छोड़कर गजेंद्र की सहायता के निमित्त आये। भगवान् ने गजेंद्र की सूँड़ पकड़कर ग्राह सहित जल से बाहर खींचकर चक्र से ग्राह का मुख फाड़कर उसे छुड़ाया और वे गजेंद्र को अपना पार्षद बनाकर अपने साथ ले गये।

६—अजामिल (छंद ७, उत्तर०)

कान्यकुब्ज देश में अजामिल नाम का एक ब्राह्मण था। उसने अपनी विवाहिता पत्नी को त्याग कर दासी से प्रीति की थी। वह जुआ, चोरी, ठगी आदि अनेक प्रकार के निंदित कर्म करता था। एक दिन जब वह बाहर गया था उसके घर पर कुछ साधु आये। उसकी गर्भवती स्त्री ने साधुओं का बड़ा आदर-सत्कार किया। जाते समय साधुओं ने उसे आशीर्वाद दिया कि तेरे पुत्र होगा। तुम उसका नाम 'नारायण' रखना। अजामिल अपने दस पुत्रों में सबसे छोटे 'नारायण' को सबसे ज्यादा प्यार करता था। बिना छोटे पुत्र के उसे चैन नहीं पड़ता था। अन्त में मरते समय जब उसे यमराज के दूत भय दिखाने लगे, तब उसने अपने प्रिय पुत्र 'नारायण' को पुकारा। नाम लेते ही भगवान् के दूतों ने आकर उसे यमदूतों के पंजे से छुड़ाया। भगवान् ने उसे सुन्दर गति दी।

७—प्रह्लाद (छंद ८, उत्तर०)

जब प्रह्लाद अपनी माता के गर्भ में थे, उस समय एक दिन नारदजी ने आकर उनकी माँ को ज्ञानोपदेश किया। माँ को तो ज्ञान नहीं हुआ, पर गर्भ के बालक को ज्ञान हो गया। प्रह्लाद रामजी के बड़े भारी भक्त हुए; इनके लिए भगवान् को नृसिंह अवतार धारण करना पड़ा जिसकी कथा लोक-प्रसिद्ध है।

८—शबरी (छंद १०, उत्तर०)

यह जाति की भीलनी थी, मतंग ऋषि की सेवा किया करती थी; जब ऋषि परमधाम को जाने लगे तो इसने भी साथ ले जाने का हठ किया। परंतु ऋषि ने कहा कि तू अभी यहीं रह। तुझे त्रेता में भगवान् के दर्शन मिलेंगे। गृध्र को परमधाम देकर भगवान् शबरी के आश्रम में गये, भगवान् ने उसके बेर खाये और उसे नवधा भक्ति का उपदेश दिया। शबरी रामजी का सुग्रीव से

मित्रता का संकेत करके उनके चरण-कमलों का ध्यान धरकर योगाग्नि में देह जलाकर परमधाम को गई।

९—यवन (छंद ७६, उत्तर०)

यवन एक पापी म्लेच्छ था। वह अपनी वृद्धावस्था में एक दिन शौच के उपरांत आबदस्त ले रहा था कि उसे एक शूकर ने जोर से ढकेल दिया। इस पर वह चिल्ला उठा कि मुझे 'हराम ने मारा', 'हराम ने मारा'। वृद्धावस्था की कमजोरी के कारण वह इस आघात से मर गया। मरते समय हराम, हराम उच्चारण करने से भगवान् ने उसे अपना भक्त समझ कर (क्योंकि उसने हराम के साथ राम राम उच्चारण किया था) मुक्ति दी।

१०—ध्रुव (छंद ८८, उत्तर०)

स्वायंभुव मनु के पुत्र राजा उत्तानपाद के सुनीति और सुरुचि नाम की दो स्त्रियाँ थीं। ध्रुव बड़ी रानी सुनीति के और उत्तम छोटी रानी सुरुचि के पुत्र थे। राजा छोटी रानी से विशेष प्रेम रखते थे। एक समय राजा उत्तम को गोद में बैठाकर प्यार कर रहे थे। उस समय ध्रुव खेलते-खेलते आ पहुँचे और राजा की गोद में चढ़ने लगे। परंतु राजा ने कुछ आदर या प्यार नहीं किया। गोद में चढ़ते देखकर विमाता ने डाहवश ध्रुव से कहा, "तुम राजा के पुत्र तो हो परंतु मेरे गर्भ से न उत्पन्न होने के कारण राजा के आसन पर चढ़ने योग्य नहीं हो। अगर तुम राज्यासन पर चढ़ना चाहते हो तो मेरे गर्भ से उत्पन्न होने के लिए परमात्मा की आराधना करो।" यह सुनकर ध्रुव को बड़ी ग्लानि हुई। वे माता से तप करने की आज्ञा लेकर घर से निकले; और तप करके अचल लोक के स्वामी हुए।

११—व्याध (छंद ९२, उत्तर०)

व्याध वाल्मीकि जी को ही समझना चाहिए।

(देखो वाल्मीकि)

१२—श्वान (छंद १००, उत्तर०)

श्रीरामजी ने अयोध्या के एक कुत्ते की नालिश पर एक संन्यासी को दंड दिया था। यह कथा बहुत प्रसिद्ध है। केशवदासकृत श्रीराम-चंद्रिका में इसकी कथा सविस्तर वर्णित है।

१३—उद्धव (छंद १३४, उत्तर०)

उद्धव श्री कृष्णजी के मित्र थे। इन्हें श्रीकृष्णजी ने व्रज की विरह-विधुरा गोपियों को समझाने के लिए भेजा, पर इन्होंने गोपियों को यह उपदेश दिया था कि तुम निर्गुण परमात्मा की उपासना करो।

१४—कुबरी (छंद १३४, उत्तर०)

कंस की दासी कुबरी भगवान् की बड़ी भक्ता थी। जिस समय कृष्णजी कंस को मारने गये थे उस समय कुबरी ने उनके मस्तक पर चन्दन लाकर अपना जन्म सुफल किया। उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर कृष्णजी ने उसकी पीठ पर पैर रखकर उसका कूबड़ बैठा दिया जिससे वह परम सुन्दरी हो गई। उसकी भक्ति और नियम के वश होकर भगवान् ने जाकर उसका शरीर पवित्र किया और उससे प्रेम करके उसे कृतार्थ किया।

१५—बाल्मीकि (छंद १३८, उत्तर०)

बाल्मीकि ऋषि पहले व्याध थे, मनुष्यों को लूट मारकर अपना कुटुम्ब पालते थे। एक बार उन्हें कई ऋषि मिले, बाल्मीकि ने उन्हें भी लूटना चाहा, तब उन्होंने कहा, "तू यह पाप-कर्म करके अपना कुटुम्ब पालता है, तेरा कुटुम्ब खाने का ही साथी है या तू जो पाप करता है उसका भी साथी है?" यह सुन बाल्मीकि ने कुटुम्बियों से पूछा, तो उन लोगों ने कहा, "हम तो केवल खाने के साथी हैं, पाप के नहीं।" तब बाल्मीकिजी को ज्ञान उत्पन्न हुआ। कुटुम्बियों को छोड़कर ऋषियों के पास जाकर उन्होंने धर्म विषय सुना और भगवान् का उल्टा नाम 'मरा मरा' जपते-जपते वे ब्रह्मर्षि हो गये; उन्हें घर बैठे ही भगवान् के दर्शन हुए।

हमारे यहाँ से प्रकाशित

तुलसी-साहित्य

कवितावली—लाला भगवानदीन तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

विनय पत्रिका—लाला भगवानदीन तथा विश्वनाथ प्रसाद मि

बालकाण्ड [टीका सहित]—चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा

अयोध्याकाण्ड [टीका सहित]—चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा

अरण्यकाण्ड [टीका सहित]—चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा

किष्किन्धाकाण्ड [टीका सहित]—चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा

सुन्दरकाण्ड [टीका सहित]—चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा

सुन्दरकाण्ड [टीका सहित]—पं० चन्द्रशेखर शास्त्री

लंकाकाण्ड [टीका सहित]—चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा

उत्तरकाण्ड [टीका सहित]—पं० चन्द्रशेखर शास्त्री

उत्तरकाण्ड [टीका सहित]—चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा

बरवै रामायण [टीका सहित]—पं० वामदेव शर्मा

पार्वती-मंगल [टीका सहित]—पं० वामदेव शर्मा

जानकी मंगल [टीका सहित]—पं० वामदेव शर्मा

तुलसी साहित्य की भूमिका—डा० भटनागर

विश्व साहित्य में राम चरित मानस [हास्यरस]—श्री लमगो

राम रसायन बालकाण्ड—डा० भालचन्द्र राव तैलंग

रामनारायणलाल बेनीप्रसाद, इलाहाबाद-२